ग्रन्थमाला पुष्प ७-३



श्री विद्याभूषण सूरि विरचित तथा श्री गुणनन्दि मुनीन्द्र विरचित संस्कृत

तथा ब्रह्मचारी श्रीलाल जैन काव्यतीर्थ कृत विस्तृत हिंदी पद्यमय

श्री ऋषिमंडल मंत्र कल्प पूजा विधान

(यंत्र पूजा सचित्र मंत्र साधनविधि सहित)

जिसको—

शोलापुरवासी गांधी हरीभाई देवकरण एंड संस द्वारा संरक्षित

श्री शांतिसागर जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था श्री महावीरजी (राजस्थान) के

महामंत्री—गृहविरत ब्रह्मचारी श्रीलाल जैन काव्यतीर्थ ने संस्था के पवित्र प्रेस मे

मुद्रक—सेठ हीरालालजी पाटणी निवाई वालों के

मंत्रित्व मे छपाकर प्रकाशित किया

फागुन वदी ८ वीर नि० स० २४८४ } { न्योछावर ३॥) साडेतीन रुपया

संस्था का परिचय।

इस संस्थाकी स्थापना बनारसमें स्व० पं० पन्नालालजी बाकलीवाल सुजानगढ वासीने इस्वी सन् १९१३ में 'श्रीजैनधर्म प्रचारिणी सभा' नामसे की थी। समाजने जब इसको अपनाना शुरू किया तो नाम भारतीय जैन सिद्धांत प्रकाशिनी संस्था करदिया गया। नामके बाद स्थानभी बनारससे 'कलकत्ता' होगया। और वहां सन् १९१५ से १९५५ तक स्थित रही। इसी बीचमें अनेक परिवर्तन हुए जन्मदाता बाकलीवालका स्वर्गवास होगया। सन् १९५२में मैं (श्रीलाल) गृहविरत होकर आचार्य श्रीवीरसागरजीके चरणोंका सेवक बनगया। कलकत्ता, श्रीमदाचार्यकी विहार भूमिसे अति दूर होजानेके कारण संस्थाको श्रीमहावीरजी अतिशय क्षेत्रमें लाना ही उचित जंचा इसलिये यहां स्थान परिवर्तन करना पडा।

चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्रीशांतिसागरजी महाराजके समाधिस्थ होजानेपर उनके पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागरजी की आज्ञासे 'भारतीय'की जगह 'शांतिसागर' नाम लगादिया गया और इसतरह दो सालसे इसका नाम 'श्री शांतिसागर जैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्था' होगया है।

यह धार्मिक संस्था है, व्यापारिक उद्देश्य से स्थापित नहीं है इसलिये और इसके पवित्र प्रेसमें छपे ग्रन्थ 'हस्त लिखित' के समान शुद्ध होते हैं इसलिये जैनमात्रका कर्तव्य है इसे तन-मन धनसे सहयोग देकर श्री जिनवाणी की सेवा करें।

वक्तव्य ।

श्री जिनेन्द्र भगवान वीतराग सर्वज्ञ हैं इसलिये सबकुछ जानते हैं तो भी न प्रसन्न होते हैं और न नाराज ही परन्तु दर्पणमें देखने वाला अपना मुख टेढा या सीधा जैसा करता है वैसा ही दीखपडता है उसी प्रकार उन वीतरागको जिस निगाहसे जीव देखता हैं वैसा ही अच्छा बुरा फल पालेता है। इसलिये आचार्योंने वीतरागकी भक्ति पूजा करनेका फल भुक्ति मुक्तिकी प्राप्ति बतलाया है। संसारमें और मनुष्य पर्यायमें जब तक यह जीव है तब तक अपने पुरुषार्थसे सुख (सांसारिक और पारमार्थिक—मोक्ष सुख दोनों ही) प्राप्त कर सकता है।

पूर्वोपार्जित कर्मके उदयसे जब यह मनुष्य असाताके चक्करमें पडकर घबरानें लगता हैं, तब इसका विवेक अंधा होजाता है और लोक देव पाखण्डि मूढताओंके गर्तमें गिरने तयार होजाता है उस समय 'विद्यानुवाद'में वर्णित मंत्र यंत्र रूप दीपक इसको बचानेमें सहायता करता है। परम दयालु ऋषियोंने बुद्धि ऋद्धिके बलसे ऐसे २ उपाय बतलाये हैं जिनसे कर्मका उदय बदल जाता है असाता साता रूप परिणत होकर मनुष्यको सुखकी सांस लेने लायक बना देता है उनही अमोघ उपायोंमें से एक उपाय यह भी है जिसे कहते हैं—श्री ऋषि मण्डल यंत्र और उसका सारभूत श्री ऋषि मण्डल—मंत्र।

इसका प्रसाद लोग समय समय पर पाकर सुख उठाते रहे हैं इसलिये जैन समाजके दोनों ही दिगम्बर और श्वेताम्बर संप्रदाय इसकी आराधना पूजा सेवा करनेमें रत देखे जाते हैं।

बीजाक्षरोंमें विस्तृत अर्थ गर्भित रहता है इसलिये उनको जपनेमें समय कम और लाभ ज्यादा होता है। यंत्रमें बीजाक्षरोंके अधीश्वर और सेवक सबका समावेश स्पष्टतया दिखलाई पडता है और पूजाराधना करने वालेके हृदयमें उनका गुण रूप अंकित होजाता है जिससे वचन द्वारा मंत्र (बीजाक्षरों) को बोलता है तो हृदयमें ध्यान उनका करता रहता है मन वचन कायकी शुभ प्रवृत्तिसे दुर्ध्यान —आर्त्त रौद्र नही होने पाते, आत्मा आकुलित नहीं होता इसलिये दुखका अनुभव नहीं होता बल्कि वीतराग देवोंके और गुरुओंके ध्यानसे सुखका स्रोत प्रवाहित होने लगता है जिससे वर्तमान और भविष्यमें दुखका नाश होकर सुख मिलनेमें संशय नहीं होता।

अवलंबनके सहारे विचारधाराको बहानेवाला अल्पज्ञ मनुष्य जैसा भलाबुरा अवलंबन पाता है वैसाही बहने लगता है इसलिये श्रावकोंका मन वीतरागताकी तरफ झुके वीतरागदेवके गुणोंका अतिशय समझकर स्वयं वीतराग बननेका अभ्यास करे इसलिये विस्तृत पूजन पाठोंका निर्माण आचार्योंने किया है। सिद्धचक्र विधान पंचपरमेष्ठी विधान इन्द्रध्वज विधान, त्रिलोक पाठ आदि जितने विधान प्रचलित हैं सबका एकही उद्देश्य है धर्म ध्यानमें प्रवृत्ति—वीतरागता की प्राप्ति।

"श्री ऋषि मण्डल विधान" विस्तृत हिंदी पद्यमय रचनेका भी यही अभिप्राय है। संस्कृतमें इसकी पूजा संक्षिप्त है जो अल्प समय–एक दो घंटेमें पूर्ण होजाती है इसलिये और सर्वसाधारण संस्कृतज्ञ न होनेसे इसका आनन्द नहीं लेसकते इसलिये हिंदी पद्यमय निर्माण किया है संस्कृत पूजामें यंत्रस्थ अधीश्वरोंको केवल अर्घ प्रदान करनेवाले श्लोक है। इसमें उन सबकी स्थापना अष्टक जयमाल आदि जैसीं पूजनपाठमें भिन्न २ होती है वैसी ही लिखी हैं। इस तरह इस विधानमें सब पूजाए ४५ हैं और वे ५ दिनसे ८ दिनतक पूरी की जा सकती हैं।

यह पाठ भिन्न २ छंदोंमें रचा गया है इसलिये गाजे बाजेके साथ आनन्दसे किया जासकता है। पर्वके दिनोंमें अथवा अन्य दिनोंमें भी इसे मण्डल मांडकर पूजनेसे इष्ट सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

चार या छह हाथ चौरस या गोल काठकी चौकी पर सफेद कपडा बिछाकर पांच रंगोंसे वलयाकार (चूडीसा गोल) यंत्र जैसा छपा है वैसा बनावे कोठे आदि सब उसी तरह बनाकर उनमें जो कुछलिखा है वैसा लिखे। श्री तीर्थंकरोंके नाम जिस तीर्थंकरके शरीरका जैसा २ रग है। उसी उसीरंगमें लिखे। जमीनका रंग हर एक वलयका भिन्न २ हो और अक्षरोंका रंग दूसरे २ हो जिससे देखनेमें सुदर लगे और पढनेमें सुभीता हो। यंत्र तांबे या पीतल या चांदीका जो हो वह इसके आगे एक चोकीपर विराजमान करे। श्रीमंदिरजीकी वेदीके सामने मंडल मांडा

हो तबतो वेदीमें विराजमान श्रीजिनप्रतिमाएं हैं ही, और मंडप तानकर पृथक् जगह मांडा जाय तो उच्चस्थानपर प्रतिमाजी भी स्थापित करना चाहिये। मंडलके ऊपर चंदोवा छत्र वंदनवार ध्वजा पताका आदि शोभावर्धक वस्तुएं लगाई जांय। चोकीपर मंगल द्रव्य अष्ट प्रातिहार्य आदि, सजाए जांय। चारों कोनोंमें चार मंगल कलश अक्षत हल्दी सुपारी पंचरत्न आदिसे पूरित चार दिशाओंमें रखे जांय और पूर्णकलश (पांचवां) अलहदी जगह अक्षतादिसे पूर्णकर मंत्रपूर्वक रखा जाय। हर कलशमें कमसेकम सवा पांच आना तो डालना ही चाहिये। कलशोंके मुहपर लालटूल (कपडा) से वेष्टित श्रीफल (नारियल) अवश्य रहे और नीचे अक्षतोंका स्वस्तिक (सांथिया) मंडा रहे कलश स्थापन जो मण्डलविधान करानेवाला श्रावक (यजमान) है उसके हाथसे याजक (गृहस्थाचार्य) करावे यंत्रकी पूजाके साथ २ मंत्र जाप भी होना चाहिये। जो एकांत स्थानमें हो और यंत्र मंगल कलश वहां भी स्थापित हों। दीप धूप आसन वस्त्र दिशा आदिका क्रम जैसा साधन विधि (पृष्ट ४९ से ५९ तकमें) लिखी है वैसा ही होना चाहिये। पूजा प्रारम्भ करनेसे पहिले प्रतिदिन अभिषेक शांतिधारा आदि 'अभिषेक पाठ' में छपे हैं, वैसे करने चाहिये।

इस विधिपूर्वक उत्साह सहित उदार मनसे जो इस विधानको करेगा उसके मनोरथ अवश्य ही सिद्ध होंगे।

सूचना

हीन अंग अधिक अंग खाज दाद फोडा फुन्सी आदिवाले व्यक्ति इसमें पुजारी न बनें। वे पाठ पढ सकते हैं। पूजाद्रव्य चढानेवाले मुंहसे थूक न उछटे इसलिये मुखाच्छादन वस्त्रसे इस-प्रकार करें जिससे वस्त्र न भींग जाय। विनय और पवित्रताकी भावनासे किये हुए विधान ही सफल होते हैं जैसे अनुपान सहित खाई हुई औषधि।

विशेष।

इस विधानमेंसे २४ चौबीसी पाठ, पंचपरमेष्ठी पाठ, चौसठ ऋद्धिपाठ, रत्नत्रय विधान भी पृथक २ मंडल मांडकर किये जासकते हैं इस तरह इस विधानमें चारविधान सामिल हैं।

धन्यवाद।

ब्रह्मचारी सूरजमलजी को हम धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकते जिनकी प्रेरणा से ब्र० रामदेई जी संस्थाकी सहायिका बनी हैं। आप संस्थाके हितके लिए सतत उद्योगी रहते हैं।

फागुन वदी ५ — श्रीलाल जैन काव्यतीर्थ

श्री वीर सं० २४८४ — (गृहविरत ब्रह्मचारी)

श्रीमहावीरजी — महामंत्री—श्री शांतिसागर जैन सिद्धांतप्रकाशिनी संस्था।

सहायिका का परिचय

इस ग्रन्थ के प्रकाशन मे महायता करनेवाली जयपुर निवासिनी एक महिलारत्न सप्तम प्रतिमा धारिणी ब्रह्मचारिणी रामदेई जी टकसाली दिगम्बर जैन अग्रवाल है। आप उदार धार्मिक प्रकृति की हैं। आपके पति सेठ राधाकृष्णजी लगभग तीन साल पहले स्वर्गवासी हुए हैं। आपके दो पुत्र–देवीलालजी और हरीशचन्द्रजी हैं जो धार्मिक और आज्ञाकारी हैं। पति के सामने भी आप धार्मिक क्रियाएं पालती और दान देकर धनका सदुपयोग करती थीं परन्तु पतिवियोग के बाद तो आपने इस गुणको खूब बढाया है। श्रीमदाचार्य वीरसागरजी महाराज से आषाढ सुदी १५ संवत् २०१२ को सातवीं प्रतिमा धारण की जिसे निरतिचार दृढ़ता पूर्वक पालती हैं।

आपने वीर संवत २४८१ मे जब कि आचार्य देशभूषणजी का चतुर्मास जयपुर मे हुआ तब कर्णाटक भाषामें स्व० रत्नाकर वर्णी कृत और उक्त आचार्य द्वारा लिखित विशद हिंदी टीका सहित 'अपराजितेश्वर शतक' नामक बृहत्तर ग्रन्थ लगभग ६४० पृष्ठों का पक्की जिल्द सहित प्रकाशित कराया और विनामूल्य वितीर्ण किया।

आपने अपने व्रतोद्यापन मे रथयात्रा कराई चांदी के अनेक उपकरण श्रीबाईजी के मन्दिरजी में चढाये और प्रभावना की।

अयोध्यामे स्थापित होनेवाली बृहत प्रतिमाजी के निर्माणमें दो हजार रु० प्रदान कीये है। श्रीअतिशय क्षेत्र 'पद्मपुरीमें' नवीन विस्तृतकाय बननेवाले श्री मन्दिरजी मे एक वेदी बनाने के लिये पांच हजार स्वीकार किये है। अपने पुराने महल का अपना हिस्सा श्री बाईजीके दिगम्बर जैन मन्दिर जयपुर को भेट दिया और आप अपने दूसरे मकान मे रहती हैं।

... म चार कोठरी, सम्मेद शिखरजी मधुवन में भवन आदि अनेक इमारती काम बनवाये हैं।

स्वर्गीय श्रीमदाचार्य वीरसागर जी महाराजके समाधिस्थानमे बननेवाली छत्री मे १०००) एक हजार रु० दिया है।

आप श्री शांतिसागर जैन सिद्धांत प्रकाशिनी संस्थाकों १५००) देढ हजार ग्रन्थ प्रकाशनके लिये प्रदान कर सहायिका बनी हैं जिससे सदाही संस्थाके नियमानुसार एक ग्रन्थ की न्योछावर उठ आनेपर दूसरा ग्रन्थ छपता रहेगा और श्री जिनवाणी का उद्धार होता रहेगा। इसके सिवा छपे ग्रन्थ रखने के लिये एक ष्टील की अलमारी प्रदान की है। आपके जैसे श्री जिनवाणीके प्रति उदार भाव हैं उससे और भी प्रकाशन सामने आवेगा ऐसी पूर्ण आशा है।

आप आपके दोनों ही सुपुत्र सेठ देवीलालजी और हरीशचन्दजी धार्मिक क्रियाओंमे दिन दूना रात चौगुनी उन्नति करते हुए अनन्त सुखभोगी बनें यही हमारी जिनेन्द्र देवसे प्रार्थना है।

ब्रह्मचारी सूरजमल जैन
श्रीमदाचार्य वीरसागरजी तत्स्थानापन्न
आचार्य शिवसागरजी संघस्थ

संस्कृत विधानकी विषय सूची ।

विषय सूची

श्रीऋषि मंडल विधान हिंदी पद्यमयकी ।





श्री ब्रह्मचारिणी

रामदेई बाई

टकसाली







धर्मपत्नी स्वर्गीय सेठ

श्री राधाकृष्णाजी

टकसाली

जयपुर





श्री वीतरागाय नमः ।

श्री विद्याभूषण सूरि विरचित

श्री ऋषिमंडल मंत्र कल्प

आद्यंतवर्णं प्रविवृद्धशोभं सर्वोत्तमव्यापकमव्ययं च ।
सरं वृहद्भानुशिखावदातं सनादबिंदुं शुभरेखयाढ्यम् ॥ १ ॥
ऊर्जस्वलं हव्यभुगर्चिषा वाक्रांतं नितांतं सकलं सुकांतं ।
हृदम्बुजे तत्पदमाशु नौमि मनोमलोन्मूलनयद्धकच्चम् ॥ २ ॥
अर्हद्भ्य ओंहां विधिवन्नमोस्तु सिद्धेभ्य ओं ह्रीं नम एव नित्यम् ।

सूरिभ्य ओं हु च नमोऽमलेभ्यः श्रीपाठकेभ्यो नम ओं तथा हू ॥३॥
साधुभ्य ओं हें च नमोखिलेभ्य ओं हैं नमः सर्वसुतत्त्वदृग्भ्यः ।
सम्यक्प्रमाणेभ्य तथैव ओं हौं नमोपि चों हः वरसंयमेभ्यः ॥ ४ ॥
इदं जिनाद्यष्टकमष्टकोष्ठअनिष्ठितं निष्ठितकर्मकाष्ठम् ।
श्रिये पृथग्बीजविराजमानमानंददं स्ताज्जनतासमानम् ॥ ५ ॥

मूर्धानमाद्यं पदमाशु जातु परं पदं मस्तकमस्तकर्म । तृतीयकं त्रायतु चक्षुषी द्वे तुर्यं च घोणां सद्घ्राणमुपातु ॥६॥ तत्पंचमं पातु मुखाम्बुजातं सुधास्रवां षष्ठमरिष्टनापि । पातात् पदं सप्तममेव नाभिं पदांतमंत्यं च पदं पुनातु ॥ ७ ॥ लोकोत्तरे यःपरमेष्ठिरूपस्त्वग्नीमयश्चाभिमतो मतेभ्यः । वर्णेषु वर्ण्य-स्त्वपरः पराध्यं पूर्वं विधेयः प्रणवस्ततश्च ॥ ८ ॥ महोमयं यद्वरयोगरूपं ब्रह्मावगाढं त्वनिगाढगूढं । प्रौढं विमूढाग्रिमतोधिरूढं कुर्यात्तदेवं विधमिद्धबुद्धिः ॥ ९ ॥ नेत्रोदधीश्वरचकुलांगनागदिगर्यमांकै-र्विहितोरुसेवं । स्वरैस्ततोभ्यर्हितपूज्यपंचाद्यैकैकवर्णा वरसांतकांतम् ॥ १० ॥ सद्दर्शनज्ञानसुसंय-मेभ्यो नमोस्तु मध्ये किल हीं च सांतं । ध्यायेत् सुमंत्रं नवबीजवर्णैः समर्चितं तद्गुद्धिगुणैश्च शुद्धैः ॥ ११ ॥ ओं ह्रां ह्रिं ह्रु ह्रू ह्रें ह्रैं ह्रौं ह्रः असि आउसा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो ह्रीं नमः । ऋषि-मंडलयंत्रस्य मूलमंत्रं आराधकस्य शुभः नवबीजाक्षरः अष्टादश शुद्धाक्षर एवमेकत्र ॥ जंबूनगांकः प्रथमोत्र जंबूद्वीपस्तु दग्धोदधिवेष्टितांगः । क्षीणाष्टकर्मप्रमुखाष्टकोष्ठाधिष्ठायकाधिष्ठितमूर्तिरिष्टः

॥ १२ ॥ मध्यस्थितो रम्यसुराचलोस्य स कूटलक्षैः परिराजमानः । उच्चैरथोच्चैस्तर एव तारवाराव-लीमंडितमध्यदेशः ॥१३॥ तस्योपरिष्ठादथ सांतबीजमध्यास्य रम्यं विशुमभ्रमं च । स्वायंभुवं नौमि सुरम्यबिंबं ललाटसंस्थं सुनिरंजनं च ॥१४॥ यदक्षरं सांतमथामलं च सारं निरीक्षं जडताविहीनं । घनं विमानं बहुलं च सारं-तरं शुभं बुद्धमनुद्धतं च ॥ १५ ॥

परापरं चापि परं परापरं साकारमाकारविवर्जितं हितं । स्फीतं प्रवीणं विरसं रसान्वितं पौराणिकं च त्रिगुणं गुणायनं ॥ १६ ॥ अवर्णमध्यं च रवर्णमंतः चिरार्चिषं चिन्मयमच्युतं हि । श्यामं समं चारुमधाममधामैकद्वित्रिवेदेषु समानवर्णम् ॥ १७ ॥ सवर्ण्यमवर्णमथार्णवोपमं परं परातीतमनंतमुज्ज्वलं । कलंकमुक्तं सकलं किलाकलं सुकोमलं नाम सुनिष्कलं कलम् ॥ १८ ॥ तुष्टं विशिष्टं चारिष्टकष्टा-पहं निराकांक्षमधृक्षमाशु । अदत्तमालेपमलेपमुग्रं सिद्धं च शुद्धं खलु बुद्धमग्र्यम् ॥ १९ ॥ विष्णुं परब्रह्मणमीश्वरं च ज्योतिर्मयं त्वेवमपि रविं च । गुरुं गरीयांसमथो निरीशं मान्यं महादेवमनूनकांतिं ॥ २० ॥

महोमयं मोक्षकरं च लोकालोकप्रकाशप्रवणं प्रवीणं । इत्यादिसद्भूतगुणैरुदारं विदारितारिं विदरं विशालं ॥ २१ ॥ सांतःसरेफो विमलोर्हदाक्षः सद्बिंदुनालंकृतशीर्षदेशः । स्वरेण तुर्येण विशुद्धशोभो नादांचितोऽनादिरनंत एषः ॥ २२ ॥ सर्वत्र बीजे विमलेसिलाख्या नाभेयमुख्या जिनपा अदीनाः । स्वैः स्वैः सुवर्णैः सहिताश्च तत्र सुसंगता संततमेव चिंत्याः ॥ २३ ॥ नादोर्जुनो राजिसमानरोचि-

रिष्टरत्नप्रतिमौथ विंदुः। कला कला सत्कुरुविंदकांतिर तत्र कल्याणसमानवर्णाः ॥ २४ ॥ हरिच्छ-विर्मूर्धनि लीनतुर्यस्वरो हि वर्णा इति सम्यगुक्ताः। वर्णानुसारेण जिनेंद्रचंद्रान् स्वस्वप्रदेशे विनमामि लीनान् ॥ २५ ॥

श्रीपुष्पदंताभशशिप्रभाभौ नादाश्रितौ शुभ्ररुची विशालौ। श्रीनेमितीर्थाधिपसुव्रतौ च मध्येसिर्वि-दोर्विहितस्थिती तु ॥ २६ ॥ अब्जप्रभार्धाश्वरवासुपूज्यौ लीनौ कलायां सुखदौ कलायां। तूर्यस्व-रोपात्तपदौ च पार्श्व मल्लीकवल्लीमुदिरौ जिनेशौ ॥ २७ ॥ इतरांतरे चान्यजिनानियोज्या वेद-द्विसंख्या इति सर्वतोपि। अर्हद्रमाया रमणाश्च मायाबीजाक्षराकारमनर्घ्यमाप्ताः ॥ २८ ॥ रागद्वेष-महाविमोहरहिता जंतुप्रताने हिताः। सर्वे पापविवर्जिता गतमदाः सर्वे हितश्रीप्रदाः। तीर्थेशाः सततं भवंतु सकले संघेनघे मंगलश्रेणीदा गुणरत्नरोहणगिरिप्रापा विमायारयात् ॥२६॥ यदेव चक्रं परमेष्ठि भाभृतां विभा च या चक्रवरस्य तस्य। तयावृतांगं विमलाशयं सदा मा मामुपद्रोतुमलं भुजंगमाः।

*यदेव...च गोनसाः ॥ ३१ ॥ यदेव...च वृश्चिकाः ॥ ३२ ॥ यदेव...च शाकिनी ॥ ३३ ॥

यदेव...च डाकिनी ॥ ३४ ॥ यदेव...च याकिनी ॥ ३५ ॥ यदेव...च राकिनी ॥ ३६ ॥

यदेव...च लाकिनी ॥ ३७ ॥ यदेव...च काकिनी ॥ ३८ ॥ यदेव...च राक्षसाः ॥ ३९ ॥

* पहले चरणसे लेकर चारो चरण स्तोत्रकी समाप्ति तक बोलना परंतु अतमे तीन या चार अक्षर बद-लते जाना जो कि संस्कृत पाठमें है।

यदेव...च भेखसाः ॥ ४० ॥ यदेव...च व्यंतराः ॥ ४१ ॥ यदेव...च देवताः ॥ ४२ ॥
यदेव...सलिम्लुचः ॥ ४३ ॥ यदेव...हुताशनाः ॥ ४४ ॥ यदेव...विषाणिनः ॥ ४५ ॥
यदेव...च दंष्ट्रिणः ॥ ४६ ॥ यदेव...च रेपलाः ॥ ४७ ॥ यदेव विहंगमाः ॥ ४८ ॥
यदेव...च मुद्गलाः ॥ ४९ ॥ यदेव...च जृंभकाः ॥ ५० ॥ यदेव...च माघनाः ॥ ५१ ॥
यदेव...च सिंहकाः ॥ ५२ ॥ यदेव...च शूकराः ॥ ५३ ॥ यदेव...च चित्रकाः ॥ ५४ ॥
यदेव...च भूधराः ॥ ५५ ॥ यदेव...च हस्तिनः ॥ ५६ ॥ यदेव...च देश्यकाः ॥ ५७ ॥
यदेव...च ग्रामिणः ॥ ५८ ॥ यदेव...च सूचकाः ॥ ५९ ॥ यदेव... महामयाः ॥ ६० ॥
यदेव...च व्याधयः ॥ ६१ ॥

क्षुद्रा च या गौतमगच्छनेतुर्या लब्धयस्तस्य भुवि प्रसिद्धाः। ज्योतिश्च ताभ्यस्त्वधिकं ततोर्हन् निरंतरं मन्थरशेवधीशः ॥६२॥ पातालवासाश्रयिणः सुरेशा ये चापि भूपीठनिवासिनश्च। स्वस्थाश्च गोस्थाहृतसर्वदोःस्थ्याः सर्वेपि मां पांतु शुभा यतश्च ॥६३॥ मनोज्ञलब्ध्यावधिलब्धयो ये सुमेधसोपि परमावधीद्धाः। सर्वेपि ते श्रीपतयश्च देवा रक्षंतु मां सर्वत एव नित्यम् ॥६४॥ भावनेंद्रव्यंतरेंद्रज्योतिष्केन्द्रकल्पेन्द्रेभ्यो नमः। श्रुतावधिदेशावधिपरमावधिसर्वावधि ज्ञानर्द्धिप्राप्त सर्वौषधि ऋद्धिप्राप्तानंतबलर्धिप्राप्ततप्तर्धिप्राप्तरसर्धिप्राप्त विक्रियर्धिप्राप्त क्षेत्रर्धिप्राप्ताक्षीणमहानसर्धिप्राप्तेभ्यो नमः ॥ ओं-पूर्वतो ह्रीमथ श्रीस्ततो ह्री धृतिश्च लक्ष्मी सुभगा च गौरी। चंडी प्रचंडा च सरस्वती च जया तथाम्बा

विजया च क्लिन्ना ॥६५॥
तथाऽजिता सौख्यकरा च नित्या मदद्रवा चापि च कामदेहा ॥ कामाशुगा कामितदा च नंदा
नंदा सुमालिन्यमला च माया ॥६६॥ मायाविनी मान्यतमा च रौद्री कला च काली च कलिप्रिया
च । आराधके कल्पलतोपमाना देवीवराः कल्पलताभिधानाः ॥६७॥ एता महादेव्य उदाररूपा
त्रिविष्टपे याः किल संति साराः । मह्यं प्रयच्छन्तु रमां तथा च कांतिं धृतिं ताः सकला मतिं च ॥६८॥
वेतालभूतोरुगजृंभका वृका व्यालाश्च दुष्टा अपि मुद्गलाः खलाः । सर्वेपि शाम्यंतु च ते जिनेश्व-
रप्रभावतः प्रौढपराक्रमा अपि ॥६९॥ अयं स्तवः श्रीऋषिमण्डलस्य, दिव्यः सुदुष्प्राप्यतरोति-
गोप्यः । प्ररूपितस्तीर्थकृता नितांतं त्रिविष्टपत्राणकरोनवद्यः ॥७०॥
जलेऽनले राजकुले कराले व्याले बले चापि खलेखिलेथ । द्यूते विवादे पितृमन्दिरे च गिरौ
हरौ त्राणकरः स्मृतोऽयं ॥७१॥ भ्रष्टो हि राज्याल्लभते स्वराज्यं पदाच्च्युतश्चापि स्वकं पदं च । प्रा-
प्नोति लक्ष्मीरहितश्च लक्ष्मीं चेतोहरामप्रतिभोपि विद्याम् ॥ ७२ ॥ दारान् सुदारादरधीरुदारान्
प्रजाः प्रजार्थी प्रथितः पृथिव्यां । हिरण्यकामोपि हिरण्यराशिं लभेन्नरः संस्मृतिमात्रतोस्य ॥ ७३ ॥
इदं त्रिलिख्यामलहैमने यः खाजूरिके चापि च कांस्यजाते । नित्यं सपर्यां तनुते निशांते क्रीडंति सर्वा
अपि सिद्धयोस्य ॥७४॥ इदं त्रिलिख्यामलभूर्जपत्रे धृतं भुजे मूर्धनि वाथ कंठे । दरापहं सर्वसमी-
हितश्रीनिदानमानंदपदप्रदं च ॥७५॥

भूतैः प्रभूतैरतिभूयते न ग्रहैरिहोग्रैर्न निगृह्यते च। नाक्रम्यते मंक्षु च यच्चलद्भैर्न क्षोभ्यते राक्षसकोटिभिश्च ॥७६॥ संस्पृश्यते नापि पिशाचवृंदैर्नोद्गिल्यते चाखिलमुद्गलैश्च। प्रेताधिनाथैः प्रविपीड्यते न कल्पैर्न चाकल्प्यत एव नूनम् ॥७७॥ स्वभूर्भुवः पीठसुमध्यवर्तिनो जिनेश्वरा निर्वृजिनः सनातनाः। दृष्टैर्विशिष्टैरभिवंदितैस्तु तैर्यः स्यादुदर्कः स तु तैः स्मृतैरपि ॥७८॥ प्रयत्नतो गोप्यतरः स्तवोऽस्त्ययं यस्यापि कस्यापि न च प्रदीयते। मिथ्यात्विने योऽथ ददाति सोऽप्यलं पदे पदे भ्रूणवधेन लिप्यते ॥७९॥ आचाम्लमुख्यं सुतपो विधायार्हदावलीमर्हणया प्रपूज्य। तत्सिद्धयेऽष्टाग्रसहस्रसंख्यो जपोऽनपायः परितन्यते च ॥८०॥

विष्टे विशिष्टेऽष्टयुतं सदेकशतं नितांतं पठते प्रभाते। न बाधते व्याधिरथाधिरस्य शश्वच्च नूनं प्रभवंति पद्माः ॥८१॥ मासानविच्छिन्नदिनांश्च योऽष्टौ स्पष्टं सुविष्टे पठति प्रहृष्टः। इदं पवित्रं स्तवनं सुतेजोमयीं स्वयंभूप्रतिमां स पश्येत् ॥८२॥ दृष्टे जगन्नायकमारबिंबं सप्तमे जन्मनि निश्चयेन। मुदा महानंदपदं सतां च ह्यमंदमासादयति प्रसिद्धं ॥८३॥ स्तोत्रं विशुद्धं परमं सदेतदनुत्तरं मान्यतमं मुनीनाम्। स्मृतेश्च जाप्यात् पठनादथास्य प्रयाति हत्यावममोघधाम्नः ॥८४॥ विद्याभूषणसूरीशनिर्मितं स्तोत्रमद्भुतं। ऋषिमण्डलयंत्रस्य सर्वसंपत्तिसाधनम् ॥८५॥ इति।

॥ स्तवनं समाप्तं ॥

अथ श्री गुणनन्दि मुनीन्द्र विरचित

श्री ऋषिमंडल—मंत्र यंत्र स्तोत्र पूजा ।

प्रणम्य श्रीजिनाधीशं, लब्धेः सामस्त्यसंयुतम् ॥ ऋषिमण्डलयंत्रस्य; वक्ष्ये पूजादिमल्पशः ॥ १ ॥

यजमानलक्षणं (यजमानका लक्षण)

विनीतो बुद्धिमान् प्रीतो; न्यायोपात्तधनी महान् ॥ शीलादिगुणसंपन्नो, यष्टा सोत्र प्रशस्यते ॥ २ ॥

याजकलक्षणं (पूजा चढानेवालेका लक्षण) ।

देशकालादिभावज्ञो, निर्ममः शुद्धिमान् वरः ॥ सद्वाग्म्यादिगुणोपेतो याजकः सोत्र शस्यते ॥ ३ ॥

आचार्यलक्षणं (विधिके बतलानेवाले आचार्यका स्वरूप)

दर्शनज्ञानचारित्रसंयुतो ममतातिगः । प्राज्ञः प्रश्नसहश्चात्र गुरुः स्यात् क्षांतिनिष्ठितः ॥४॥

मंडपलक्षणं (पूजा करनेके स्थानका लक्षण)

निर्मलं पृथुलं घंटातारिकातोरणान्वितं ॥ प्रलंबत्पुष्पमालाढ्यं चतुर्धा कुंभसंयुतं ॥ ५ ॥

भेरीपटहकंसालतालमर्दलनिःस्वनः ॥ आकुलं स्त्रैणगीताद्यैर्मण्डपं कारयेद् बुधः ॥ ६ ॥ युग्मं

सामग्रीलक्षणं (पूजाकी सामग्रीका स्वरूप)

स्वजात्योत्कर्षणी पूता नेत्रमानसहारिणी । सामग्री शस्यते सद्भिर्निखिलानंदकारिणी ॥७॥

अथ यंत्रोद्धारः (अब यंत्र बनानेकी विधि कहते हैं)

काचनीयेथवा रौप्ये कांस्ये वा भाजने वरे । मध्ये लेख्यः सकारांतो द्विगुणो यांतसेवितः ॥८॥
तुर्यस्वरमनोहारी बिंदुराजार्धमस्तकः । जिनेशास्तत्प्रभा लेख्या यथास्थानं तदंतरे ॥९॥ युग्मं ।
चंद्रप्रभपुष्पदंतौ मुनिसुव्रतनेमिकौ । सुपार्श्वपार्श्वौ पद्माभ—वासुपूज्यौ तथा क्रमात् ॥ १० ॥
कलायां तदुपरिष्ठादीकारे मूर्ध्नि च स्फुटं । लेख्याः शेषा जिना गर्भे नमोयुक्ता सुपीतमाः॥युग्मं
ततश्च वलयः कार्यस्तद्बाह्ये कोष्ठकाष्टकं । तत्रेति लेख्यं विबुधैश्चारुलक्षणलक्षितैः ॥ १२ ॥
ततश्च वलयः कार्यो लेख्यास्तत्राष्टकोष्ठकाः ॥ तत्रेति लेख्यं विबुधैश्चातुर्यान्वितविग्रहैः ॥१३॥
ततश्च वलयः कार्यस्तत्र षोडशकोष्ठकाः ॥ लेख्यास्तत्रेति लेख्यं च विद्वद्भिश्चतुरैर्नरैः ॥ १४ ॥
ततश्च वलयः कार्यः चतुर्विंशतिकोष्ठकः ॥ तत्र लेख्याश्च कर्तव्याश्चतुर्विंशतिदेवताः ॥१५॥
ततो माया त्रिकोणे च देयं पत्र मनोहरं ॥ सर्वविघ्नापहं चैतद्ध्रींकारं प्रांतसंयुजं ॥ १६ ॥

अथातः ऋषिमंडलस्तोत्र पठेत् (इसके बाद ऋषिमंडलस्तोत्र का पाठ करे)

आद्यंताक्षरसंलक्ष्यमक्षरं व्याप्य यत्स्थितं । अग्निज्वालासमं नादं बिंदुरेखासमन्वितं ॥१॥
अग्निज्वालासमाक्रांतं मनोमलविशोधनं । देदीप्यमानं हृत्पद्मे तत्पदं नौमि निर्मलं ॥२॥ युग्मं।
ॐ नमोर्हद्भ्य ईशेभ्य ॐ सिद्धेभ्यो नमोनमः । ॐ नमः सर्वसूरिभ्यः उपाध्यायेभ्य ॐ नमः ।३।
ॐ नमः सर्वसाधुभ्यः तत्त्वदृष्टिभ्य ॐ नमः । ॐ नमः शुद्धबोधेभ्यश्चारित्रेभ्यो नमोनमः ।युग्मं।
श्रेयसेस्तु श्रियेस्त्वेनदर्हदाद्यष्टकं शुभं । स्थानेष्वष्टसु संन्यस्तं पृथग्बीजसमन्वितं ॥ ५ ॥

आद्यं पदं शिरो रक्षेत् परं रक्षतु मस्तकं । तृतीयं रक्षेन्नेत्रे द्वे तुर्यं रक्षेच्च नासिकां ॥६॥
पंचमं तु मुखं रक्षेत् षष्ठं रक्षतु घंटिकां । सप्तमं रक्षेन्नाभ्यंतं पादांतं चाष्टमं पुनः ॥७॥ युग्मं

मंत्र बनाने की विधि ।

पूर्वं प्रणवतः सांतः सरेफो द्वित्रिपंचषान् । सप्ताष्टदशसूर्यांकान् श्रितो बिंदुस्वरान् पृथक् ॥८॥
पूज्यनामाक्षराद्यास्तु पंच दर्शनबोधकं । चारित्रेभ्यो नमो मध्ये ह्रीं सांतसमलंकृत ॥ ९ ॥

बीज इति ऋषिमंडलस्तवस्य यंत्रस्य मूलमंत्रः; आराधकस्य शुभः
नवबीजाक्षरः अष्टादशशुद्धाक्षरः ॥ एवमेकत्र सप्तविंशत्यक्षररूपः ।

जंबूवृक्षधरो द्वीपः क्षारोदधिसमावृतः । अर्हदाद्यष्टकैरष्टकाष्ठाधिष्ठैरलंकृतः ॥ १ ॥
तन्मध्ये संगतो मेरुः कूटलक्षैरलंकृतः । उच्चैरुच्चैस्तरस्तारतारामंडलमंडितः ॥ २ ॥
तस्योपरि सकारांतं बीजमध्यास्य सर्वगं । नमामि बिंबमार्हंत्यं ललाटस्थं निरंजनं ॥३॥
अक्षयं निर्मलं शांतं बहुलं जाड्यतोज्झितं । निरीहं निरहंकारं सारं सारतरं घनं ॥४॥
अनुद्धतं शुभं स्फीतं सात्विकं राजसं मतं । तामसं विरसं बुद्धं तैजसं शर्वरीसमं ॥ ५ ॥
साकारं च निराकारं सरसं विरसं परं । परापरं परातीतं परं परपरापरं ॥ ६ ॥
सकलं निष्कलं तुष्टं निर्भृतं भ्रांतिवर्जितं । निरंजनं निराकांक्षं निर्लेपं वीतसंशयं ॥ ७ ॥
ब्रह्माणमीश्वरं बुद्धं शुद्धं सिद्धमभंगुरं । ज्योतीरूपं महादेवं लोकालोकप्रकाशकं ॥८॥ कुलक

अर्हदाख्यः सवर्णांतः सरेफो विन्दुमंडितः । तुर्यस्वरसमायुक्तो बहुध्यानादिमालितः ॥ ६ ॥
एकवर्णं द्विवर्णं च त्रिवर्णं तुर्यवर्णकं । पंचवर्णं महावर्णं सपरं च परापरं ॥ १० ॥ युग्मं
अस्मिन् बीजे स्थिताः सर्वे ऋषभाद्या जिनोत्तमाः । वर्णैर्निजैर्निजैर्युक्ता ध्यातव्यास्तत्र संगताः ॥
नादश्चंद्रसमाकारो बिंदुर्नीलसमप्रभः । कलारुणसमा सांतः स्वर्णाभः सर्वतोमुखः ॥ १२ ॥
शिरःसंलीन ईकारो विनीलो वर्णतः स्मृतः । वर्णानुसारिसंलीनं तीर्थकृन्मंडलं नमः ॥ युग्मं
चन्द्रप्रभपुष्पदंतौ नादस्थितिसमाश्रितौ । बिंदुमध्यगतौ नेमिसुव्रतौ जिनसत्तमौ ॥ १४ ॥
पद्मप्रभवासुपूज्यौ कलापदमधिश्रितौ । शिर ईस्थितिसंलीनौ पार्श्वपार्श्वौ जिनोत्तमौ ॥१५॥
शेषास्तीर्थंकराः सर्वे हरस्थाने नियोजिताः । मायाबीजाक्षरं प्राप्ताश्चतुर्विंशतिरर्हतां ॥ १६ ॥
गतरागद्वेषमोहाः सर्वपापविवर्जिताः । सर्वदा सर्वलोकेषु ते भवंतु जिनोत्तमाः ॥१७॥कलापकं
देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा । तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसंतु पन्नगाः ॥१८॥
देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा । तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु नागिनी ।१६।
देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा । तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसंतु गोनसाः ।२०।
देवदेव०...वृश्चिकाः ॥ २१ ॥ देवदेव०...काकिनी ॥ २२ ॥ देवदेव०...डाकिनी ॥२३॥
देवदेव०...साकिनी ॥ २४ ॥ देवदेव०...शाकिनी ॥ २५ ॥ देवदेव०...लाकिनी ॥ २६ ॥

देवदेव० शाकिनी ॥ २७ ॥ देवदेव० हाकिनी ॥ २८ ॥ देवदेव० राक्षसाः ॥ २९ ॥
देवदेव० व्यंतराः ॥ ३० ॥ देवदेव० भेकसाः ॥ ३१ ॥ देवदेव० ते ग्रहाः ॥ ३२ ॥
देवदेव० तस्कराः ॥ ३३ ॥ देवदेव० वह्नयः ॥ ३४ ॥ देवदेव० शृंगिणः ॥ ३५ ॥
देवदेव० दंष्ट्रिणः ॥ ३६ ॥ देवदेव० रेलपाः ॥ ३७ ॥ देवदेव० पक्षिणः ॥ ३८ ॥
देवदेव० मुद्गलाः ॥ ३९ ॥ देवदेव० जृम्भकाः ॥ ४० ॥ देवदेव० तोयदाः ॥ ४१ ॥
देवदेव० सिंहकाः ॥ ४२ ॥ देवदेव० शूकराः ॥ ४३ ॥ देवदेव० चित्रकाः ॥ ४४ ॥
देवदेव० हस्तिनः ॥ ४५ ॥ देवदेव० भूमिपाः ॥ ४६ ॥ देवदेव० शत्रवः ॥ ४७ ॥
देवदे० ग्रामिणः ॥ ४८ ॥ देवदेव० दुर्जनाः ॥ ४९ ॥ देवदेव० व्याधयः ॥ ५० ॥

श्रीगौतमस्य या मुद्रा तस्या या भुवि लब्धयः । नाभिरभ्यधिकं ज्योतिरर्हः सर्वनिधीश्वरः ॥
पातालवासिनो देवा देवा भूपीठवासिनः । स्वःस्वर्गवासिनो देवाः सर्वे रक्षंतु मामितः ॥५२॥
येऽवधिलब्धयो ये तु परमावधिलब्धयः । ये सर्वे मुनयो दिव्या मां संरक्षंतु सर्वतः ॥ ५३ ॥
ॐ श्री ह्रीश्च धृतिर्लक्ष्मी गौरी चंडी सरस्वती । जयाम्बा विजया क्लिन्नाऽजिता नित्या मदद्रवा॥
कामांगा कामबाणा च सानंदा नंदमालिनी । माया मायाविनी रौद्री कला काली कलिप्रिया॥
एताः सर्वा महादेव्यो वर्तंते या जगत्त्रये । मम सर्वाः प्रयच्छंतु कांतिं लक्ष्मीं धृतिं मतिं ।५६।

दुर्जना भूतवेतालाः पिशाचा मुद्गलास्तथा । ते सर्वे उपशाम्यंतु देवदेवप्रभावतः ॥ ५७ ॥
दिव्यो गोप्यः सुदुष्प्राप्यः श्रीऋषिमंडलस्तवः । भाषितस्तीर्थनाथेन जगत्त्राणकृतोऽनघः ॥५८

यंत्रमंत्रका फल ।

रणे राजकुले वह्नौ जले दुर्गे गजे हरौ । श्मशाने विपिने घोरे स्मृतो रक्षति मानवं ॥ ५९ ॥
राज्यभ्रष्टा निजं राज्यं पदभ्रष्टा निजं पदं । लक्ष्मीभ्रष्टा निजां लक्ष्मीं प्राप्नुवंति न संशयः ६०
भार्यार्थी लभते भार्यां पुत्रार्थी लभते सुतं । धनार्थी लभते वित्तं नरः स्मरणमात्रतः ॥ ६१ ॥
स्वर्णे रूप्येऽथवा कांस्ये लिखित्वा यस्तु पूजयेत् । तस्यैवेष्टमहासिद्धिर्गृहे वसति शाश्वती ६२
भूर्जपत्रे लिखित्वेदं गलके मूर्ध्नि वा भुजे । धारितः सर्वदा दिव्यं सर्वभीतिविनाशनं ॥ ६३ ॥
भूतैः प्रेतैर्ग्रहैर्यक्षैः पिशाचैर्मुद्गलैस्तथा । वातपित्तकफोद्रेकैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ६४ ॥
भूर्भुवः स्वस्त्रयीपीठवर्तिनः शाश्वता जिनाः । तैः स्तुतैर्वंदितैर्दृष्टैर्यत्फलं तत्फलं स्मृतेः ॥६५॥
एतद् गोप्यं महास्तोत्रं न देयं यस्य कस्यचित् । मिथ्यात्ववासिनो देये बालहत्या पदे पदे ।

मंत्रकी विधि ।

आचाम्लादितपः कृत्वा पूजयित्वा जिनावलिं । अष्टसाहस्रिको जाप्यः कार्यस्तत्सिद्धिहेतवे ॥
शतमष्टोत्तरं प्रातर्ये पठंति दिने दिने । तेषां न व्याधयो देहे प्रभवंति च संपदः ॥६८॥
अष्टमासावधिं यावत् प्रातः प्रातस्तु यः पठेत् । स्तोत्रमेतन्महातेजस्त्वर्हद्बिंबं स पश्यति ६९

दृष्टे सत्यार्हते बिंबे भवे सप्तमके ध्रुवं। पदं प्राप्नोति विश्वस्तं परमानन्दसंपदा ॥ ७० ॥ युग्मं

इति श्री ऋषिमण्डलस्तवनं समाप्तम्

यंत्रस्थ चतुर्विंशतितीर्थंकरपूजा ।

ये जित्वा निजकर्मकर्कशरिपून् कैवल्यमाभेजिरे
दिव्येन ध्वनिनाववोध्य निखिलं चंक्रम्यमाणं जगत् ।
प्राप्ता निर्वृतिमक्षयामतितरामंतातिगामादिगां
यक्ष्ये तान् वृषभादिकान् जिनवरान् वीरावसानानहं ॥

ॐ ह्रीं ऋषभादिवर्धमानांतास्तीर्थंकरपरमदेवा अत्रावतरतावतरत संवौषट् ॥
ॐ ह्रीं ऋषभादिवर्धमानांतास्तीर्थंकरपरमदेवा अत्र तिष्ठत २ ठः ठः ॥
ॐ ह्रीं ऋषभादिवर्धमानांतास्तीर्थंकरपरमदेवा अत्र मम सन्निहिता भवत २ वषट् ।

कर्पूरपंकजपरागसुगन्धशीतै–राकाशशांकविमलैः सलिलैर्जलौघैः ।
सन्मित्रतामुपगतैर्मधुरैर्लघिष्ठै–र्द्विर्द्वादशप्रमजिनांघ्रियुगं महामि ॥१॥

ॐ ह्रीं ऋषभाजित–संभवाभिनंदन–सुमति–पद्मप्रभ सुपार्श्व–चंद्रप्रभपुष्पदंतशीतल–श्रेयांस–

वासुपूज्यविमलानंत-धर्म-शांतिकुंथु—अरमल्लिमुनिसुव्रत नमिनेमि-पार्श्ववर्धमानेभ्यस्तीर्थकरपरम देवेभ्यो जलं निर्वपामि इति स्वाहा । जलं । एवं गंधादिष्वपि योज्यं (जैसे जल चढानेमें ॐ ह्रीं आदि कहा गया है वैसे ही चंदन वगैरहमें समझ लेना)।

काश्मीरपूरघनसारगतोद्यभावै—र्बाह्यांतरंगपरितापहरैः पवित्रैः ।
श्रीचंदनोत्कटरसैःसुरसैः सुभक्त्या द्विर्द्वादशप्रमजिनांघ्रियुगं महामि ॥२॥

ॐ ह्रीं ऋषभाजितेत्यादि...गंधं निर्वपामीति स्वाहा ।

माधुर्यगंधनिवहान्वितदिव्यदेहैः कुन्देन्दुसागरकफोज्ज्वलचारुशोभैः ।
शाल्यक्षतैःसुभगपात्रगतैरखंडैर्द्विर्द्वादशप्रमजिनांघ्रियुगं महामि ॥३॥

ॐ ह्रीं ऋषभादि अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।

मन्दारकुन्दकमलान्वितपारिजातजातीकदंबभसलातिथिसत्प्रसूनैः ।
गंधागतभ्रमरजातरवप्रशस्तैर्द्विर्द्वादशप्रमजिनांघ्रियुगं महामि ॥४॥

ॐ ह्रीं० पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

नानारसैर्जिनवरैरिव चारुरूपैः श्रीकामदेवनिवहैरिव भक्ष्यजातैः ।

सव्यंजनैः स्वरकैरिव लक्षणौघैर्द्विर्द्वादशप्रमजिनांघ्रियुगं महामि ॥ नैवेद्यं

दीपव्रजैरमलकीलकलापसारैर्निर्धूमतामुपगतैः सरलंज्वलद्भिः ।
पीतद्युतिप्रचयनिर्जितजातरूपैः द्विर्द्वादशप्रमजिनांघ्रियुगं महामि ॥ दीपं

कृष्णागुरुप्रमुखसारसुगंधद्रव्यप्रोद्भूतमूर्तिभिरलं वरधूपजालैः ।
धूमव्रजप्रमुदितादितिनिंबनौघैः द्विर्द्वादशप्रमजिनांघ्रियुगं महामि धूपं

नारंगपूगकदलीफलनालिकेरसन्मातुलिंगकरकप्रमुखैः फलौघैः ।
शाखासु पाक्यमधिगम्य विरक्तचित्तैः द्विर्द्वादशप्रमजिनांघ्रियुगं महामि फलं

जलगंधाक्षतैः पुष्पैः चरुभिर्दीपधूपकैः । फलैरर्घं विधायाशु श्रीजिनेभ्यो ददे मुदा

ओं ह्रीं अर्घं निर्वपामि स्वाहा

अथ प्रत्येक अर्घ (अत्र हरएककी जुदी जुदी पूजा—अर्घ कहते है)

आनन्दमेदुरशरीरमनंतबोधं गंभीरनादविहितांबुधरावबोधं ।
चाये सुनाभिजजिनाद्भुतनामधेयं धर्मोपदेशजलजीवकृतानुरोधं ॥१॥

ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनसमर्थाय श्रीऋषभतीर्थंकरपरमदेवाय जलादि निर्वपामीति स्वाहा ।
(एवं सर्वत्र गंधादिष्वपि योज्यम्) ॥१॥

संसारसागरसमुत्तरणैकसेतुं ध्यानाग्नितापपरितापितमीनकेतुं ।
संपूजयेयमजितं जितरागशत्रुं निर्वाणगंतगतसीमसुशर्म गंतुं ॥२॥

ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनसमर्थाय श्रीअजिततीर्थंकरपरमदेवाय ज० ।

ध्यानानलप्रसरदग्धविधिद्रुकन्दं श्रीसंभवं गतभवं नितराममंदं ।
देवावतंसविलसितपदारविंदं सेवेय सप्तवरकेतुमनन्तनंदं ॥३॥

ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनसमर्थाय श्रीसंभवतीर्थंकरपरमदेवाय ज० ।

पीयूषलेहनिवहोपगताभिषेकं निर्भासिताखिलशरीरगतातिरेकं ।
संपूजयेयमभिनंदनदेवमेकं कारुण्यवारिविहिताखिलजीवसेकं ॥४॥

ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनसमर्थाय श्रीअभिनन्दनतीर्थंकरपरमदेवाय ।

कोकांकमानतजिताखिलपुण्डरीकं पादावलग्नसुरसंघविलीनपंकं ।
अन्वर्थनामसहितं सुमतिं निरेकं वन्देय मानसमनोहरभव्यलोकं ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनसमर्थाय श्रीसुमतितीर्थंकरपरमदेवाय ज० ।

शोभाविशेषनिहतोद्धतवादिमानं सत्पुंडरीकवरलक्षणशोभमानं

पद्माभमत्र वरदं कृततत्त्वमानं वंदेय चारुमुनिमानसलोकमानं ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनसमर्थाय श्रीपद्मप्रभतीर्थंकरपरमदेवाय ज० ।

सर्वोत्कभव्यजनजातकृतोद्यभावं निःशेषकर्मगणनाशवरेण्यभावं ।

सर्वावबोधपरिछिन्नसमस्तभावं सेवे सुपार्श्वमिह नाथमनंगभावं ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनसमर्थाय श्रीसुपार्श्वतीर्थंकरपरमदेवाय ज० ।

चंद्रांकमिंदुविमलं जिनमर्चयामि कारुण्यवारिधितरंगितमासजंतं ।

चंद्रं विधूतनिखिलाघमहीशसेव्यं साम्यप्ररूढमहिमांचितचारुरूपं ॥८॥

ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनसमर्थाय श्रीचंद्रप्रभतीर्थंकरपरमदेवाय ज० ।

श्रीपुष्पदंतजिनमानतपुष्पदंतं ध्वस्तांतरंगरिपुजातमनंगनष्टँ ।

निःशेषसंगरहितं सहितं गुणौघैः संपूजयामि यतिनाथमनंतबोधं ॥९॥

ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनसमर्थाय श्रीपुष्पदंततीर्थंकरपरमदेवाय ज० ।

कर्पूरचंदनहिमांशुनिभप्रवाहं संसारदावशमनं गमनं विमुक्तेः ।
कारुण्यवारिधिमरिंदममूढमुक्तिं श्रीशीतलेशमभिनौमि नतामरेशं ॥१०॥

ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनसमर्थाय श्रीशीतलतीर्थंकरपरमदेवाय ज० ।

पुण्यानुबंधवरभूतिवृतं भदंतं संतं सतांपतिमनंतगुणं निरन्तं ।
श्रेयांसमत्र निहताखिलकर्मबंधं संपूजयामि विहिताखिलजीवबोधम् ॥११

ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनसमर्थाय श्रीश्रेयांसतीर्थंकरपरमदेवाय ज० ।

निःशेषबोधकलितं कलितं यतींद्रैः कल्याणसंततिविधानसमर्थपुण्यं ।
दांतं विवृद्धकरुणारसमर्चयामि श्रीवासुपूज्यमधिगम्य वरप्रसत्तिं ॥१२॥

ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनसमर्थाय श्रीवासुपूज्यतीर्थंकरपरमदेवाय ज० ।

यः पश्यति स्म नितरां भुवनं समस्तं संपूजयामि विमलं तमहं शरण्यं ।
नानाविधं प्रचुरजंतुभृतं गतांतं स्वाभाविकागतजनुस्सहितं सुभक्त्या ॥१३॥

ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनसमर्थाय श्रीविमलतीर्थंकरपरमदेवाय ज० ।

अंतातिगं विमलकेवलबोधरूपं संजातचारुपदमीशमनंतसंज्ञं ।
संपूजयामि च नमामि तथा स्मरामि देवेन्द्रनागपतिसेवितपादपद्मं १४
ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनसमर्थाय श्रीअनंततीर्थंकरपरमदेवाय ज० ।

धर्मं जिनेन्द्रमभिनौमि नतामरेन्द्रं भव्याब्जखंडहरिदश्वमनेकमेकं ।
धर्मोपदेशविधिपुष्टसमस्तलोकं सर्वावबोधसंयुतं जितमोहतंद्रं ॥१५॥
ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनसमर्थाय श्रीधर्मतीर्थंकरपरमदेवाय ज० ।

शांतिं जिनं स्वपरशांतिविधानदक्षं संक्षिप्तमन्मथमनोरथमेकलक्ष्यं ।
घातिक्षयस्फुरदनल्पविबोधरूपं संपूजयामि निजकांतिजितार्यमाणं ॥१६॥
ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनसमर्थाय श्रीशांतितीर्थंकरपरमदेवाय ज० ।

संभावयामि जिनदेवमनंतवीर्यं प्रोद्भूतनिर्मलविशालसुकीर्तिमूर्तिं ।
कुंथ्वादिजीवसदयं सदयं महांतं कुन्थुं गुणौघममरेशनुतं भदंतं ॥१७॥
ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनसमर्थाय श्रीकुंथुतीर्थंकरपरमदेवाय जलादि० ।

षट्खंडभूमिजयलब्धवरिष्ठकीर्तिं संसारभोगगतरागनिरस्तमूर्तिं ।
संपूजयेयमरनाथमनल्पबोधं सद्भव्यचातकघनाघनसंनिभं तं ॥१८॥
ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनसमर्थाय श्रीअरतीर्थंकरपरमदेवाय ज० ।

श्रीमल्लिनाथमनिशं वरमर्चयामि पादद्वयानतनरेन्द्रसुरेन्द्रजातं ।
क्रोधादिमध्यगतवैरिगणप्ररुष्टं साम्यप्ररूढमनसं सुगिरं निरीशं ॥१९॥
ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनसमर्थाय श्रीमल्लितीर्थंकरपरमदेवाय ज० ।

संमानयामि मुनिसुव्रतनाथमेकं संसारघातनसमर्थबलप्रशक्तं ।
नानामुनींद्रगणसंस्तुतपादयुग्मं संप्राप्तचारुनिखिलर्द्धिमनंतसौख्यं ॥२०॥
ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनसमर्थाय श्रीमुनिसुव्रततीर्थंकरपरमदेवाय ज० ।

वंदामहे नमिजिनं गदरागदोषं पादाग्रघृष्टनिजभालसुरासुरौघम् ।
बाह्यांतरंगतपसा चितकर्मदग्धं सत्सौख्यसागरनिमग्नमनंतदृष्टिं ॥२१॥
ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनसमर्थाय श्रीनेमितीर्थंकरपरमदेवाय ज० ।

श्रीनेमिनाथममनिशं नितरां महामि सीरायुधानुगतकृष्णनतांघ्रियुग्मं ।

निःशेषराजिमतिसंगगतान्तरंगं कंजांकशोभितमनंगविनष्टभावं ॥२२॥

ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनसमर्थाय श्रीनेमितीर्थंकरपरमदेवाय ज० ।

क्रोधोद्धतासुरविशेषकृतोपसर्गै—रक्षोभ्यमानसमहीशकृतानुरोधं ।

श्रीपार्श्वनाथमिह नष्टसमस्तपंकं संपूजयामि वरवांछितदानदक्षं ॥२३॥

ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनसमर्थाय श्रीपार्श्वनाथतीर्थंकरपरमदेवाय ज० ।

सिद्धार्थभूपतिनिशांतविशिष्टभासि श्रीकुण्डलाख्यपुरि जन्म ग्रहीतवान्यः ।

संपूजयामि जिननाथमनारतं तं श्रीवर्धमानमिह वांछितलब्धयेहं ॥२४॥

ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनसमर्थाय श्रीवर्धमानतीर्थंकरपरमदेवाय ज०।

चतुर्विंशतितीर्थेशाः पूर्णार्घं प्रापितास्तरां ।

शान्तिं श्रियं च कल्याणं कुर्वंतु जिनभाजिनां ॥ पूर्णार्घं ॥

इति चतुर्विंशतितीर्थंकरपूजा (इस तरह चौवीस तीर्थंकरोंकी पूजा समाप्त हुई)

अथाष्टवीजाक्षरपूजा ।

हभ्मरघझसखाः पिंडवर्णादिसंयुताः। अत्रावतरत तिष्ठत भवत संनिहितास्तथा

आव्हानादिपुरस्सरप्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रपत्रेषु पुष्पांजलिं क्षिपेत् (उस यंत्रपर आव्हाननादि कह कर पुष्पाको क्षेपे)।

स्ववर्गोपगतं चाये हं पिंडाक्षरसँयुतँ। साग्नि सबिंदु सकलं षष्ठस्वरसमन्वितं ॥२॥

ॐ ह्रीं शाकिनीग्रहभूतवेताल-पिशाचादिकोच्चाटननाशनादिसमर्थाय अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः संयुताय ह्म्ल्व्र्यूं इति बीजवर्णाय जलादि निर्वपामीति स्वाहा। एवं गंधादिष्वपि योज्यम् ।

स्ववर्गोपगतं चाये भं पिंडाक्षरसंयुतं । साग्नि सबिंदु सकलं षष्ठस्वरसमन्वितं ।३।

ॐ ह्रीं शा० क ख ग घङसंयुताय भ्म्ल्व्र्यूं इति बीजवर्णाय० ॥

स्ववर्गोपगतं चाये मं पिंडाक्षरसंयुतं । साग्नि सबिंदु सकलं षष्ठस्वरसमन्वितं

ॐ ह्रीं शा० च छ ज झ ञ संयुताय म्म्ल्व्र्यूं इति बीज० ।

स्ववर्गोपगतं चाये रं पिंडाक्षरसंयुतं । साग्नि सबिंदु सकलं षष्ठस्वरसमन्वितं।५।

ॐ शा० ट ठ ड ढ ण संयुताय ड्म्ल्व्र्यूँ इति बीजवर्णाय० ।

स्ववर्गोपगतं चाये घं पिंडाक्षरसंयुतं । साग्नि सबिंदु सकलं षष्ठस्वरसमन्वितं ६

ॐ ह्रीं शा० त थ द ध न संयुताय ध्म्ल्व्र्यूँ इति बीजवर्णाय० ।

स्ववर्गोपगतं चाये झं पिंडाक्षरसंयुतं । साग्नि सबिंदु सकलं षष्ठस्वरसमन्वितं ७

ॐ ह्रीं शा० प फ ब भ म संयुताय झ्म्ल्व्र्यूँ इति बीज० ।

स्ववर्गोपगतं चाये सं पिंडाक्षरसंयुतं । साग्नि सबिंदु सकलं षष्ठस्वरसमन्वितं ८

ॐ ह्रीं शा० य र ल व संयुताय स्म्ल्व्र्यूँ इति बीज० ।

स्ववर्गोपगतं चाये खं पिंडाक्षरसंयुतं । साग्नि सबिंदु सकलं षष्ठस्वरसमन्वितं

ॐ ह्रीं शा० श स ष ह संयुताय ख्म्ल्व्र्यूँ इति बीज० ।

ह भ म र घ झ स खाः पिंडवर्णादिसंयुताः ।

पूर्णार्घं प्रापिताः संतु शांतये शर्मणेतरां ॥१०॥ पूर्णार्घं ।

इष्टप्रार्थना

ह भ म र घ झ स खाः पिंडवर्णादिसंयुताः ।

जलाद्यैः पूजिताः संतु श्रियै वृद्धयै समृद्धये ॥११॥

इत्यष्टबीजाक्षरार्चनं (इसप्रकार आठ बीजाक्षरोंकी पूजा समाप्त हुई)

अथ अर्हदाद्यर्चनम्।

स्मरामि स्वगुणोपेतान् जिनान् सिद्धान् गुरूंस्त्रिधा।
तत्त्वदृग्ज्ञानचर्याश्च द्विभेदान् मोक्षकारणान्॥ १ ॥

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुतत्त्वदृष्टिज्ञानचारित्राण्यत्रावतरतावतरत संवौषट्। अनेन पद्मपत्रेषु पुष्पांजलिं प्रयुज्याह्वयेत्। आह्वाननं। ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु तत्त्व दृष्टिज्ञानचारित्राण्यत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः। अनेन पद्मपत्रेषु पुष्पांजलिं प्रयुज्य प्रतिष्ठापयेत् स्थापनं। ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु–तत्त्वदृष्टिज्ञानचारित्राण्यत्र मम सन्निहितानि भवत भवत वषट्। अनेन पद्मपत्रेषु पुष्पांजलिं प्रयुज्य सन्निधापयेत्। सन्निधापनं (इन मंत्रोंसे पद्मपत्रपर आह्वनन स्थापन सन्निधीकरण करे उस समय पुष्प चढावे)।

अथ अष्टकम्।

अर्हत्सिद्धगुरूंस्तत्त्वदृग्ज्ञानचरणानि च। तत्पदप्राप्तये सार्धं चार्ये सद्द्रव्यभावतः

ॐ ह्रीं मोक्षसुखोपलंभबीजभूतेभ्योऽर्हत्सिद्धाचार्योपध्यायसर्वसाधुतत्त्वदृष्टिज्ञान चारित्रेभ्यो जलं

निर्वपामीति स्वाहा । एवं गन्धादिष्वपि योज्यं ।

इस श्लोकको पढ पढ कर चंदन आदि सब द्रव्य चढावे ।

अथ प्रत्येक अर्घम् ।

प्राग्द्राक्रतस्य वृष्टिं विसृजति धनदो दंभजिच्छासनोक्तः ।
षण्मासांस्तांस्त्रियुक्तान् सुरयुवतिवरं येषु गर्भं नतेषु ।
स्नात्वा मेरौ विरज्य प्रशमितिजिनाः केवलज्ञानराज्यं
निर्वाणं प्राप्यवासो निखिलरिपुगणं ये हि जित्वा नुमस्तान् ।

ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनसमर्थेभ्यो चतुर्विंशतिजिनेभ्यो जलादिनिर्वपामीति स्वाहा ।

साकारं तद्विरक्तं जगदजगदिह ज्ञातृदृष्टिं प्रकुर्वन्—
ध्रौव्यं नाशं जनिं यद् दुरभिगति गतं तत्स्वतत्त्वं हि येषां ।
गौरागौरप्रणष्टं प्रचुरगुणमयं स्वस्थमत्यन्तरम्यं
तान् सिद्धान् पूजयामस्त्रिभुवनमहितान् ध्येयतामापुषोद्धा ॥

ॐ ह्रीं निष्ठितपरिपूर्णभव्यार्थेभ्यः सिद्धेभ्यो जलादि निर्वपामीति० ।

निःशेषश्रुतसंगमोद्भवरसात्सूक्तिप्रयुक्तीस्तरां
कुर्वन्तो वहुमानसंगतमतोः प्रोद्भूतमिथ्यामतीः ।
नेतुं नाशमनारतं वरगुणान् सूरीन् यजामस्तकान्
ये मिथ्यामतवादिनां नयवतां प्रोत्साहका भूरिशः ।

ॐ ह्रीं भेदाभेदरत्नत्रयपालनसमर्थेभ्यः सूरिभ्यो जलादि निर्वपा० ।

सद्विद्याभ्यासचित्ता यतिमतिमहिता जाततत्त्वावबोधाः
पंचाचारांश्चरंतः स्वयममृतधियश्चारयन्तो गताशाः ।
शिष्यान् ये प्रीणयंतो विनयमुपगतान् सद्गिरा चारुवृत्तान्
शास्त्रार्थं व्यंजयंत्या कृतनिखिलमुदा पाठकास्तान् यजामः ।

ॐ ह्रीं सद्विद्यानुष्ठानाभ्यासोद्यतेभ्यः पाठकेभ्यो जलं निर्वपामीति० ।

एकत्वस्थितिजातसत्सुखभरव्याप्तिस्फुटच्चेतना-
श्चर्यां सांव्यवहारिकीं बहुविधां ये धारयन्तोऽपरां ।

शुद्धस्वात्मगतिप्रवृद्धमहिमाँस्तान् पूजयामो भृशं
साधून् साधितमानसेंद्रियगणान् पीयूषसेविस्तुतान् ॥

ॐ ह्रीं परमसुखप्राप्तिबद्धकक्षापरमोपेक्षानियतेभ्यः सर्वसाधुभ्यो० ।

तत्त्वार्थरुचिरूपां तां संसारानंत्यनाशिनीं। वृत्तादिकमूलभूतां तत्त्वदृष्टिं भजाम्यहं

ॐ ह्रीं संसारांतकरणसमर्थायै तत्त्वदृष्ट्यै जलादि निर्वपामीति० ।

तत्त्वार्थाधिगमाधीनं संशयादिकनाशनं। चारित्रमित्रताकारि सम्यग्ज्ञानं यजाम्यहं

ॐ ह्रीं सत्सुखप्राप्तिमूलभूताय सम्यग्ज्ञानाय जलादि निर्वपामीति० ।

सार्वसावद्यराहित्यरूपं चारित्रमंजसा। यजामि चारु भक्त्याहं संसारक्षयकारकं

ॐ ह्रीं स्वर्गादिसंपत्तिनिदानभूताय सम्यक्चारित्राय जलादि निर्व० ।

अर्हत्सिद्धगुरुदृष्टिज्ञानचर्याःसुपूजिताः। पूर्णार्घं प्रापिताश्चेह संतु क्षेमाय शर्म्मणे

ॐ ह्रीं० पूर्णार्घं नि० ।

इत्यर्हदाद्यर्चनं ।

अथ भावनेंद्राद्यर्चनं

भावनेशादिकाः शक्राः श्रुतावध्यादियोगिनः ।
आयात शब्दये युष्मानत्रोपविशत तथा ॥

अथ आह्वानादिपुरस्सरं प्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पद्मपत्रेषु पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् । आह्वाननादि करके पुष्प चढावे)

भावनेन्द्रं यजामीह स्फुरंतं निजसच्छ्रिया । निजवाहनमारूढं भजंतं जिननायकं

ॐ ह्रीं भावनेन्द्रायेदं अर्घं, पाद्यं गंधं पुष्पं दीपं धूपं चरु बलिं स्वस्तिकाक्षतं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा ।

व्यंतरेन्द्रं समर्चामि व्यंतरव्यूहसेवितं । नमन्तं तीर्थनाथं तं विश्वविघ्नोपशांतये।२

ॐ ह्रीं व्यंतरेंद्राय अर्घं, पाद्यं गंधं पुष्पं दीपं धूपं चरु बलिं स्वस्तिकमक्षतं यज्ञभागं च ०

ज्योतिष्केंद्रं स्फुरत्कांतिंजिनस्यापास्तितत्परं बलिनानुनये तं च वाहनादिविभूतिगं

ॐ ह्रीं ज्योतिष्केन्द्राय अर्घं पाद्यं गंधं पुष्पं दीपं धूपं चरु बलिं स्वस्तिकमक्षतं यज्ञभागं च ०

संभावयामि कल्पेशं सुधांधोनिवहानुगं । विभूतया परया युक्तं जिनयज्ञोत्सुकतां गतं

ॐ ह्रीं कल्पेद्राय अर्घं पाद्यं गंधं पुष्पं दीपं धूपं चरु बलिं स्वस्तिकमक्षतं यज्ञभागं च यजामहे०

श्रुतावधिमुनींश्चाये द्विधा संयमपालकान्।
तादृग्विशुद्धिसंयुक्तान् ध्यानसंगतमानसान्॥ ५॥

ॐ ह्रीं श्रुतावधिभ्यो नमः इदं जलादि अर्घं निर्वपामि स्वाहा।

देशावधिमुनींश्चाये द्विधा संयमपालकान्।
तादृग्विशुद्धिसंयुक्तान् ध्यानसंगतमानसान्॥ ६॥

ॐ ह्रीं देशावधिभ्यो नमः जलाद्यर्घं निर्वपामि स्वाहा।

परमावधिमुनींश्चाये द्विधा संयमपालकान्।
तादृग्विशुद्धिसंयुक्तान् ध्यानसंगतमानसान्॥ ७॥

ॐ ह्रीं परमावधिभ्यो नमः जलाद्यर्घं निर्वपामि स्वाहा।

सर्वावधिमुनींश्चाये द्विधा संयमपालकान्।
तादृग्विशुद्धिसंयुक्तान् ध्यानसंगतमानसान्॥ ८॥

ॐ ह्रीं सर्वावधिभ्यो नमः जलाद्यर्घं निर्वपामि।

बुद्धयर्द्धिसन्मुनींश्चाये द्विधा संयमपालकान् ।
ताद्दग्विशुद्धिसंयुक्तान् ध्यानसंगतमानसान् ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं बुद्धिऋद्धिप्राप्तेभ्यो नमः जलाद्यर्घं निर्वपामि स्वाहा

सर्वौषधर्द्धिसंप्राप्तान् द्विधा संयमपालकान् ।
ताद्दग्विशुद्धिसंयुक्तान् ध्यानसंगतमानसान् ॥१०॥

ॐ ह्रीं सर्वौषधिप्राप्तेभ्यो नमः जलाद्यर्घं निर्वपामि० ।

अनन्तबलर्द्धिसंप्राप्तान् द्विधा संयमपालकान् । ताद्दग्विशुद्धिसंयुक्तान् ध्यान०

ॐ ह्रीं अनन्तबलर्द्धिप्राप्तेभ्यः जलाद्यर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

तप्तर्द्धिगमुनींश्चाये द्विधा संयमपालकान् । ताद्दग्विशुद्धिसंयुक्तान् ध्यान०।१२।

ॐ ह्रीं तप्तर्द्धिप्राप्तेभ्यः जलाद्यर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

रसर्द्धिगमुनींश्चाये द्विधा संयमपालकान् । ताद्दग्विशुद्धिसंयुक्तान् ध्यान०॥१३॥

ॐ ह्रीं रसऋद्धिप्राप्तेभ्यः जलाद्यर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

विक्रियर्द्धिमुनींश्चाये द्विधा संयमपालकान् । ताद्दग्विशुद्धिसंयुक्तान् ध्यान०१४

ॐ ह्रीं विक्रियर्द्धिप्राप्तेभ्यः जलाद्यर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

क्षेत्रर्द्धिगमुनींश्चार्चये द्विधा संयमपालकान् । तादृग्विशुद्धिसंयुक्तान् ध्यान०।१५।

ॐ ह्रीं क्षेत्रर्द्धिप्राप्तेभ्यः जलाद्यर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

अर्चेऽक्षीणमहानसर्द्धीन् द्विधा संयमपालकान् ।
तादृग्विशुद्धिसंयुक्तान् पूजयामि मुनीश्वरान् ॥ १६ ॥

ॐ ह्रीं अक्षीणमहानसर्द्धिप्राप्तेभ्यः जलाद्यर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

पूर्णाहुतिः ।

भावनेशादिकाः शक्राः श्रुतावध्यादियोगिनः ।
शिवं दिशंतु भक्तेभ्यः प्राप्ताः पूर्णाहुतिं परां ॥ १७ ॥

इष्टप्रार्थना ।

भावनेशादिकाः शक्राः श्रुतावध्यादियोगिनः ।
शांतिं पुष्टिं च कुर्वंतु श्रियं मानववासिनीं ॥ १८ ॥

इति भावनेन्द्राद्यर्चनं ॥

अथ श्र्यादिदेवतार्चनं।

श्राद्याः संशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः।
अत्रोपविशतैता वो यजे प्रत्येकमादरात् ॥

आह्वानादिपुरस्सरं प्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पद्मपत्रेषु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ॥

अथ पूजा—

जिनेन्द्रभक्तिसंसक्तां श्रीदेवीं संयजाम्यहं ॥
परिच्छदयुतां कांतां जलगंधाक्षतादिभिः ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री देवि अत्र आगच्छ आगच्छ इदं अर्घं पाद्यं गंधं पुष्पं दीपं धूपं चरुं बलिं स्वस्तिकमक्षतं यज्ञभागं च भावाभिवेदितां यजामहे प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा।

त्रैलोक्यनायकं धीरं संसारार्णवतारकं।
जिनं भजंतीं सद्भक्त्या ह्रीं देवीं पूजयाम्यहं ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं ह्री देवि० जलाद्यर्घं निर्वपामि स्वाहा।

अनन्तसुखसम्पन्नं भवातीतं निरंजनं।

निर्विकारं निराकारं निराकांक्षादिसंयुतं।
स्वभावमानयंतीं तां समर्चामि जिनं जयां ॥८॥
ॐ ह्रीं जये देवि०।
तामम्बिकामहं चाये यां जिनं सेवतेतरां।
दिव्यध्वनिसमायुक्तं ज्ञानं व्याप्तजगत्त्रयं ॥९॥
ॐ ह्रीं अंबिके देवि०।
निःशेषघात्यरातीनां नाशं कृत्वा जिनो हि सः ॥
तत्त्वं शास्ति च यः सेव्यो यस्यास्तां विजयां यजे ॥१०॥
ॐ ह्रीं विजये देवि०।
जगत्संबोध्य यः प्राप्तो निर्वृतिं जिनराड् महान्।
तं सेवमानां क्लिन्नाख्यां प्रापयामि मुदंतरां ॥११॥
ॐ ह्रीं क्लिन्ने देवि०।
या तनोति नतिं नित्यं भक्ति मव्यक्तमानसा।

ॐ ह्रीं कामवाणे देवि॰ ।

सानंदां देवतां चाये या तनोति मुदं जिने ।
नित्यानंदभरव्याप्ते निखिलामरसेविते ॥१७॥

ॐ ह्रीं सानंदे देवि॰ ।

पूजयामीह तां देवीं नंदिमालिनिकां जिने ।
भक्तिं करोति या नित्यं हृष्टा च सपरिच्छदा ॥१८॥

ॐ ह्रीं नंदिमालिनि देवि॰ ।

मायादिदोषनिर्मुक्तं व्याप्ताशेषजगत्त्रयं ।
सेवमानां जिनं मायां प्रीणोमि बलिना मुदा ॥१९॥

ॐ ह्रीं माया देवि॰ ।

मायाविनीं भजे देवीं जिननाथं भजत्यलं ।
मायामपास्य दातारं शांतरूपं कलेवरं ॥२०॥

ॐ ह्रीं मायाविनि देवि॰ ।

रौद्रभावस्य हंतारं कर्तारं मोक्षकांक्षिणां ।
सुखस्य रौद्रीं भजतीं जिनं चाये मनोहरं ॥२१॥
ॐ ह्रीं रौद्रि देवि० ।

निष्कलं सकलं भूतमभूतं जिनमुत्तमं ।
निजचित्तं नयंतीं तां, कलादेवीं महाम्यहं ॥२२॥
ॐ ह्रीं कले देवि० ।

स्वस्थमस्वस्थमव्यक्तं व्यक्तं नित्यमनित्यकं ।
उपकुर्यां नहि कालीं भजंतीं जिननायकं ॥२३॥
ॐ ह्रीं कालि देवि० ।

अक्षयिज्ञानपूरेण संभृतं सत्समज्ञकं ।
कलिप्रियां सेवमानां समर्चामि जिनोत्तमं ॥२४॥
ॐ ह्रीं कलिप्रिये देवि० ।

इत्येताः श्र्यादिका देव्यो जिनसेवापरायणाः ।

अनुगृह्णन्तु जैनांश्च पूर्णार्घं प्रापितान्नरान् ॥२५॥ (पूर्णार्घं)

इष्टप्रार्थना।

श्र्यादिकाः सकला देव्यः शांतिं तन्वंतु पूजिताः।
जलगंधाक्षतैः पुष्पैश्चरुदीपफलादिकैः ॥२६॥

इति श्र्यादि देवतार्चनं। (इस तरह श्री आदि देवियों की पूजा हुई)

अतः परं ऋषिमंडलस्तोत्रोक्तमहामन्त्रेण यंत्रोपरि जलप्रक्षालितलवंगानां तदभावे जात्यादिपुष्पाणां वा अष्टोत्तरशतं शुद्धैकाग्रमनसा स्थिरासनेन जपेत्। ॐ ह्रां ह्रिं ह्रुं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रौं ह्रः असिआउसा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो ह्रीं नमः। ततः परं चतुर्विंशतितीर्थंकराणामिमां जयमालां पठेत्। तद्यथा—

अर्थ—इसके वाद ऋषिमंडलस्तोत्र में कहे हुये महामंत्रसे यंत्रके ऊपर जल से धुली हुई लोंगों (लवंग) को अथवा चमेलीके फूलोंको एकसौ आठ बार शुद्ध एकचित्त स्थिर आसन होकर जपे। अर्थात् मंत्र बोलता जाय और एक एक पुष्प या लोंग चढ़ाता जावे—इस तरह एकसौ आठ बार की एक माला फेरे। वह मंत्र 'ॐ ह्रां' इत्यादि लिखा हुआ है। उसके वाद चौवीस तीर्थंकरों की इस जयमालाको पढे वह इस तरह 'पणविवि' इत्यादि है।

पणविवि जिणदेवहं सुरकयसेवहं णासिय जम्मजरामरहं ।
सिवसुहकयरायहं गयभयरायहं णियभत्तिए जुत्तिए थुणमि ।
जय आइणाह कम्मारिवाह, जय अजिय जिणेसर मोहदाह ।
जय संभव गयभवरायडंभ, जय अहिणंदणजिण परमबंभ ॥
जय सुमइ कुमइगयराय देव, जय पउमप्पह सुरविहियसेव ।
जय जय सुपास मणहरसुभास, जय चंदप्पह जियचंदहास ॥
जय पुप्फयंत जियपुप्फयंत, जय सीयल णिरसियपीयकंत ।
जय सेयदेव कयभव्वसेव, जय वासुपुज्ज सुरकियणिसेव ॥
जय विमलजिणेसर विमलणाण, जय जिणअणंत गयपरमठाण ।
जय धम्म धम्मदेसणसमत्थ, जय संति संतिगयगंथसत्थ ॥
जय कुंथुसामि गयकम्मपंक, जय अर अर सामिय समियसंक ।
जय मल्लिसामि णियसत्तभंग, जय मुणितव्वय तवजियअणंग ॥

जय णमिजिण णिरसिय सव्वसंग, जय णेमि मुक्करायमइसंग ।
जय पासदेव फणिवइवरिट्ठ, जय वड्ढमाण गुणगणगरिट्ठ ॥

घता—इय थुणिवि जिणेसर महिपरमेसर णासियकम्मकलंकभरं ।
सुरवइबहुभासिय भवभयभंसिय उत्तारिज्जइ अग्घवरं ॥

अत्यादरेण अतिसंभ्रमेण त्रिःप्रदक्षिणया एतत् पठित्वा जलादिविरचितं स्वर्णादिभाजनस्थितं पूर्णार्घं अवतार्य प्रणमंति शक्रादयो, अपि च यदि पूजायां पूर्णायां सत्यां कियती रात्रिस्तिष्ठति तदा तीर्थंकराणां चारित्रादिकथनेन तां पूर्णतामानीय प्रभाते स्नपनविधिं कुर्यात् ।

ततः परं 'शांतिजिनं शशिनिर्मलवक्त्र' इत्यादि पठित्वा शांतिं विदध्यात् । ततश्चाशीर्वादाः पठनीयास्तद्यथा—

अर्थ—इस जयमाला और घत्ताको अति आदरसे अति उत्कंठासे पढकर तीन प्रदक्षिणा देता हुआ जल आदि आठ द्रव्योंसे बने हुए सुवर्ण आदिके पात्र में रक्खे हुए पूर्ण अर्घको चढाकर इन्द्र आदि सब जने मिलकर नमस्कार करें यदि पूजा पूर्ण हो जाय और कुछ रात रहे तो उस समय तीर्थंकरोंका पुराण आदि बांचकर रात्रिको विताकर सवेरे अभिषेक-विधि करे । उसके बाद "शांतिजिनं" इत्यादि शांतिपाठ पढकर शांतिविधान करे । उसके पश्चात् इन आशीर्वाद श्लोकोंको पढ़े जोकि "निःशेष" आदि लिखे गये हैं ।

निःशेषामरशेखरार्चितपदद्वन्दोल्लसत्सन्नख-
व्रातप्रोद्गतकांतिसंहतिहतप्रव्यक्तभक्त्या स्खलत् ।
गीर्वाणेशमहोत्तमांगमुकुटप्रस्फूर्त्तिमद्रत्नभा
ऋद्धिं वृद्धिमनारतं जिनवराः कुर्वंतु वः सर्वदा ॥१॥
अशेषकर्मारिविनाशजातप्रस्पष्टदृग्ज्ञप्तिसुखस्वरूपाः ।
शांतिं धृतिं शर्म शिवं च सिद्धास्तन्वंतु वो वांछितदानदक्षाः ॥२॥
ये चारयंति च चरंति मलव्यतीतं पंचांगमाचरणमत्र विनेयवर्गान् ।
ते संतु चारुगिर आनतदेववर्गाः सौख्याय चारुमतयो गुरवस्त्रिधापि ॥३॥
भावनेशादिकाः शक्रा दिव्या हि श्र्यादिका वराः ।
अन्येपि च सुपर्वाणः विघ्नघाताय संतु वः ॥४॥
यावच्चंद्रोर्यमा च प्रतपति भुवने गांगमर्णः सुमेरु-
र्यावत्स्वर्गाः समुद्राः सुरविसरभृताः सद्विमानाः कुलागाः ।

यावन्नक्षत्रमार्गो जिनपतिभवनान्यस्तकर्मारिचक्राः

सिद्धास्त्वं पुत्रपौत्रैः सुखमनुभव वै संयुतो नन्द जीव ॥५॥

इत्येतानाशीर्वादान् पठित्वा यष्टुस्तद्भार्यायाश्च वस्त्रे जिनांघ्रिप्रसूनप्रचयं प्रक्षिपेत् ।

ॐ समाहूता देवाः सर्वे स्वस्थानं गच्छत गच्छत ।

इति विसर्जनमंत्रोच्चारणेन यंत्रोपरि पुष्पाञ्जलिं वितीर्य देवान् विसर्जयेत् ।

चतुर्विंशतितीर्थेशास्तथार्हदादयोपि च ।

अष्टावपि स्फुरन्त्वत्र परमानंदकारिणः ॥६॥

इत्यनेन चतुर्विंशतितीर्थेशानष्टावर्हदादींश्चाध्यासयेत् ।

इति देवताविसर्जनं

इन आशीर्वादोंको पढ़कर पूजा करानेवाले यजमान और उसकी स्त्रीके कपडोंके ऊपर भगवानके चरणोंमें चढ़ाये गये फूलोंको लेकर फेंके। उसके बाद 'ओं समाहूता' इत्यादि विसर्जन मंत्र बोलकर यंत्रके ऊपर फूल चढ़ाके देवोंका विसर्जन करे। फिर "चतुर्विंशति" आदि श्लोक बोलकर चौबीस तीर्थंकर और अर्हंत आदि आठ पदोंका ध्यान करे। इस प्रकार देवताविसर्जन समाप्त हुआ।

कर्मारातिचतुष्टयी क्षयमगात् संजातवान् बोधराट्
वाणी विश्वहितंकरा समभवद्विश्वार्थसंदर्शिनी ।
येषां देवमहीशसंस्तुतपदां भव्याब्जपूष्णां सतां
तद्वीं शांतिमनारतं जिनवराश्चान्वंतु ते भावुकं ॥

अनेन यन्त्राग्रे शांतिधारां प्रकल्प्येत्थं बलिं दद्यात् । ॐ अर्हद्भ्यो नमः सिद्धेभ्यो नमः सूरिभ्यो नमः पाठकेभ्यो नमः सर्वसाधुभ्यो नमः अतीतानागतवर्त्तमानत्रिकालगोचरानन्तद्रव्यगुण पर्यायात्मकवस्तुपरिच्छेदक सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राद्यनेकगुणगणाधार पंच परमेष्ठिभ्यो नमः । पुण्याहं ३ प्रीयंतां ३ ऋषभादि वर्धमान पर्यन्त तीर्थंकर परमदेवास्तत्शासनपालिन्यः प्रतिचक्रेश्वरी प्रभृति चतुर्विंशति यक्षयः आदित्य, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहू, केतु, प्रभृत्यष्टाशीतिग्रहाः । वासुकि शंखपाल कर्कोटक पद्म कुलिकानंत तक्षक महापद्म जय-विजय नाग यक्ष गन्धर्व ब्रह्मराक्षस भूत व्यंतरप्रभृति भूताश्च सर्वेप्येते जिनशासनवत्सलाः ऋष्यार्यिका श्रावक श्राविका यष्टृ याजक राज मंत्रि पुरोहित सामंतारक्षक प्रभृति समस्तलोक समूहस्य शांति वृद्धि पुष्टि तुष्टि क्षेम कल्याण स्वायुरारोग्यप्रदा भवन्तु, सर्वसौख्यप्रदाश्च संतु । देशे राष्ट्रे पुरेषु च सर्वदैव चौरारिमारिईति-दुर्भिक्ष विग्रह विघ्नौघ दुष्टग्रह भूत शाकिनी

प्रभृत्यशेषाण्यनिष्टानि प्रलयं प्रयांतु। राजा विजयी भवतु। प्रजा सौख्यं भजतु। राजप्रभृति समस्त लोकाः सततं जिनधर्मवत्सलाः पूजादान व्रत शील महामहोत्सव प्रभृतिषूद्यता भवंतु चिरकालं नंदंतु। यत्र स्थिता भव्यप्राणिनः संसारसागरं लीलयैवोत्तीर्यानुपमसिद्धिसौख्यमनन्तकालमनुभवंत्विति पठित्वा सर्वतः पुष्पाक्षतादिभिर्बलिं दद्यात्।

इति बलिविधानं।

"कर्मा" आदि श्लोकोंको बोलकर यंत्रके आगे शांतिधारा (जलकी धार) चढ़ाकर अष्टद्रव्य चढ़ावे। फिर "ॐ अर्हद्भ्य" से लेकर "अनुभवतु" यहांतक पढ़कर चारोतरफ पुष्प अक्षत आदि आठ द्रव्योंका मिला हुआ अर्घ चढ़ावे।

इस प्रकार पूजाकी विधि समाप्त हुई।

अंतिम कर्तव्य।

ततो ह्यागतसंघं च शक्रं निजपरिच्छद।
गुर्वादिकं तथान्यांश्च तर्पयेच्च यथायथं ॥१॥
करोति कारयत्येव कुर्वन्तमनुमोदते।
इमां पूजां हि यो धन्यो गुणनंदी स जायते ॥२॥

भावार्थ—यन्त्रकी पूजाके बाद मुनि, अर्जिका; श्रावक श्राविका इन्द्र (प्रतिष्ठाविधिको करानेवाला) तथा अपने साधर्मी भाइयोंको आहार दान समदान वगैरहसे यथायोग्य सत्कार करे। आचार्य कहते है कि जो इस ऋषिमंडल यन्त्रकी पूजाको शुद्ध मन वचन कायसे करेगा करावेगा तथा करते हुएकी मनसे भावना व प्रशंसा करेगा 'अर्थात् तुमने बहुत ही उत्तम कार्य किया है मुझको भी कोई शुभ अवसर मिलेगा तो करूंगा इत्यादि, वह अन्य पुरुष गुणोंमें ही आनन्द करने वाला अर्थात् निराकुल सुखको भोगनेवाला अवश्य हो जायगा ॥२॥

ग्रंथकर्ताकी प्रशस्ति ।

गुणनंदिमुनींद्रेण रचिता भक्तिभावतः। शतत्रयाधिकाशीतिः श्लोकानां ग्रंथसंख्यया ॥१॥

अर्थ—यह ऋषिमंडल यंत्रकी पूजा श्री गुणनंदि मुनीश्वरने अत्यन्त भक्तिभावसे रची है। इसकी ग्रंथ संख्या का प्रमाण एकसौ तिरासी श्लोक के अनुमान है॥

श्रीमच्चारुचरित्रपात्रगुणवच्छ्रीज्ञानभूषांघ्रिभा—गर्हच्छासनभक्तिनिर्मलरुचिः पद्माजनुर्वा शुचिः। वीरांतःकरणश्च चारुचरणो बुद्धिप्रवीणोरचत् पूजां श्रीऋषिमंडलस्य महतीं नंदी गुणादिर्मुनिः।१।

इति ऋषिमंडल पूजा ।

भावार्थ—सम्यक् चारित्रके पालनेवाले गुणवान् ज्ञानभूषण मुनिके चरणोंके सेवक जिनेंद्रदेवके

भक्त इस (मुझ) गुणनंदि मुनिने महावीर प्रभुको अंतः करण में विराजमान कर यह श्री ऋषिमंडल यंत्र की महान् पूजा रची है। इसप्रकार संस्कृत पूजा समाप्त हुई ॥

इति श्री ऋषिमंडलमन्त्रकल्पः।

—०—

अथ दशादिक्पालपूजा।

दिगीशाः शब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः। अत्रोविशतैतान् वो यजे प्रत्येकमादरात् ॥१॥ आह्वानादिपुरस्सरं प्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय कमलेषु पुष्पाक्षतं क्षिपेत्। विपुलपविसमास्त्रस्त्रैदशानीकशुंभत्प्रकटघटितटंकाघंटिकैरावणस्थं। जिनयजनविधानप्राप्तसंमानदानं सुरपतिमिह चाये प्राक्शचीपूज्यपादम् ॥२॥ ओं आं क्रौं ह्रीं इन्द्र आगच्छ २ इंद्राय जलं चांदनं अक्षतं पुष्पं नैवेद्यं दीपं धूपं फलं अर्घं निर्वपामीति स्वाहा। स्वाहान्वितं सुकुंडीं दधतमिह करे वामके पुण्यसूत्रमन्यस्मिन् ब्रह्मसूत्रं पृथुमधुपनिभच्छागराजाधिरूढं। रक्ताक्षं प्राच्यपाच्यां श्रुतसुभगमुखं देवदेवात्तभक्तिं चायेग्निं पापतापप्रबलगदमदारंभदंभप्रशांत्यै ॥३॥ ओं आं क्रौं ह्रीं अग्ने आगच्छ २ अग्नये जलादि अर्घं स्वाहा। लुलायवाहं विधुकांडदंडसुंडामरक्रूरवधूप्रलोकं। यमं यजे पाच्यमितप्रभावं नृशंसरूपं प्रथितं पृथिव्यां ॥४॥ ओं यम आगच्छ। ऋक्षारूढं तिमिरकरुचां क्रूररक्षोभियुक्तं नैऋत्यरां द्रुघनघनकोच्छिन्नरौद्रारिवर्गं। चेकीयेहं निजवरवधूलोलनेत्रं लवित्रं

विघ्नौघानां जिनवरमहे नैऋते योगभाजं ॥ ५ ॥ ओं नैऋत्य ...... । सलिलकमलखेलत्प्रोल्ल-सद्‌तदीप्तिः सुकरिमकररूढं पाशपाणिं वराच्चं । अपरदिशि यजेहं मौक्तिकाहारधारं वरुणमिह वधूभिर्भासुरं भासितांगं ॥६॥ ओं वरुण । मारंग्ययुग्यमिह वृत्तमहास्त्रपाणिं वातं प्रणामि व्यचलल्लघुलोलदेहं । अस्तोत्तरांतरदिशि प्रथितोरुचंडं नानार्थसार्थकरणोद्धरणैकदक्षं ॥७॥ ओं पवन । मरालवृंदोद्धृतपुष्पकाख्यविमानरूढं धनदं प्रणामि । उदःस्थितं काम्यधनादिदेवी-स्तुतं सुमुक्ताफलदामरम्यं ॥८॥ ओं कुबेर । पूर्वोत्तरेशं वृषभादिरूढं शूलं कपालं स्वगणं धरंतं । भुजंगभूषं सजटार्धचंद्रं शिवं धिनोमि प्रगुणप्रकाशं ॥ ९ ॥ ॐ ईशान । पद्मावतीप्राणपतिं ससर्पकरं गिरीशप्रणधिं प्रणामि । कूर्माधिरूढं धरणं फणारुग्भांतं महोद्रेकहरं सशम्त्रं ॥ १० ॥ ॐ धरणेंद्र । सिंहासनं कुंतकरं भयुक्तं सुरोहिणीष्टं वरमाल्यभूषं । ज्योत्स्नासुवर्णं कुमुंदाकरेष्टं महामि सोमं जिनयज्ञ ऊर्ध्वं ॥ ११ ॥ ॐ सोम । पूर्णाहुतिं पूर्णरथा दिगीश्वराः प्रयांतु चानंदकराः सुसेविताः । दृष्टं गतानां शुभशांतिकारिणो जैनांत्सवे सर्वजनोत्तमानाम् ॥ पूर्णार्घम् ।

इति दिक्पालार्चनं ॥

अथ क्षेत्रपालार्चनं

सर्पदर्पसुसर्पभूषणचरभ्राजिष्णुसत्किंकिणीक्वाणध्वानितनूपुरं स्फुटनटत्सत्सारमेयासनं । क्षेत्रेशं

धृतमस्तकोत्तमजिनं दंष्ट्राकरालं भजे भृङ्गाभं हरिदंबरं तिलगुडैरालोड्य सिंदूरकैः ॥१॥ ओं ह्रीं क्रौं प्रशस्तवर्णसर्वलक्षणसंपूर्णस्वायुधश्वरवाहनवधूचिह्नसपरिवार हे क्षेत्रपाल एह्येहि संवौषट् आह्वाननं स्थापनं संनिधापनं । इदं अर्घ्यं पाद्यमित्यादिस्वाहा । इति क्षेत्रपालार्चनं समाप्तं ॥

(इस प्रकार क्षेत्रपालकी पूजा समाप्त हुई)

मन्त्रसाधनकी आवश्यक विधि ।

योगोपदेशदेवतासकलीकरणोपचारजपहोमान् । दिक्कालादीन् मंडलमक्षरसंज्ञांश्च विज्ञाय ॥ १ ॥ दिक्कालमुद्रासनपल्लवानां भेदं परिज्ञाय जपेत् स मंत्री । न चान्यथा सिद्ध्यति तस्य मंत्रः कुर्वन् सदा तिष्ठतु जाप्यहोमम् ॥ २ ॥ साधकाख्यादिमंत्रादिवर्णौ भतारयोरपि । तद्राश्योश्च तयोश्चानुकूल्यं योग इति स्मृतः ॥ ३ ॥ मंत्रो गुरूपदिष्टः स्यात् सफलस्तदिह पुस्तके । प्रकट लिखितोपि गुरोरेव ग्राह्य न च स्वयम् ॥ ४ ॥ वृषवदनमहायक्षस्त्रिमुखो यक्षेश्वरश्च तुंबुरुकुसुमौ । मातंगयक्षविजयाजितो ब्रह्मा तथेश्वरकुमाराख्यौ ॥५॥ चक्रेश्वरी रोहिणी च प्रज्ञप्तिर्वज्रशृंखला । तथा पुरुषदत्ता च मनोवेगा च कालिका ॥६॥ तीर्थेषु महायक्षाः क्रमाच्चतुर्विंशतिजिनानां । स्युश्चतुर्विंशतिर्यक्ष्यः सेवंते जिनशासनं ॥७॥ आसां

प्रसादात् संप्राप्तखेचरत्वादिवैभवाः । विद्याधरा विराजंते मर्त्या अपि सुरा इव ॥८॥ ध्यात्वैवं परया भक्त्या प्रोक्ता विद्याधिदेवताः । तत्र विद्यासु कर्तव्याः सकलीकरणादयः ॥९॥ मिसाधयिषुणा विद्याम‌विघ्नेनेष्टसिद्धये । यत्स्वस्य क्रियते रक्षा सा भवेत् सकलीक्रिया ॥१०॥ शुद्धे नामृतमंत्रेण वेष्टयं तच्छुद्धियंत्रकं । न्यस्य शुद्धजले स्नायाद्येनामृतपदं स्मरेत् ॥ ११ ॥ एवं स्नानपवित्रांगो धौतवस्त्रपरिग्रहः । स्थित्वा संमार्जितैकांतप्रदेशे देशसंयमी ॥ १२ ॥ कृतेर्यापथसंशुद्धिः पर्यंकासनसंस्थितः । समीपस्थार्चनाद्रव्यः कुर्याद्विधिमिमं पुरा ॥१३॥ परमात्मानमात्मानं प्रातिहार्यैरलंकृतं । ध्यायेत् स्वपदयुग्भावनप्रभूधचराचरम् ॥ १४ ॥ इत्थं संकीर्तितामेनां विधाय सकलीक्रियां । पँचोपचारविधिना यजेन्मंत्राधिदेवतां ॥१५॥ पञ्चाह्वाननस्थापनसाक्षात्करणार्चना विसर्गाः स्युः । मंत्राधिदेवतानामुपचाराः कीर्तितास्तज्ज्ञैः ॥१६॥ आह्वानं पूरकेण स्यात् रेचकेन विसर्जनं । शेषकर्माणि योज्यानि कुंभकेन प्रयत्नतः ॥ १७ ॥ अथवैषामपि मंत्राणामवचने जपादिषु संख्या । शतमष्टोत्तरसंख्या सहस्रमष्टोत्तरं वदन्ति जिनाः ॥१८॥ सर्वेषामपि मंत्राणां मनसा जिह्वया शनैः । उच्चैरपि जपेद्भक्त्या विहितो मन्यते क्रमात् ॥ १९ ॥ जपादविकलो मंत्रः स्वशक्तिं लभते परां । होमार्चनादिभिस्तस्य तृप्ता स्यादधिदेवता ॥२०॥ एकस्तावद्वह्निः पुनरपि पवनाहतो न किं कुर्यात् । एको मंत्रः पुनरपि जपहोमयुतोस्य किमसाध्यं ॥२१॥ जपकाले नमः शब्दं मंत्रस्यांते प्रयोजयेत् । होमकाले पुनः स्वाहा मंत्रस्याद्यं सदा क्रमः ॥ २२ ॥

होमादिषु संख्या स्यात् दशभागा मूलमंत्रसंख्यायाः । अङ्गादेरपि संख्या मंत्रस्य तथैव बोद्धव्या २३
चतुरस्रं त्रिकोणं च वृत्तं चेति त्रिधा विदुः । कुंडानि गार्हपत्याद्याः पूज्यंते यत्र पावकाः ॥२४॥
मारणाकृष्टिवश्येषु त्र्यस्रं कुंडं प्रशस्यते । विद्वेषोच्चाटयोर्वृत्तमन्येषु चतुरस्रकं ॥ २५ ॥ तेषां हस्तो-
वगाढे च विस्तारे च प्रमा मता । पृथक् पृथक् स्मृतास्तिस्रो मेखलास्त्रिषु मंत्रिभिः ॥२६॥ आरभ्य
तासामाद्या या विस्तृतात्युच्छ्रितानपि । अङ्गुलानि प्रमा पंच चत्वारि त्रीणि च क्रमात् ॥ २७ ॥
सकलक्रियाविशुद्धः परिधाय क्षौममक्षतं नूनं । क्षौममयमुत्तरीयं बिभ्राणो ब्रह्मसूत्रधरः ॥ २८ ॥
रचयन् पल्यंकासनमुपांततरवर्तमानहोमार्थः । होमक्रियां विदध्यादाशंसुः कर्मसंसिद्धिम् ॥ २९ ॥
पलाशस्य समिन्मुख्या स्यादमुख्या पयस्तरोः । विधानमेतत्संग्राह्यं विशेषवचनादृते ॥ ३० ॥
स्रुक्स्रुचौ चांदनौ मुख्यौ पैस्थलौ दलसंभवे । तदभावे पलाशस्य दलं वा पिप्पलस्य वा ॥ ३१ ॥
यानींधनानि पूतानि शुष्काणि क्षीरभूरुहां । भवंति तानि काष्ठानि सर्वस्मिन् होमकर्मणि ॥ ३२॥
प्रस्थः क्षीरस्य मानं स्याद् घृतस्य च तथा भवेत् । होमद्रव्यविमिश्रस्य मानं प्रस्थद्वयं मतम् ॥ ३३ ॥
वधविद्वेषोच्चाटेष्वष्टौ दुष्टौ मता नव शांतौ । आकृष्टिवशीकृत्योर्द्वादश समिधः प्रमांगुलयः ॥३४॥
अशुभैर्होमं कुर्यात् क्रुद्धमनाः क्षुद्रकर्म सर्वमपि । कर्म शुभं विदधीत प्रसन्नचित्तः शुभैर्द्रव्यैः ॥३५॥
वार्गंधाक्षतपुष्पैर्दीपधूपफलैः क्रमात् । स्वं स्वं मंत्रं जपेन्मंत्री सप्तार्चिषमथार्चयेत् ॥ ३६ ॥
तस्मिन् प्रथमं त्रिमधुरयुक्तामेकां समिधं स्वहस्तेन । मंत्री जुहुयादाज्यैश्चाहुतिमेकां स्तवेन ततः ३७

व्यामिश्रितशेषद्रव्याहुतिमेकां ततः स्रुचा कुर्यात् । प्रतिसमिधमेवं विधिः समिधस्त्वष्टोत्तरशतं तस्य ॥ ३८ ॥ क्षीरं घृतं गुडं चैतत् त्रिमधुराणीति कथ्यते । इति होमविधिः प्रोक्तः स कर्तव्यो मनीषिभिः ॥ ३९ ॥ अविकलया सामग्र्या येनैकः साधु साधितो मन्त्रः । तस्याल्पयापि च तया परेऽपि मंत्राः प्रसिद्ध्यंति ॥ ४० ॥ स्तंभं विद्वेषमाकृष्टिं पुष्टिं शांतिं प्रचालनं । वश्यं वधं च तं कुर्यात् पूर्वाद्यभिमुखः क्रमात् ॥ ४१ ॥ वश्यविद्वेषणोच्चाटपूर्वमध्यापराह्णके । संध्यार्धरात्रिरात्र्यंते वधशांतिकपौष्टिकम् ॥ ४२ ॥ अंकुशसरोजबोधप्रवालमच्छंखवज्रमुद्राः स्युः । आकृष्टिवश्यशांतिकविद्वेषणरोधवधसमये ॥ ४३ ॥ दण्डस्वस्तिकपंकजकुक्कुटकुलिशोद्यभद्रपीठानि । आसनविधौ प्रयोज्यान्युक्तेष्वाकर्षणाद्येषु ॥ ४४ ॥ वषट् वश्ये फडुच्चाटे हुं द्वेषे पौष्टिके स्वधा । वौषडाकर्षणे स्वाहा शांतौ घेघेऽथ मारणे ॥ ४५ ॥ आकृष्टौ संवश्ये शांतौ द्वेषे च रोधनं वधे क्रमशः । उदयार्करक्तशशधरधूम्रहरिद्रासिता वर्णाः ॥ ४६ ॥ पीतारुणासितैः पुष्पैः स्तंभनाकृष्टिमारणे । शांतिपौष्टिकयोः श्वेतैर्धूम्रवर्णैः प्रचालने ॥ ४७ ॥ लोहितच्छविभिर्वश्यं विद्वेषेऽञ्जनसन्निभैः । जपहोमार्चनान्यत्र तत्र कार्याणि मंत्रवित् ॥ ४८ ॥ कुंभकं स्तंभनाद्येषु रेचकं चालनादिषु ॥ पूरकं चांगनाकृष्टिप्रमुखे च प्रयोजयेत ॥ ४९ ॥ स्फटिकप्रवालमुक्ताचामीकरपुत्रजीवकृतमणिभिः । अष्टोत्तरशतजाप्यं शांत्याद्यर्थं करोतु बुधः ॥ ५० ॥ कुर्याद् वामहस्तेन वश्याकर्षणमोहनं । दक्षिणेनाखिलं होमं शिष्टाः सर्वाः क्रिया अपि ॥ ५१ ॥ अन्योन्यवज्रविद्धं पीतं चतुरस्रमवनिबीजयुतं । कोणेषु रांतयुक्तं भूमंडलसंज्ञकं

ज्ञेयं ॥ ५२ ॥ नीरजभूपितवदनं कलशाकारं चतुर्वकारयुतं । चेतं जलबीजयुतं जलमण्डलमाहुराचार्याः ॥५३॥ मुखमूलवपोपेतः पञ्चपत्रांकितः सितः । पत्रवर्णाचादिकोणः कलशस्तोयमण्डलं ॥५४॥ त्रिस्वस्तिकं त्रिकोणं यांतं कोणेपु वह्निबीजयुतं । ज्वालायुतमरुणाभं तन्मंडलमाहुराग्नेयं ॥५५॥ बहुबिंदुवक्ररेखं वृत्ताकारं चतुर्यकारयुतं । कृष्णं मारुतबीजं वायव्यं मंडलं प्राहुः ॥५६॥ चत्वारि मंडलानि च लवरयवर्णैः क्रमेण युक्तानि । पृथ्वीसलिलहुताशनमारुतबीजैः समेतानि ॥ ५७ ॥ आग्नेयमंत्रः सौम्यः स्यात् प्रायशोंते नमोन्वितः । सौम्यमंत्रस्तु विज्ञेयः फट्कारेणान्वितोंततः ॥ ५८ ॥ शिष्णो मंत्रक्रियारम्भे स्नातः शुद्धांबरं दधत् । निर्जंतुदेशके पूजाजपहोमान् करोत्विति ॥५६॥

इति मंत्रसाधनविधिः ।

अर्थ—योग उपदेश देवता सकलीकरण उपचार जप होम और जपके साधक दिशा काल आदि व पृथ्वी आदि मंडल शांति आदि संज्ञा, मंत्रके साधनेके समय विचार करके मन्त्रसिद्धि करनी चाहिये ॥१॥ दिशा काल मुद्रा आसन पल्लव इसका भेद जानकर मन्त्रका जप करना योग्य है । इनके जान सिवाय हमेशा जप होम किया करो तो भी मन्त्र सिद्ध नहीं होता ॥२॥ अब योग आदिका स्वरूप बतलाते हैं—पहले तो साधनेवाले और मंत्रके आदि अक्षर मे नक्षत्र तारा और राशिकी अनुकूलता ज्योतिषसे मिलावे यदि विरोध न हो तो समझना कि मन्त्र सिद्ध हो

जायगा। इसीको योग कहते हैं ॥३॥ पुस्तकमें मन्त्र लिखा है तो भी मंत्रविधि जानने वाले गुरुसे अवश्य पूछना चाहिये जिससे कि संदेह न रहे—यह उपदेश है ॥३॥ शुद्ध सम्यग्दृष्टि चौवीस तीर्थंकरोंमेंसे किसीका भी जप करे तो उसके सेवक यक्ष वा यक्षिणी उस साधनेवालेकी मनोवांछित सिद्धिके सहायक होते हैं। वृषवदन महायक्ष त्रिमुख यक्षेश्वर तुंबुरु कुसुम मातंगयक्ष विजय अवजित ब्रह्मदेव ईश्वर कुमार आदि चौवीस यक्ष हैं और चक्रेश्वरी रोहिणी प्रज्ञप्ति वज्रशृंखला. पुरुषदत्ता मनोवेगा कालिका ज्वालामालिनी पद्मावती आदि चौवीस यक्षिणी है। ये यक्ष और यक्षणियें जिनमतकी सेवा करते है ॥५।६।७॥ इन रोहिणी आदि विद्याओंके प्रभावसे विद्याधर मनुष्य होकर भी देवोंके समान सुख भोगते है ॥८॥ इस प्रकार परमभक्तिसे विद्यादेवताओंका ध्यान करना चाहिये परन्तु साधनेके पहले सकलीकरणक्रिया अवश्य करनी चाहिए ॥९॥ विद्या साधने की इच्छावाले को निर्विघ्न इष्ट कार्यकी सिद्धिके लिये जो अपनी रक्षा करना है वह सकलीकरण क्रिया है ॥१०॥ वह इसतरह है कि पहले दिशाबंधन करे फिर शुद्ध जलसे अमृतमंत्र को पढ़कर अपने शरीर पर छांटे। इस प्रकार जलस्नान करके शुद्ध धुले हुए कपड़े पहन शुद्ध एकांतस्थान में ब्रह्मचर्यादि पांच श्रावक व्रतों को पालता हुआ भूमि शुद्धकर पर्यंकासन (पद्मासन) से बैठे और समीप में पूजाद्रव्य रखकर ऐसा कहे कि अपना आत्मा ही प्रातिहार्यादि से सुशोभित अर्हंत परमात्मा है ऐसा पृथ्वी धारणा आदि पांच-धारणाओंसे अपनेको

शुद्ध चिंतवन करे। इस प्रकार सकलीक्रिया करके पंचोपचार विधिसे मन्त्र के अधिष्ठाता देवताकी पूजा करे। ११ से १५ तक। मंत्रस्वामी देवताके पांच उपचार इस तरह हैं—आह्वानन स्थापन साक्षात्करण अष्ट द्रव्यसे पूजन विसर्जन ॥ पूरकसे आह्वान रेचकसे विसर्जन और बाकीके कर्म कुंभक प्राणायामसे आरम्भ करे ॥१६-१७॥ मंत्रके जपकी संख्या १०८ अथवा १००८ सामान्य रीतिसे कही है। सब मंत्रोंको मनमें जीभसे धीरे धीरे बोलता हुआ जपे ॥ अथवा भक्ति पूर्वक ऊंचे स्वरसे भी बोलसक्ता है। जपसे पूरा मंत्र अपनी शक्तिको प्राप्त होता है और होम पूजा आदिसे उसका स्वामी देवता तृप्त होता है ॥ एक तो स्वयं अग्नि फिर जो पवन (हवा) की सहायता मिल जाय तो क्या नहीं कर सकता सब कुछ कर सकता है इसी तरह पहले तो मंत्र फिर भी जप होम सहित हो तो क्या नहीं कर सकता सब कुछ कर सकता है ॥ जपके समय मंत्र के अंत में 'नमः' शब्द लगावे और होमके समय 'स्वाहा' शब्द जोडे. ॥१८-२२॥ मूल मंत्रकी संख्यासे दसवां भाग होम करनेके समय आहुति मन्त्रकी संख्या है अर्थात् हजार बार मंत्र जपा हो तो सौ बार उसी मन्त्रको होमके समय बोले इस प्रकार आहुति मन्त्रकी संख्या का हिसाब लगाना। जप पूरा होने के बाद होम करे। उसकी विधि बतलाते हैं—होमकुण्ड तीन तरहके होते हैं— चौकोर, तिकोन, गोल। मारण आकर्षण वश्यकर्म इन तीनमें तिकोना कुण्ड होता है, विद्वेषण उच्चाटन इन दो कर्मों में गोलकुण्ड तथा शांति पौष्टिक स्तम्भन कर्म में चौकोना कुण्ड कहा

गया है और तीनो कुण्डों की गहराई एक हाथ प्रमाण कही है और तीन कटनी उनकी कही गई हैं। पहली कटनीका विस्तार व ऊंचाई पांच अंगुल दूसरीका चार व तीसरीकी तीन अंगुल प्रमाण है ॥ २३-२७ ॥ होम करनेवाला सकलीक्रियासे शुद्ध मन करके नवीन धोती दुपट्टा पहर जनेऊ धारणकर पद्मासन लगाकर इष्टसिद्धिके लिये होम क्रिया करे ॥ २८-२९ ॥ होममें पलाश (ढाक) की लकड़ी मुख्य मानी गई है यदि वह न मिले तो दूधवाले वृक्ष अर्थात् पीपल आदिके वृक्षकी सूखी लकडी होनी चाहिये यह सामान्य रीति है ॥ माथमें सफेद चन्दन लालचन्दन और शमी (अरणी) की लकड़ी भी होनी चाहिये। और पत्ते पीपल व ढाकके होने चाहिये। सब होमक्रियाओंमें दूधवाले वृक्षोंकी सूखी लकड़ी बिना कीड़ोंकी (पवित्र) ली गई है ॥ होममें एक सेर दूध एक सेर घी तथा अष्टांग धूप आदि से मिली हुई होम द्रव्य दो सेर लेना ॥ वध विद्वेषण उच्चाटन कर्ममें आठ अंगुल लम्बी लकड़ी पुष्टिकर्म में नौ अंगुल लम्बी, शांति आकर्षण वशीकरण स्तम्भन इनमें बारह अंगुल लम्बी लकड़ी होनी चाहिये ॥ अशुभ (खोटे) कार्य मारणादिमें क्रोध सहित होकर अशुभ द्रव्योंसे होम करे और शुभकार्य शांति आदिमें उत्तम सामग्रीसे प्रसन्नचित्त होकर होम करे ॥३० ३५॥ जल चन्दन आदि आठ द्रव्योंमे महामन्त्र जपता हुआ अग्निकी पूजा करे ॥ फिर दूध घी गुड़ सहित एक लकड़ी को अपने हाथसे होमकुण्डमें रखे फिर अग्नि स्थापनकर पहले घी की आहूति स्तोत्र श्लोक पढ़ता हुआ दे। पीछे लकड़ियोंको रखकर आहुति

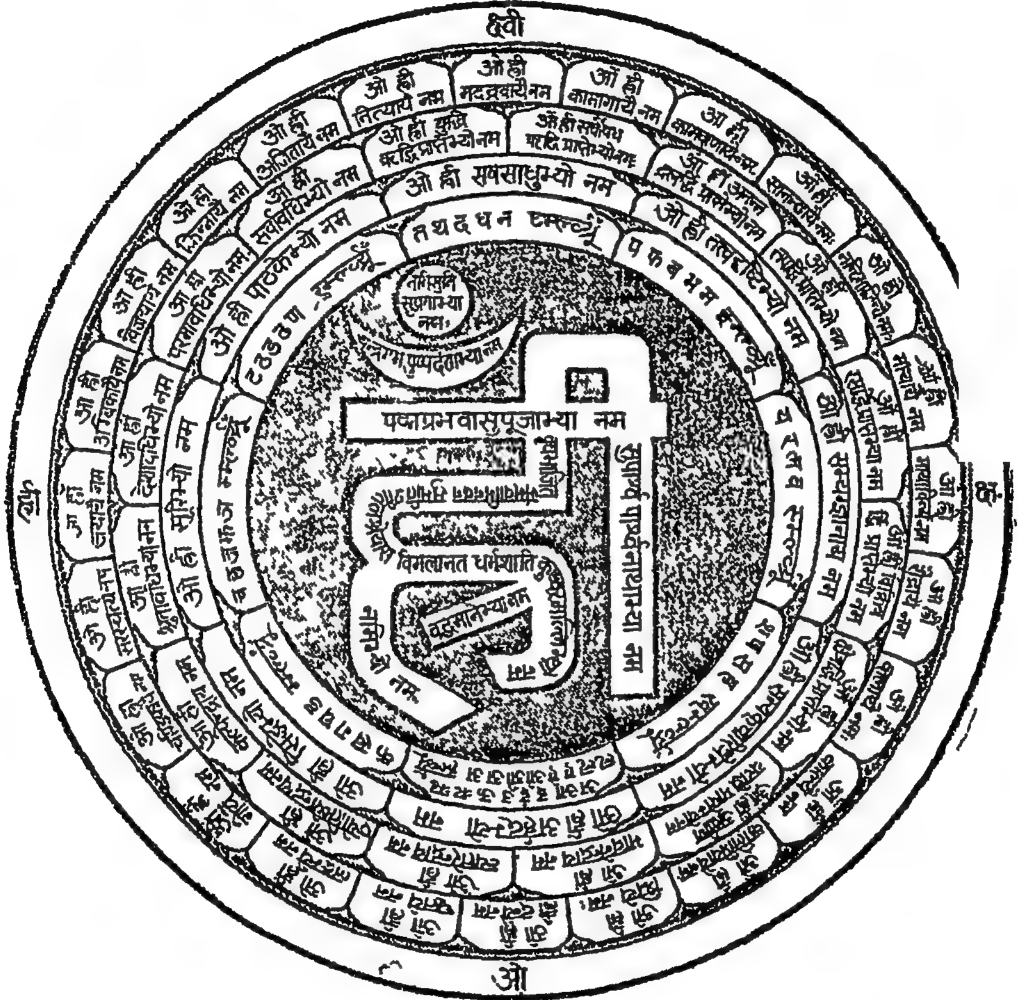
द्रव्यको मिलाकर जापका मन्त्र बोलता हुआ आहुति देवे। लकड़ियों की संख्या एकसौ आठ कही गई है। इस प्रकार होमविधि मंत्रशास्त्र मे कही गई है उसके अनुसार पांचकलश स्थापन करके करनी चाहिये जिसने संपूर्ण विधिसे अच्छीतरह एक मंत्र भी सिद्ध कर लिया है उसको थोड़े ही समयमें दूसरे मंत्र सिद्ध हो जाते है ॥३६-४०॥ अब मंत्रसाधनके दिशा काल आदि भेद तथा मंत्रोंके कार्यभेद बतलाते हैं—मंत्रके कार्योंके आठ भेद हैं:—स्तंभन १ विद्वेषण २ आकर्षण ३ पौष्टिक ४ शांति ५ उच्चाटन ६ वश्य ७ मारणकर्म ८ इनकी पूर्व आदि क्रमसे दिशायें समझना। वह इसतरह है—शान्तिकर्म—पश्चिमदिशा, आधीरातका समय, ज्ञानमुद्रा, पद्मासन नमः पल्लव, सफेद वस्त्र श्वेतपुष्प (चमेली आदिके फूल), पूरकयोग स्फटिकमणिकी माला, दहिना हाथ, मध्यमांगुलि, जलमंडल ॥ १ ॥ पौष्टिककर्म—नैऋतदिशा, प्रभातकाल, ज्ञानमुद्रा, स्वस्तिकासन, स्वधा पल्लव, श्वेतवस्त्र, सफेद पुष्प, पूरकयोग, मोतियोंकी माला, मध्यम अंगुलि, दक्षिण हाथ, जलमंडल ॥ २ ॥ वश्यकर्म—उत्तरदिशा, प्रातःकाल, कमलमुद्रा, पद्मासन, वषट् पल्लव, लाल वस्त्र, लाल पुष्प, पूरकयोग, प्रवालमणि (मूंगा) की माला, वामहस्त, अनामिका, अग्निमंडल॥ ३ ॥ आकर्षणकर्म-दक्षिणदिशा, प्रातः काल, अंकुशमुद्रा, दंडासन, वौषट् पल्लव, रक्तवस्त्र, लालफूल, पूरकयोग, प्रवालमणिकी माला, कनिष्ठिका अंगुली, वामहस्त, वामवायु, अग्निमंडल ॥ ४ ॥स्तम्भन कर्म—पूर्वदिशा, प्रभात काल, शंखमुद्रा, वज्रासन, ठः ठः पल्लव,

पीतवस्त्र, पीला पुष्प, कुंभकयोग, स्वर्णमणिकी माला कनिष्ठिका अंगुलि, दक्षिण हस्त, दक्षिणवायु (सीधा स्वर) पृथ्वीमंडल ॥ ५ ॥ मारणकर्म—ईशानदिशा, संध्याकाल, वज्रमुद्रा, भद्रासन, घे घे पल्लव, कालावस्त्र, काले पुष्प, रेचकयोग, पुत्रजीवीमणिकी काली माला, तर्जनी, दक्षिणहस्त, वायुमण्डल, ॥ ६ ॥ विद्वेषणकर्म—आग्नेयदिशा, मध्याह्नकाल, प्रवालमुद्रा, कुक्कुटासन, हुं पल्लव, धूम्रवस्त्र, धूम्र पुष्प, रेचकयोग, पुत्रजीवो (काली) मणिकी माला, तर्जनी अंगुली, दक्षिण हस्त वायुमण्डल ॥ ७ ॥ उच्चाटनकर्म—वायव्यदिशा, अपराह्नकाल (तीसरा प्रहर) प्रवालमुद्रा, कुक्कुटासन, फट् पल्लव, धूम्रवस्त्र, धूम्रपुष्प, रेचकयोग, कालीमणिकी माला, तर्जनी अंगुली, दक्षिण हस्त, वायुमंडल ॥ ८ ॥ इस तरह दिशा आदि जानना ॥४१ से५१ ॥ चौकोन पीला पृथ्वी बीज 'ल' चारों कोनोंमें लिखनेसे पृथ्वी मण्डल हो जाता है उसमें यंत्र मन्त्र लिखकर स्थापन करना इसी तरह जलमण्डल आदिमें भी यन्त्र मन्त्र स्थापन करना कलशके समान गोल बनाकर जल बीज व और प चारों तरफ लिखना वह सफेद जलमंडल है ॥ तिकोना आकार बनाकर उसके कोनोंमें सांतिया बाहरकी तरफ खींचकर कोनोंके अन्दर अग्नि बीज र तथा ओंको लिखे वह लालवर्णवाला अग्निमंडल है ॥ गोल आकार बनाकर वायुबीज य तथा स्वा उसके अंदर लिखना वह काला वायुमण्डल है ॥ ५२से५७ ॥ प्रत्येक (हरएक) मन्त्रके अन्तमें (नमः) पल्लव लगानेसे मारणादि कर्मवाला तेजस्वभावी मन्त्र शांत स्वभावी होजाता है और

शांत स्वभावी मंत्र में फट् पल्लव लगानेसे क्रूर स्वभावी हो जाता है ॥ इसीतरह इस ऋषिमंडलमंत्र में
भी नमः की जगह दूसरा फट् आदि पल्लव लगानेसे आठांतरहके कार्य करनेवाला यह मंत्र हो जाता है फिर दूसरे किसी मन्त्रकी जरूरत नहीं रहती मन्त्रसाधनेवालेको मन्त्रके जप करनेके समय एक वक्त भोजन ब्रह्मचर्य जमीनपर सोना निर्जीव स्थानमें बैठकर पूजा जप होम करना चाहिये ॥ ५६ ॥ इसप्रकार मन्त्रकी साधनेकी विधि संक्षेपसे विद्यानुवादसे लेकर लिखी गई है ॥



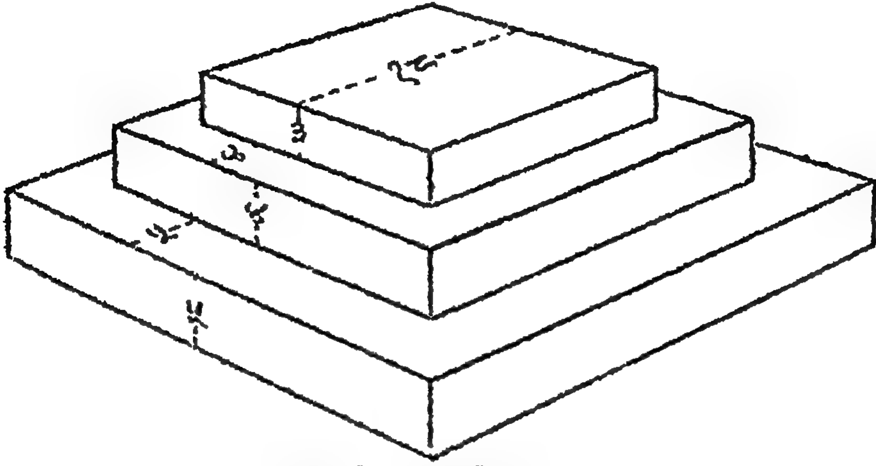
श्री ऋषिमंडल यंत्र



जाप्य मंत्र—ॐ ह्रां ह्रिं ह्रुँ ह्रूँ ह्रें ह्रैं ह्रौं ह्रः

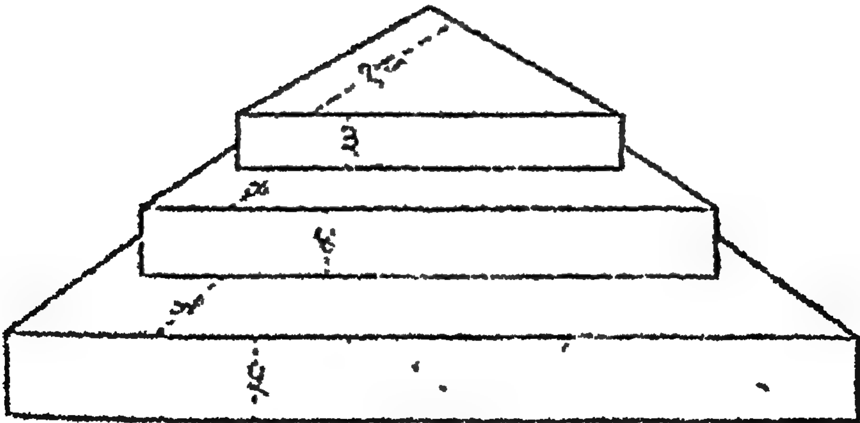
अ सि आ उ सा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो ह्रीं नमः

तीर्थंकर कुंड



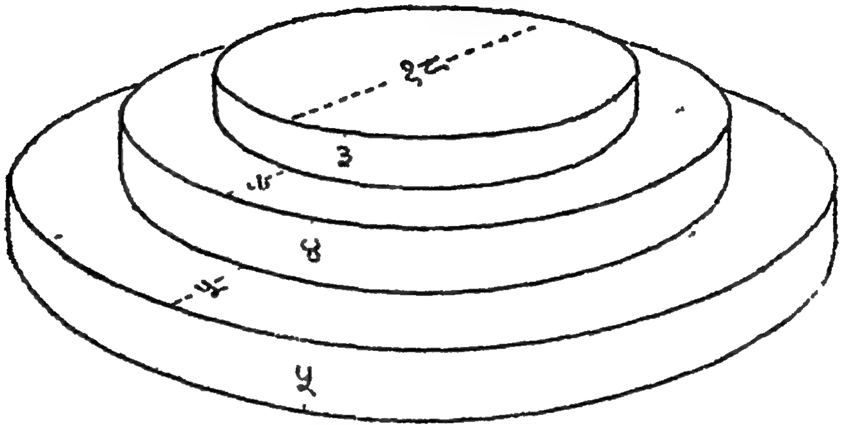
गार्हपत्याग्नि

गणधर कुंड

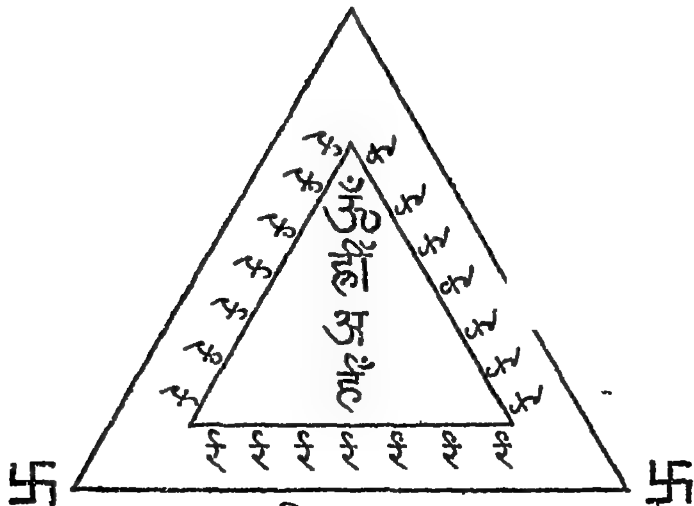


आह्वनीय

केवली कुंड



दक्षिणाग्नि



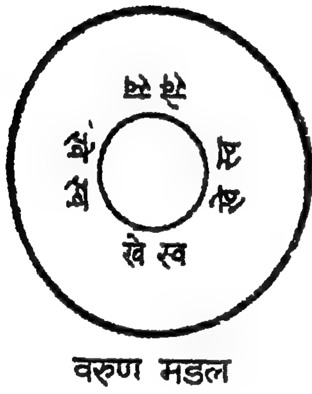
अग्नि मडल



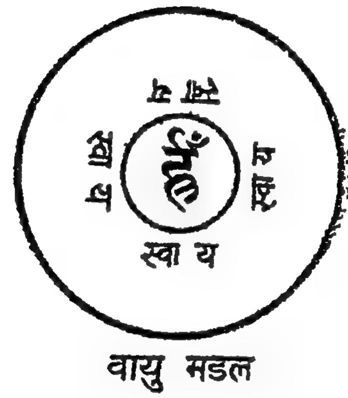
नाभि मण्डल



चन्द्रप्रभाऽनाहत



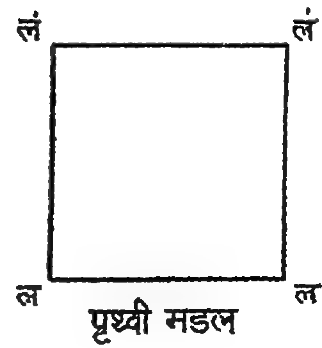
वरुण मण्डल



वायु मण्डल



पद्मप्रभाऽनाहत



पृथ्वी मण्डल

व प व

व

व प व

ॐ

प प प प

जल मडल

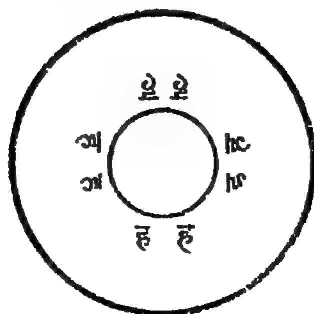
जल मडल

व प व

व

व प व

प



आकाश मडल



श्रीवीतरागाय नमः

अथ ऋषिमण्डल विधान पूजा ।

(मंडल नांडने की विधि तथा अन्य साधनविधि सहित)

—*)⁚⁚⁚(*—

मंगलाचरण—दोहा

ज्ञान ऋद्धि तप ऋद्धि वसु, इनसे संयुत देव ।
बुद्धिवृद्धि मेरी करैं, जांय विघ्न स्वयमेव ॥ १ ॥

उद्देश्य—दोहा

संसारी वसु कर्म से, दुख पाते सब काल ।
जैनधर्म की शरण से, सुखी बनें तत्काल ॥ २ ॥

अहिंसामय यह धर्म है, सुखदायक सब जीव।
आश्रय ले इसका तिरे, भव्य भवोदधि नीर ॥ ३ ॥
ऐसी श्रद्धा धार उर, हर्षित मन में होय।
ऋषिमंडल पूजन करूँ, शिव सुखदायक जोय ॥ ४ ॥
सूरि श्रीगुणनंदिने, संस्कृत भाषा मध्य।
विधि विधान संक्षेप से, रचा भव्यजनपथ्य ॥ ५ ॥
उसका ही अनुसरण कर, श्रीलाल ब्रह्मचारि।
विस्तृत हिंदी में रचा, भक्ति भाव उरधारि ॥ ६ ॥
कर्म असाता उदित हो, अंतराय के संग।
सम्यग्दृष्टि जीव भी, मलिन--चित्त हो तंग ॥ ७ ॥
आराधन इसका किये, आर्तध्यान हो दूर।
असात साता परिणमे, अंतराय हो चूर ॥ ८ ॥

इस ही कर्मविज्ञान को, चित में रखकर पाठ ।
करो सभी नर नारि मिलि, बांध सभी विधि ठाठ ॥ ९ ॥
हो उदार मनमें सदा, सामिग्री उत्कृष्ट ।
साधर्मी जन साथ में, तजि परिणाम निकृष्ट ॥१०॥
आदर कर शुभभाव से, सुन्दर मण्डल मांडि ।
करै विधान विधि से सदा, भगै दुःख घर छांडि ॥११॥

यजमान कैसा हो ?

बुद्धिमान विनयी महा, न्याय उपार्जित वित्त ।
शीलादिक गुणका धनी, वह यजमान सुचित्त ॥१२॥

याजक का लक्षण ।

तृष्णारहित पवित्र मन, देश काल मर्मज्ञ ।
वाणी जाकी मन हरै, याजक वह है सुज्ञ ॥१३॥

आचार्य लक्षण।

सम्यग्दर्शन ज्ञान सह, निर्मल चारित वान।
जो विधानज्ञाता निपुण, वह आचार्य महान ॥१४॥

मंडप कैसा हो ?

अडिल छन्द।

स्वच्छ भूमि चौकोर सुविस्तृत कीजिये। थंभे चारो कोन सु ऊँचे दीजिये ॥
तोरण घंटा फूलमाल लटकाइये। चारो कोने कलश चार धरवाइये ॥१५॥
बाजे सब विधि बजें गीत होवे सदा। मण्डप ऐसा बने, लोग पावैं मुदा ॥
चन्द्रातप के बीच छत्र शोभे महा। नीचे मांडै यंत्र यथाविधि जो कहा ॥१६॥

सामिग्री का वर्णन।

नेत्रों को सुख करे, चित्त आह्लाद हो, सब इन्द्रिय हुलसांय, जाति उत्कृष्ट हो।
महामूल्य की खानि, बहुत विधि की कही, सामिग्री बहुलेय सुजिन पूजो सही॥१७॥

दोहा

ह्रीँ अक्षर दुहरा लिखै, उसमें लिखै जिनेश।
प्रथम वलय यह जानिये, सबका हरे कलेश ॥१८॥

विशेष स्पष्टीकरण।

अर्धचन्द्र आकार में, चन्द्र पुष्प का नाम।
मुनिसुव्रत नमि को लिखे, विंदु बीच शुभकाम ॥
पार्श्व सुपार्श्व जिनको लिखे, मात्रा ईके मध्य।
पद्मप्रभ वसुपूज्य को, मस्तक रेखा मध्य ॥२०॥
बाकी तीर्थ जिनेश के, नाम लिखो 'ह' बीच।
जैसा रंग जिन देहका, वैसे रंगसे सीच ॥२१॥

संक्षिप्त

द्वितीय वलय फिर कीजिये, कोठे उसमें आठ।

लिखिये दक्षिण मातृका वर्ग क्रमसे पाठ ॥२२॥

स्पष्टीकरण

ह्रीँ के पदतल में लिखै सोलह स्वर विख्यात।
जिनका मुख ह्रीं की तरफ देख देख ललचात ॥२३॥
द्वितीय कोष्ठ पांचोनिमें लिखना क्रमसे वर्ग।
सप्तम कोठे यादिको अष्टम शादि निसर्ग ॥२४॥
पिंडवर्ण संयुक्त हैं हादि विजाक्षर आठ।
क्रम से कोठे आठ में अंत रखो इन पाठ ॥२५॥
वलय तीसरा कीजिये कोठे पांच व तीन।
पांच पांच परमेष्ठिके रत्नत्रय के तीन ॥२६॥
चौथा वलय सु मांडिये कोठे सोलह सार।
काय देव के चार हैं श्रुतादिऽवधिके चार ॥२७॥

आठ आठ ऋद्धी सहित क्रमसे लिखिये नाम ।
भक्तिभावसे पूजिये सब सिध होंगे काम ॥२८॥
वलय पांचवां मांडिये कोठे हों चौबीस ।
लिखिये चौबीस देवता जिन प्रतिमा जिन शीस ॥२६॥
ओं ह्रीँ द्वीं च्चः नामके बीजाक्षर हैं चार ।
क्रमसे कोने चारमें लिखैं यंत्र तैयार ॥३०॥

सकली करण (नीचे लिखे मंत्रसे अंगरक्षा होती है ।

जोगीरासा छंद (१६×१२ मात्रा)

*हृदय कमल में 'अर्हँ' पदका स्थापन जो है करना ।
कार्मण-काठ जलानन कारण अग्नि-ज्वाला बनना ॥
निर्मल है वह निर्मल करता अरहत् पदका दाता ।
वारंवार नमूं मैं उनको पाऊं अक्षय साता ॥३१॥

*हृदय कमल के बीच कर्णिका 'अर्ह' पद को रखना । ऐसा भी पाठ है

हृदय कमल की आठ पांखड़ी उनमें क्रमसे रखना ।
अरहत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधू सर्व विचरना ॥
सम्यकदर्शन सम्यकज्ञानं सम्यकचरित उचरना ।
ऐसे आठो पूजनीय को, चित में फिर फिर धरना ॥३२॥
'ॐ' वीजाक्षर प्रथम उचारै, नमः पल्लव करिये ।
ध्यान धरै इन आठो पद का, आनन्द उर में भरिये ॥
अरहत पद का ध्यान किये से, शिर की रक्षा होवै ।
सिद्ध समूह जपन करने से, मस्तक रक्षित होवै ॥३३॥
सूरिसुगुण मनमें ध्याने से, नेत्र सुरक्षित होवे ।
चौथे पाठक गुण चिंतन से, घ्राण सुरक्षित होवे ॥
मुख की रक्षा करै साधुगुण, दर्शन गर्दन रक्षै ।
नाभी रक्षै सप्तम पद जो सम्यगज्ञान सुदक्षै ॥३४॥

सम्यक चारित सर्व अंग को पाद पर्यंत सुरच्छै।
ऐसैं सकलीकरण करण से होवै पूजक अच्छै॥
ऋषिमण्डल यह पूजन भारी इसको विधि से करिये।
विघ्न विनाश करै सुखसाता 'श्री' ब्रह्मचारि उचरिये॥३५॥

स्तोत्र। मात्रा १२×१०

सब द्वीपों के मध्य जम्बूद्वीप बसे। उसकी हैं आठ दिशा पूरब आदि लसे।
अर्हदादि पद आठ उनमें राजत हैं। करिये उनका ध्यान पाप पलावत हैं॥३६॥
मध्य सुदर्शन मेरु कंचनमय सोहै। उपरि सिंहासन माहि अच्छर 'ह्रीँ' मोहै।
उसमें चौबिस जिनेश उनके गुणभारी। अच्छय निर्मल शांत पाप जाड्यहारी॥३७॥
निरहंकार निरीह सार सार गुण सोहैं। सौम्य शुद्ध शुभ रूप तीन लोक मोहैं।
तीनलोक के स्वामि यातैं राजस हैं। करे घातिया चूर यातैं तामस हैं॥३८॥
सतगुण से भरपूर सात्त्विक सोहत हैं। ज्ञान तेज के सूर भ्रमतम खोवत हैं।

रूप गंध रस वर्ण इनसे दूर रहैं। तो भी हैं साकार समरस पूर रहैं ॥३६॥
परको दीया त्याग निजरस में पागे। परमौदारिक देह आतम गुण जागे।
चूरे हैं सब कर्म तनको है छोडा। निजरस पी सन्तुष्ट परसे मुह मोडा ॥४०॥
करी कालिमा दूर आकांक्षा चूरी। संशय रहा न लेश सब आशा पूरी।
ईश्वर ब्रह्मा बुद्ध ज्योतीरूप कहे। शाश्वत सिद्ध स्वरूप सबमें देव बड़े ॥४१॥
लोकालोक प्रकाश करते नाहि थके। ऐसे श्री 'ह्रीं' देव मैंने मनमें धरे।
एक वर्ण दो वर्ण तीन वर्ण धारी। चार पांच हैं वर्ण सबके अधिकारी ॥४२॥
ऋषभादिक चौबीस तीर्थंकर सब ही। ध्याओ उनको नित्य जैसे निम्न कही ॥
अर्धचन्द्र आकार ह्रीँ का नाद कहा। उसका वर्ण है श्वेत जैसे चंद्र महा ॥४३॥
उसमें ध्याओ देव श्वेत वर्ण वाले। चन्द्रप्रभ पुष्पदंत सबके रखवाले।
श्याम वर्ण की देह बिंदी की कीजे। उसमें लिखिये नेमि मुनिसुव्रत कीजे ॥४४॥
मस्तक ऊपर भाग लाल वर्ण सोहै। पद्मप्रभ वसुपूज अरुण वर्ण मोहै।

शिरसँलीन ईकार नीलम वर्ण कहा। सुपार्श्व पार्श्व महाराज थापे पूज्य महा ॥४५॥
सोलह श्रीजिन देव कंचनमय देहा। वे ह--र--मध्य लिखेय होवै सुखगेहा।
रागद्वेष मदमोह जीते इन सबने। मायाबीज में ये राजत हैं सबरे ॥४६॥
इनका सद ध्यान किये जो ज्वाला निकले। उससे वेष्टित देह मेरी हो उजले।
तब नहि 'विषधर' जाति मेरा निष्ट करै। सेवक होकर वेग मेरे पांय परै ॥४७॥
श्रीऋषिमण्डल मध्य 'ह्रीँ' का परिकर है। उससे रक्षित देह मेरी सुखकर है।
*तब नहि नागिनि जाति मेरा निष्ट करै। सेवक होकर वेग मेरे पांय परै॥
सर्व ऋद्धिके ईश आर्हंत गणधर हैं। उनके तेजसे लोक सबही व्यापत हैं।
उनोंका ध्यान किये परम सौख्य होगा। विलय जांयगे दुःख मेरे अति वेगा ॥४८॥
पाताल लौकिक देव मध्यलोकवासी। निर्जर ऊरध लोक सब विमानवासी।
तुम सब ही जिनभक्त साधर्मी भाई। करना मेरि सहाय सुनिये मनलाई ॥४९॥

*नागिनि आदिकी जगह अन्य पद बदल विघ्न करनेवालोंका नाम रखकर बोलना'

मुनिवर हैं जगमांहि अवधी श्रुत धारी। विक्रिय चारण आदि सब ही रिधिधारी।
मुझ पर कीजै कृपा तुम रक्षक सबके। अतएव पूजूं पांय विघ्न हरो जनके ॥५०॥

श्री१ ह्री२ लक्ष्मी३ देवि, धृति४ गोरी५ चण्डी६।
सरस्वति७ और जया,८ विजया९ क्लिन्ना१० अम्बी॥
अजिता१२ नित्या१३ नाम, मद द्रवा१४ सुकही।
कामांगा१५ काम-इषू१६, सानंदा१७ सुलही ॥५१॥
नन्दमालिनी१८ माय१९, माया विनि २०रौद्री२१।
कला२२ कलिप्रिया२३ कालि २४,चौबीसो बोध्री॥
जिन भक्ती लवलीन, जिन प्रतिमा पूजैं।
मेरी करैं सहाय साधर्मी हूं मैं ॥५२॥

यन्त्र का प्रभाव

देवदेव के जोर, दुर्जन देव सभी।

भूत विताल पिशाच, भागैं मुगल सभी ॥
और भि जितने विघ्न, सबका नाश करै ।
ऋषिमण्डल की शक्ति दृढता मनहि धरै ॥५३॥

दोहा

गोपनीय यह यन्त्र है, ऋषिमण्डल शुभ नाम ।
जगकी रक्षाकरण को अमोघास्त्र है वाम ॥५४॥

ऋषिमण्डल विधान करने का फल ।

दोहा

रणमें जलमें दुर्गमें वनमें मरघट थान ।
कचहरी महामारिमें भय नाशै रखि मान ॥५५॥
जिनकी इच्छा व्याह की पावैं वे शुभ नारि ।

सुत की वांछा जो करैं पावैं सुत गुणगारि ॥५६॥
धन को चाहैं जो मनुज आराधैं यह मंत्र।
हों कुवेर सम वे धनी सर्व तंत्र स्वतंत्र ॥५७॥
राजभ्रष्ट जो नर हुए अथवा वित्तविहीन।
होते वे फिर पूर्ववत मंत्राराधनलीन ॥५८॥

मंत्र पास रखने का फल

सोने तांबे रजत के वा कांसे के पत्र।
लिखकर जो जन पूजता सुख पावै सर्वत्र ॥५६॥
भोजपत्र पर मांडिकर जो राखै निज पास।
बाहु गले वा मूर्धमें पावै कभी न त्रास ॥६०॥
भूत प्रेत बाधा मिटै मिटै उपद्रव रोग।
सदा सुखी होवै मनुज कभी न व्यापै सोग ॥६१॥

तीन लोकवर्ती जिते अकृत्रिम जिनधाम ।
उनकी थुतिसम पुण्य हो जो सुमिरै यह नाम ॥६२॥

रचियता का आदेश

महास्तोत्र यह गोप्य है धार्मिक जन आधार ।
मिथ्या दृष्टी जीव को दे तो पाप अपार ॥६३॥

आराधन की विधि और फल

आचाम्ल तप आदि कर जिन पूजै धर नेह ।
सुमिरै आठ हजार जो कार्य सिद्धि उस गेह ॥६४॥
प्रात समय इस मंत्र को आठ एक सौ वार ।
जपै सो नर होवै सुखी रोग करै नहि वार ॥६५॥
आठ मास पर्यंत लों स्तोत्र पढ़ै जो नित्य ।
जिन प्रतिमा उसको दिखै मस्तक ऊपर सत्य ॥६६॥

जैन बिंबके दर्श से ऐसा सूचित होय।
सप्तम भव में जीव यह निश्चय शिवपति होय ॥६७॥

इसप्रकार श्रीमदाचार्य गुणनंदि मुनींद्र विरचित संस्कृत श्रीऋषिमण्डल यंत्रपूजा विधान के श्रीदिगम्बरजैनाचार्य वीरसागर महाराज के दीक्षित गृहविरत ब्रह्मचारि काव्यतीर्थ व्याकरणशास्त्री पंडित श्रीलाल जैन पद्मावतीपुरवाल टेहू (आगरा) निवासीकृत हिंदी पद्यानुवाद में स्तोत्र पीठिका

समाप्त हुई।

अथ ऋषिमण्डल पूजा विधान

प्रधान वीजाक्षर "ह्रीँ" की पूजा

स्थापना—अडिल छन्द

ऋषिगणका आराध्य वीजाक्षर 'ह्रीँ' है,
ज्ञापक ऋषभादि तीर्थंकर चौबीस है।
पिंडवर्ण संयुक्त हम्मरादिक आठ हैं,
वर्णमातृका सहित दहन विधि-काठ हैं॥ १॥
अष्टऋद्धिसंयुक्त विराजैं ऋषि यहां,
यों हो पूजन पंच परम गुरुका यहां॥
इनके सेवक देव चतुर निकाय हैं,
देवि जयादिक भक्तिसहित शिरनाय हैं॥ २॥

दोहा।

ऐसे अनुपम अर्थका ज्ञापक 'ह्रीँ' को जान।
करूं थापना पूजने जिससे हो कल्यान ॥ ३ ॥

ओंह्रीं श्रीमदर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायप्रभृतिपरिकरोद्योतक ह्रीं वीजाक्षर ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम सन्निहितं भव भव वषट्।

अष्टक—चाल जोगीरासा।

गंगा आदिक शुभ नदियों के नीर सुगंधित लाऊं।
भरि भरि झारी धार देयकर अगनि कषाय बुझाऊं ॥
ह्रीं वीजाक्षर पूजन जपसे सबही विघ्न विलाये।
ऐसी श्रद्धा धरकर मनमें नित प्रति पूज रचाये ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीमदर्हदादिज्ञापक ह्रींबीजाक्षराय जलं निर्वपामि०

हिमगिरि चंदन कदलीनंदन सहित घसों जल लेके।
चर्चूं चरण इसी आशासे शमसुख होगा मनके ॥

ह्रीँ बीजाक्षर पूजन० । ओं ह्रीँ .... चन्दनं ॥२॥

अक्षय पदके प्राप्ति करनको है बहु वांछा मेरी ।
इसही से अक्षत शुभ लायो पुंज करों करि ढेरी ॥

ह्रीँ बीजा० । ऐसो श्रद्धा० । ओं ह्रीं ...... अक्षतान्० ॥३॥

काम सदा वाणों से मुझको, देता दुःख अनंता ।
इससे याके पुष्पवाण मैं लायो तुमपद अन्ता ॥

ह्रीं बीजा० । ऐसी० । ओं ह्रीं पुष्पं ॥४॥

क्षुधा डाकिनी मुझको पीडै सब गतिमें संग जाये ।
इसका पिंड छुडाने कारण नेवज-पिंड चढ़ाये ॥

ह्रीं बीजा० । ऐसी० । ओं ह्रीं ... नैवेद्यं ॥५॥

मिथ्यात तिमिर से अंधा होकर, मार्ग भूल में भटका ।
दीपक लाया ज्ञानदीप दे, करो उजाला घटका ॥

ह्रीं बीजा० । ऐसी० । ओं ह्रीं ···दीपम् ।।६।।
गंधित बहुविध द्रव्य कुटाई, धूप अनूप बनाई ।
अष्टकर्मके दहन करन को अग्निसंग जलाई ।।
ह्रीं बीजा० । ऐसी श्रद्धा० । ओं ह्रीं ···धूपम् ।।७।।
चाखे विधिफल नादि काल से शिवफल चाखा नाहीं ।
शिवफल चाखन ये फल लायो, भेंट धरूं पदमांहीं ।।
ह्रीं बीजा० ।। ऐसी० । ओं ह्रीं ···फलम् ।
कहूं कहालों अपनी गाथा, आठ करमने घेरा ।
आठ द्रव्य मैं इससे लाया, दूर करो इन डेरा ।।
ह्रीं बीजा० । ऐसी० । ओं ह्रीं ···अर्घ्यं नि० ।

जयमाला

दोहा—ह्रीं बीजाक्षरमें बसैं, पंच परमपद देव ।

इसकी पूजा करनसे, पूजे जांय स्वमेव ॥१॥
हकार लसै चतु घोष सु अंत, रकार दुतिय रहै मधिअंत।
यों यह होता चौईस अंक, ज्ञापक चौबीस तीर्थ जिनंक॥ २ ॥
शून्य मनो कहता है सिद्ध, निराकृति खंवत आत्म विशुद्ध।
'ई' कहता गण ईश महान, साधक साधु उपाध्याय जान ॥३॥
इसभांति कहे परमेष्ठी सर्व, करो इनकी अरचा तजि गर्व।
ऋषिमंडल में अक्षार सुस्थ' लसै युतवर्ग सु घोष अँतस्थ ॥४॥
श्रुतावधि धारक ऋद्धि गणेश, चारण विक्रिय आदि विशेष।
चौंसठ ऋद्धि धरैं तनमांहि, करैं जगका कल्याण सदांहि ॥५॥
इन सबको सबसे उत्कृष्ट, जान भजैं सब देव गरिष्ट।
जो इनको भजता नर नारि, होवैं दुख उसके सब छारि॥ ६ ॥
गुण चिंतनसे परिणाम विशुद्ध, पाप प्रकृतिका रस हो रुद्ध।

पुण्य प्रकृति रस दे अतितीव्र, शांति मिलै तब अतिही शीघ्र ॥७॥

दोहा—संसारी इस जीवको, इससे सरल उपाय ।
नहीं कोई है शांतिका, पूजो 'ह्रीं' चितलाय ॥८॥

ओं ह्रीं अर्हंत्सिद्धादिसर्वोत्कृष्टपरिकरोद्योतक ह्रीं वीजाक्षराय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।



'ह्रीं' वीजाक्षर स्थित चौवीस तीर्थंकर पूजा ।

श्री ऋषभ (आदि) जिन पूजा ।

जब भोग भूमि विराम आया, कल्पतरु सब नशि गये ।
दुक्ख पीडित जन हुए तब, आपकी शरणा लिये ॥
षट कर्मका उपदेश देकर, जीविका उनकी करी ।
ऐसे प्रथम कारुणिक जिनवर, आइ तिष्ठो इस घरी ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्री आदि जिनेन्द्र ऋषभ तीर्थंकर ! अत्र अवतर २ संवौषट्, ओं ह्रीं श्री आदि जिनेन्द्र ऋषभ

तीर्थंकर ! अत्र तिष्ठ २ठः ठः, ओं ह्रीं श्रीआदिजिनेन्द्र ऋषभतीर्थंकर मम सन्निहितो भव भव वषट्

हीर क्षीरके समान, स्वच्छ वारि लाइये । पाद पूजि जन्ममृत्युरोगको नशाइये
आदिनाथ आपके सुतीर्थसे निरे तिरे । तारि मोहि नंत सौख्य, देहु कर्मवाह्य जे

ओं ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेंद्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामि स्वाहा ॥१॥

गंध काशमीरजा सु, साथमें घिसाइये । पूज्यपाद पूजि पाद, हर्ष चित्त लाइये
आदिनाथ० । तारि मोहि० । चन्दनम् ।

श्वेत कान्ति ब्रीहि आदि अक्षतैं महार्घ हैं ।
पुंज पादके समीप, दे अनर्घता लहैं ॥
आदिनाथ० । तार मोहि० । अक्षतान्० ।

कामवाण पुष्प जाति पारजात आदि हैं ।
धारि पास आय पाद, काम दूर जाइ हैं ॥
आदि नाथ० । तारि मोहि० । पुष्पाणि नि० ।

चारु पक्क मिष्ट सुष्ठु, नेत्र चित्तहारि हैं।
पादमें चढाइ भूख, डांकिनी प्रजारि हैं॥
आदिनाथ०। तारि मोहि०। नैवेद्यं नि०।
मोह अंधकार जोर, अंध होरहा हुं मैं। ज्ञानदीप जाल देहु, सुष्ठु दृष्टि होउ मैं
आदिनाथ०। तारि मोहि०। दीपं नि०।
अष्ट कर्म दुष्ट शत्रु, साथ साथ ही रहैं।
दूर भागि जांय सर्व, धूप अग्नि में दहैं॥
आदिनाथ०। तार मोहि०। धूपं नि०।
आम संतरा अनार, दाख आदि मोहने।
मोक्षसौख्य लेन हेतु, पादमें चढावने॥
आदिनाथ०। तारि मोहि०। फलं नि०।
वारि आदि अष्ट द्रव्य, पादमें चढाइये।

अष्ट कर्म नष्ट होंय, सर्व सौख्य पाइये ॥
आदिनाथ० । तारि मोहि० । अर्घं ।

पंच कल्याणक अर्घं ।

दोहा—कर्म भूमिकी आदिमें, आषाढ़ कृष्णकी दोज ।
मरु देवीके गर्भमें, आदि अवतरा ओज ॥

ओंह्रीं अषाढ कृष्ण द्वितीयायां गर्भकल्याणक मंडिताय श्रीआदिजिनेंद्रायार्घं नि ०॥१॥

चैत्र वदी नौमी दिवस, जन्मे आदि जिनेश ।
सर्वलोक हर्षित हुए, इंद्र किया अभिषेष ॥२॥

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णनवम्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय आदिनाथजिनेंद्राय अर्घं निर्वपामि स्वाहा ।२

विरक्त हुए संसारसे, देख निलंजन नृत्य ।
चैत्र वदी नौमी दिवस, लगे आत्मके कृत्य ॥३॥

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेंद्राय चैत्रकृष्णनवम्यां तपःकल्याणकमंडिताय अर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥३॥

फालगुन वदि ग्यारस दिवस पाया केवल ज्ञान ।
दिया धर्म उपदेश तब, किया आत्मकल्यान ॥४॥

ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णएकादश्यां केवलज्ञानमंडिताय श्री आदिनाथ जिनेंद्राय अर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥४॥

माघ कृष्ण चौदस दिवस, अष्ट कर्मको नाश ।
अविनाशी शिवसुख लिया, मिटा जगतका त्रास ॥५॥

ओं ह्रीं श्री आदिनाथजिनेंद्राय माघकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षकल्याणकप्राप्ताय अर्घं निर्वपामि०

जयमाला

दोहा—कर्म भूमिकी आदिमें, भये आदि तीर्थेश ।
उनके चरणोंको नमों पावों सुक्ख हमेश ॥१॥

चाल—"अहो जगत गुरु देव"

तृतीय कालके अंत, भारत भूमि मझारी ।
कल्प वृक्ष भये लुप्त, दुःखित लोक अपारी ॥

करुणापूरित देव, तुमने अवधि विचारी।
असि मसि कृषि उपदेश, देकर किये सुखारी ॥२॥
देख निलाँजन मृत्यु, जगका रूप निहारा। भये ततक्षण बुद्ध दिगम्बर रूपसु धारा ॥
ध्यान शुक्लके जोर, कर्म घातिया चूरे। पायो केवल ज्ञान, नंत चतुष्टय पूरे ॥
सप्त तत्त्व छह द्रव्य, वर्णन बहुविधि कीना।
स्याद्वाद सत न्याय, सुनकर भवि हित चीना ॥
यह संसार असार, सार गुण है ना कोई।
महा दुःखका कूप, साता क्षण ना होई ॥४॥
इससे मुझको काढि, अपने पास सु लीजै।
विनवूं वारंबार, शक्ति अनंती दीजै ॥
परमातमका ध्यान, किये परिणाम अमलता।
होती यातें शीघ्र, कर्मबंध-निर्जरता ॥५॥

ऐसे होता लाभ, आपकी स्तुति से है जी।
इसही से यह तुच्छ, 'श्री' जयमाल कहै जी॥
याकों पढिके भव्य, सद आनंद लहो जी।
कर्मबंधको काटि, शुद्ध स्वरूप भजो जी॥६॥

ओं ह्रीं श्रीआदितीर्थंकर-ऋषभजिनेंद्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

अथ द्वितीय तीर्थंकर श्री अजितनाथ पूजा।

स्थापना। दोहा।

आह्वानन विधिकरणसे, होते भाव विशुद्ध।
आय विराजे हृदयमें, पूजक हो प्रतिबुद्ध॥१॥
करता पूजा भावसे गुण गरिमा हो लीन।
शमरस पीता ना थकै, जैसे जलमें मीन॥२॥
अतः शुद्ध गुण नंत धर, निर्मल सहज स्वभाव।

अजितकर्म को जीतने दीजै अजित प्रभाव ॥३॥

ओंह्रीं श्रीअजितनाथतीर्थंकर भगवान ! अत्र अवतर २ संवौपट् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः अत्र मम सन्निहितो भवभव वषट् ॥

अथाष्टक ।

जल स्वच्छ सुशीतल मिष्ट कंचनपात्र भरा । चरणोंमें देत चढाय भवका ताप हरा
श्रीअजितनाथजिनदेव ऐसी शक्ति करो, मैं अजित कर्मकोजीत शिवसुं दरिसुवरो

ओं ह्रीं श्रीअजितनाथजिनेंद्राय जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामि स्वाहा ।

चंदन मलया करपूर केशर संग घसो ।
चर्चंत श्रीजिनपाद, भवका ताप नशो ॥
श्री अजितनाथ० । मैं अजितकर्मको जीत । चंदनं० ।
अक्षत शशिकिरण समान, देखत मन मोहै ॥
अक्षयपद देन प्रवीण, समकितसम सोहै ।
श्रीअजितनाथ० । मैं अजित० ॥ अक्षतं ॥

मन मथन करन परवीण, मनमथ तीर कहे ॥
उनको नाशो जिन देव, यातैं फूल लहे ।
श्रीअजितनाथ० । मैं अजित० ॥ पुष्पं ॥
यह लाया नेवजपिंड, सरस सुमिष्ट महा ।
हो क्षुधावेदनो दूर, ऐसा मन में चहा ॥
श्री अजितनाथ० । मैं अजित० । नैवेद्यं ।
अज्ञान तिमिरके जोर, निजपरको न लखा ।
अब उसे दिखाओ मोहि, चरनों दीप रखा ॥
श्री अजितनाथ० । मैं अजित० ॥ दीपं ।
चंदन करपूर सुगंध धूप दशांगि बनी ।
खेवत धूपायन माहि, आठो कर्म हनी ॥
श्री अजित० । मैं अजित० । धूपं ॥

अंगूर अनार बदाम, बहुविध फल लायो ।
तुम चरण जजे गुणधाम, शिवसुख ढिंग आयो ॥
श्रीअजित०। मैं अजित०। फलं ।

वसुविध द्रव्य मिलाय अर्घ अनर्घ बना ।
पद अनर्घ मिलै जिनराज, जांचत हूं इतना ॥
श्रीअजित०। मैं अजित०। अर्घं ।

पंच कल्याणक अर्घ । दोहा

जेठ वदी मावस दिवस, मात गर्भ में आय ।
अजित लिया अवतार है, सब जग मंगल छाय ॥१॥
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णा अमावस्यायां गर्भ मंगल मंडिताय अजितनाथजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामि०

माह सुदी दशमी दिवस, जन्मे श्रीभगवान ।
अजित हुआ परिवार सब, अजित रखा है नाम ॥२॥

जयमाला ।

दोहा—धर्मकर्म भूले मनुज, मिथ्यामत हुए जोर ।
अजितनाथ प्रगटे जगत, जैसे सूरज भोर ॥ १ ॥

न जीत सके जगके सब वीर, अजीत बनो यह काम सुवीर ।
दिया उसको तुमने सुपछार, हुए अजितेश्वर आप कुमार ॥२॥
जगा जब आतम माहि, बिराग, तजा सब राज्य कुटुंब विराड ॥
किया वनमाहि निवास जिनेंद्र, लगे तब चारित में जिततंद्र ॥३॥
महाव्रत आदि अठाइस भेद, प्रमादविना नित पाल अखेद ।
अपूरवसे अनिवृत्तिसुजाय, किया क्षय नो सुकषाय सुभाय ॥४॥
रहा इक सूच्छम लोभकषाय, किया दशवें उसका सुअपाय ।
भये जब क्षीणकषाय जिनेंद्र, भगे तब घातक कर्म मृगेंद्र ॥५॥
कुबेर रचा समवसृत धाम, हुआ उपदेश जिनेश ललाम ।

सुना सबने समझा निजभाष, हुआ शमभाव, गया सब त्रास ॥६॥
भये बहु जीव मुनी सब त्याग, अनेक अणुव्रति देशहि त्याग ॥
रहा नहि कोइ मिथ्यादृष्टि तत्र, भया सबके निज ज्ञान पवित्र ॥७॥
दया करिये मुझपै भगवान, लहूं जिससे शुध केवल ज्ञान ।
'सिरी' ब्रह्मचारि कहे करजोर, प्रभू लखिये अबकी मम ओर ॥८॥

दोहा ।

अजित नाथ सबसे अजित, जीते घाती कर्म ।
नष्ट अघाती कर दिये, पाया निरवधि शर्म ॥९॥

ओं ह्रीं अजितनाथ जिनेन्द्राय , पूर्णार्घं निर्वपामि स्वाहा ।

अथ तृतीय जिन संभवनाथ पूजा ।

संभव श्री जिनदेव स्वर्ग तजि भारत आये ।
वर्षे रतन अपार जीव सब ही हरषाये ॥

श्रावस्ती भई स्वस्तिमती, अमरावति जैसी।
मेरे चितमें आय करो, प्रभु सुख थिति वसी॥

ॐ ह्रीं श्री संभवनाथ जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्॥

चौपाई आंचरी मिश्रित (सोलह कारण पूजा की चाल)

शीतल मीठा अमल सुवारि, अर्चों जन्म जरा मृति टारि।
महा सुखदा, जय जय नाथ महा सुखदा॥
संभव जिन तुम भवका नाश, कर कर देते ज्ञान प्रकाश।
महा सुखदा, जय जय नाथ, महा सुखदा॥

ओं ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि०।

गंध अमंद महानंद दाय, चर्चंत जिनपद भव तप जाय।
महा सुखदा, जय जय नाथ महा सुखदा।
संभव जिन तुम भवका नाश, कर कर देते ज्ञान प्रकाश।

महा सुखदा, जय जय नाथ महा सुखदा ॥ २ ॥ चंदनं ॥

अच्चत अच्चत श्वेत महान, पूजत करत अखयपद दान । महा सुखदा ।
जय०। संभव जिन०। महा०। जय०। अच्चतम् नि० ॥ ३ ॥

काम वाण नानाविधि फूल, भेंट करत मिटता मन शूल । महा० । जय० ।
संभवजिन० । महा० । जय० । पुष्पं नि० ॥४॥

वरफी मोदक घेवर खीर, भेंट करत मेंटत भवपीर । महा० । जय० ।
संभवजिन० । महा० । जय० । नैवेद्यं नि० ॥५॥

भेंट तिमिरके नाशक दीप, मिलता ज्ञान अनंत प्रदीप । महा० । जय० ।
संभव जिन० । महा० । जय० । दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥

सुरभित धूप दशांगी लाय, खेवत अग्नि करम जल जाय । म० । ज० ।
संभव० । महासुखदा । जय जय० । धूपं ॥७॥

सरस नरंगी सेव अनार, भेंटत होत भवोदधि पार । म० । ज० ।

संभव जिन० । महा सुखदा । जय० । महा० । फलं नि० ॥८॥
अष्ट प्रकार द्रव्य शुभ लाय, पूजक होता शिवसुखराय । महा० । जय० ।
संभव जिन० । महा० । जय० । अर्घं निर्वपामि० ।

पंच कल्याणक अर्घ । दोहा ।

फागुन सुदि नौमी दिवस, स्रावस्ती नृप-दार ।
शंभव भवको नाशने, आये गर्भ मंझार ॥१॥

ओं ह्रीं फाल्गुन शुक्ल नवम्यां गर्भमंगलमंडिताय शंभवनाथजिनेंद्रायार्घं नि. ।

जन्म आपकेसे हुई, कार्तिक पूर्णिम धन्य ।
देवोंने उत्सव किया, हरिने तांडव नृत्य ॥२॥

ओं ह्रीं कार्तिक शुक्ल पूर्णिमास्यां जन्म कल्याणक मंडिताय संभवजिनेंद्रायार्घं नि. ॥२॥

धन धान्यादिक विभवका, जान अथिर संयोग ।
शुभ मगसिर पूनम दिवस, वनमें लीना योग ॥३॥

ओं ह्रीं मार्गशीर्ष पूर्णमास्यां तपोमंगलमंडिताय संभवजिनेंद्रायार्घं नि० ॥३॥

चौदश कार्तिक कृष्णको, पाया केवल ज्ञान ।
चार घातिया चूर कर, श्री संभव भगवान ॥४॥

ओं ह्रीं कार्तिक कृष्ण चतुर्दश्यां केवलज्ञानमंडिताय संभवनाथ जिनेंद्रायार्घं नि. ॥४॥

सब विधि कर्म जलाय कर, भव समुद्रके पार ।
चैत सुदी छठको भये, संभव सुख भंडार ॥५॥

ओं ह्रीं चैत्र शुक्ल षष्ठ्यां मोक्ष मंगलमंडिताय संभवनाथ जिनेंद्रायार्घं नि. ॥५॥

जयमाला

दोहा—शंके दाता देव तुम, शंभव नाथ यथार्थ ।
मुझको वह शं दीजिये, जिससे सधै महार्थ ॥१॥

भुजंग प्रयात ।

सहे नाहि जाते गती दुक्खनंता, करो नाथ जैसे मिलै सुक्खनंता ॥
पशू योनि पाई जबै नाथ मैने, धरे रूप हस्ती अजा श्वान मैने ॥२॥
गिजाई लटाई पई शंख कोडी, बिछू मक्खिका सांप भौंरा मकोडी ।

मरा श्वांस एकै अठारा प्रमाणै, धरी देह छोटी घनांगूल मानैं ॥ ३॥
दया की न ओपै कभी भी किसीने, विदारया भखा काट खाया सभीने।
हुई आयु पूरी जवै तिर्गती की, गया नर्क माहीं जगै दुर्गतीकी ॥४॥
मिले दुक्खनंते कहे जाय नाहीं, सहे जीव सो भी पराधीनता ही।
महा भूख लागै मिलै ना कणा है, महा प्यास लागै मिलै ना जला है ॥५॥
लगै ठंड ऐसी गलै देह सारी, लगै उष्ण ऐसी जलै देह सारी।
करैं खंड छोटे तिलोंसे भी ऐसे, मिलै देह पारा मिलै शीघ्र जैसे ॥६॥
लडै हैं तहां याद लाके पुरानी, करैं यत्न ऐसा मिटावैं निशानी।
गई सागरां बीत आयू जहां है, वहां से गया पेट नारी जहां है ॥७॥
लहे अंग संकोचसे दुक्ख भारी, पडे भूमि पाई असाता अपारी।
बढे कालसे शक्ति आई युवाकी, रमे कामिनी संग भूले हितांकी ॥८॥
हुए वृद्ध तृष्णा बडी साथमें है, भुला धर्म, ले पापको साथमें है।
गंवाया समै, था मिला उन्नतीको, मरे स्थान पाया महा दुर्गतीका ॥९॥

भये देव नीचे, झुरे देख माया, महामानसी दुःख आ आयु पाया।
भई दुर्दशा नाथ मेरी यहां है, मिले शाश्वती शांति भेजो वहां है ॥१०॥

दोहा।

शत इंद्रनिवंदित प्रभो ! संभवनाथ जिनेश।
कर्म पाशकों काटि कर, 'श्री' का हरिये क्लेश ॥११॥इति पूर्णार्घं।

श्री चतुर्थं जिन अभिनन्दन जिनपूजा।

दोहा—भव्य जीव आनन्दकर, अभिनन्दन जिनदेव।
अत्र आय तिष्ठो प्रभो, करूं चरण की सेव॥

ओं ह्रीं श्री अभिनन्दन जिनेन्द्र। अत्र अवतर अवतर संवौषट् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

वारि सु स्वच्छ चढाय, तुम चरणनि आगे।
मम जन्म मृत्यु क्षय जाय, शाश्वत सुख जागे॥

श्री अभिनन्दन जिनराज, जो तुम गुण ध्यावै।
वह करे कर्मका नाश, आतम सुख पावै॥
ओं ह्रीं श्री अभिनन्दनजिनेन्द्राय जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।
चंदन केसर करपूर एला संग घसै। चर्चत श्री जिनपाद भव आताप नसैं॥
श्री अभिनन्दन०। वह करै०। चंदनं नि० स्वाहा ॥२॥
तंदुल ले श्वेत महान, तुम पद भेट धरों।
अक्षत पद दो भगवान, यह ही विनति करों॥
श्री अभिनन्दन०। वह करै०॥ अक्षतम् ॥३॥
कमल केतकी कचनार, नाना फूल कहे।
जिनचरणों में भेट चढे, काम कलंक दहे॥
श्री अभिनन्द०। वह करै०॥ पुष्पं० ॥४॥
मन नेत्र घ्राण सुखकार, रसना ललचावै।
रसयुत पकवान चढाय, क्षुधा दूर जावै॥

श्री अभिनन्दन० । वह करैं०॥ नैवेद्यं० ॥५॥

दर्शन जाननकी शक्ति, हास करी मेरा ।
आवरणी हरिये देव, धरूं दीप ढेरी ॥

श्री अभिनन्दन० । वह करैं० ॥ दीपम्० ॥६॥

शुभ धूप अगनिके संग, खेवत धूम उठे ।
मनु कर्म काठ की गांठ, जलकर दूर हटै ॥

श्री अभिनंदन० । वह करैं० ॥ धूपम्० ॥७॥

कदली फल आम बदाम, सरस सुपक्व भले ।
धरि चरण कमल तल भेंट, पावत मोक्ष फले ॥

श्री अभिनन्दन० । वह करैं०॥ फलम् ॥८॥

जल आदिक द्रव्य अनर्घ, अर्घ बनाय जजों ।
पद अनर्घ देन परवीण, श्री जिन चरण भजों ॥

श्री अभिनन्दन० । वह करैं०॥ अर्घम् ॥९॥

पंच कल्याणक अर्घं ।

अयोध्या नगरी विषै, अभिनन्दन जिनराज ।
आये मानुष देहमें, सुदि विशाख छठि साज ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्री वैशाख शुक्ल षष्ठ्यां गर्भ कल्याणक मंडिताय श्री अभिनन्दन जिनेन्द्रायार्घं निर्व०

सुवर्णसा तन शोभता, अभिनन्दन जिनदेव ।
माघ सुदी वारस दिवस, जन्म लिया भव छेव ॥ २ ॥

ओं ह्रीं माघ शुक्ल द्वादश्यां जन्म कल्याणक मंडिताय श्री अभिनन्दनजिनेन्द्रायार्घं नि०

भवतनरूप विचारकर, अभिनन्दन जिनराज ।
जन्म दिवस दीक्षा धरी, छोडा जग का राज ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं माघ शुक्ल द्वादश्यां दीक्षा कल्याणक मंडिताय अभिनन्दननाथ जिनेन्द्रायार्घं नि० ।

शुक्ल ध्यानके जोरसे, किये घातिया नष्ट ।
पौष शुक्ल चौदश दिवस, अभिनन्दन परमेष्ठ ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं पौष शुक्ल चतुर्दश्यां ज्ञान कल्याणक मंडिताय श्री अभिनन्दन जिनेन्द्रायार्घं नि०

अघाति कर्मका नाशकर, भववन कीया छार।
अभिनन्दन जिनदेवने, विशाख सुदी छठवार ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं वैशाख शुक्ल षष्ठ्यां मोक्ष मंगल मंडिताय श्री अभिनन्दन जिनेन्द्रायार्घं नि०

जयमाल।

दोहा—श्रीअभिनन्दन जिन चरण, मनमें ध्याय पवित्र।
गूथूं गुणमाला सुगम, होऊं कर्मलवित्र ॥१॥

चाल त्रोटक छंद

भव नाशन कारण देव कहे, जिन जीत कषाय सुबोध लहे।
जगमांहि सभी जन दुःखित हैं, वसु कर्मनिसे बहु पीडित हैं ॥२॥
यह देखि भये करुणाप्लुत हैं, दुख दूर करूं यह भावत हैं।
तब बन्ध तीर्थंकर नाम किया, उसकी उदयावलिका समया ॥३॥
बिन इच्छ खिरी निर अक्षर है, ध्वनि दिव्य महा हित कारण है।
सब जीव भये सुखिया सुनके, निजकी निजकी गिरमें समझे ॥४॥

अपने दुखके लखि कारण को, निजभाव कषाय विभावनिको।
तब चारित धारण बुद्धि जगी, व्रत देश महाव्रत पालनकी ॥५॥

निज आतम शुद्ध किया उनने, पर पुद्गल दूर किया उनने।
इस भांति अनन्त सुखी तुमने, बहु जीव किये अपनी ध्वनिसे ॥६॥
मुझको बुधि दे उद्धार करो, जग बन्धन तोडि स्वतन्त्र करो।
इतनी अरजी सुनिये प्रभुजी, कर जोडि 'सिरी' कहता ब्रह्मजी ॥७॥

ओं ह्रीं श्री अभिनन्दन जिनेन्द्राय महार्घम् स्वाहा।

अथ पंचम जिन सुमतिनाथ पूजा।

सोरठा—प्रणमो सुमति जिनेश, शुभ मति दायक जानिके।
हरि हैं भव भव क्लेश, भक्ति भाव हृदय धरो ॥

ओं ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् अत्र तिष्ठतिष्ठ ठः ठः, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक जोगीरासा ।

गंगा आदिक शुभ नदियोंका, नीर सुस्वच्छ मंगाके ।
जन्म जरा मृति नाश करनको, चरण जजौ श्री जिनके ।
सुमति जिनेश्वर सुमति प्रकाशन, शिव सुखके हो भोगी ।
शिवसुख हम सबको भी दीजै, कीजे निजसम योगी ॥१॥

ओं ह्रीं श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामि स्वाहा ।

चंदन केसर कदली नन्दन, एला संग घिसावै ।
चरण चर्चकर श्रीजिनवरके, भव आताप नसावै ॥
सुमति जिनेश्वर० । शिवसुख हम० । चन्दनम् ।

अक्षत अक्षत शुभ्र मनोहर, पुंज धरो जिन आगै ।
अक्षत पद अक्षत हो जाये, कर्म महारिपु भागै ॥
सुमति जिनेश्वर० । शिवसुख हम० । अक्षतम् ।

चंपा वेला कमल चमेली, पारिजात शुभ गंधा।
काम रोगके नाश करन को, पूजो जिनवर चंदा॥
सुमति०। शिवसुख०। पुष्पम्।
ताजे ताजे सरस बनाये, नेवज विविध प्रकारा।
भक्ति भावसे श्री जिन आगे, धरत मिटै क्षुध वारा॥
सुमति जिनेश्वर०। शिवसुख हम०। नैवेद्यं।
घृतके वा करपूर संजोके, दीपक ज्योति जगाई।
मोह महातम नाश करनको, श्रीजिनचरण चढाई॥
सुमति जिनेश्वर०। शिवसुख हम०। दीपम्।
अगर तगर चंदन आदिकको, उत्तम धूप बनाई।
खेवत धूपायनके मांही, कर्म काठ जल जाई॥
सुमति जिनेश्वर०। शिवसुख हम०। धूपम्।
कदली खारिक आम संतरा, ऋतु ऋतुके फल लाई।

श्री जिन सन्मुख भैंट धरत ही, शिव फल सन्मुख आई ॥
सुमति जिने० । शिव सुख० । फलं ।
जल गंधादिक द्रव्य मिलाके, अर्घ अनर्घ्यं बनाओ ।
सुमति जिनेश्वर के पद पूजो, तुरत अखयपद पाओ ॥
सुमति जिने० । शिव सुख० । अर्घम् ।

पंच कल्याणक अर्घ । दोहा ।

सुदी श्रावणी दोजको सुमति जिनेश्वर स्वर्ग ।
त्याग अयोध्या अवतरे पूजत हो अपवर्ग ॥ १ ॥
ओं ह्रीं श्रावण शुक्ल द्वितीयायां गर्भ कल्याणक मंडिताय सुमति जिनेन्द्रायार्घं नि० ॥१॥
जन्म लिया सुमतीशने, चैत शुक्ल की ग्यार ।
हुआऽभिषेक सुमेरु पै, जगमें हर्ष अपार ॥ २ ॥
ओं ह्रीं चैत्र शुक्ल एकादश्यां जन्म कल्याणक मंडिताय सुमति जिनेन्द्रायार्घं नि० ॥२॥
कारण लख संसारको छोडि विशाख की नोम ।

पांच महाव्रत आदरे, सुमति लिया है मौन ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं वैशाख शुक्ल नवम्यां दीक्षा कल्याणक मंडिताय श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि०

शुद्धातमको ध्यान कर, राग द्वेषको हान ।
चैत सुदी पूनम दिवस, सुमति लिया सर्वज्ञान ।

ओं ह्रीं चैत्र शुक्ल पौर्णिमास्यां केवलज्ञान मंडिताय सुमति जिनेन्द्रायार्घं नि० ॥४॥

चैत सुदी ग्यारस दिवस, समेद शिखरके शीश ।
सुमति जिनेश्वर शिव लही, मैं बन्दों निशदीस ॥

ओं ह्रीं चैत्र शुक्ल एकादश्यां मोक्ष कल्याणक मण्डिताय सुमतिनाथायार्घं निर्वपामि स्वाहा ।

जयमाला ।

दोहा

सुमति हृदयमें धारकर, सुमति जिनेश्वर पाद ।
सु मति कभी विसराइये, निशदिन रखिये याद ॥१॥

हुआ जब भारत में अवतार, अयोध बनी नगरी सुखकार।
कुबेर किया बहु भांति शृंगार, बनाय उद्यान महान अगार ॥२॥
रखा नहिं कोइ गरीब दरिद्र, किये सब आढ्य, समान नरेंद्र।
शरीर महा सुषमायुत देव, न पसेव बहै न थकावट खेद ॥३॥
धरैं बल नंत, महाप्रिय बैन, सुगंधित देह निरोग सुचैन।
नहीं मलमूत्र, सुपेद सुरक्त, संस्थान चतस्र समान सुशक्त ॥४॥
हजार सुलक्षण शोभित सुस्थ, सुवज्र समान कठोर सुअस्थि।
नराच—नसैं सबसे उतकृष्ट, किये सब संहननैं सुनिकृष्ट ॥५॥
विराजित तीन सुज्ञान जिनेश, नमैं सब आकर इंद्र महेश।
धरैं शिशु–वस्थ तथापि प्रवीण, परापर भेद विवेक सुलीन ॥६॥
तिर्थंकर नाम सहोद्भव अन्यं, सुकर्म उदीर्ण हुए बहुधन्य।
'सिरी' ब्रह्मचारि कहै कर जोड़ि, प्रभो! अब कर्म जंजीर हि तोड़ि ॥७॥

ओं ह्रीं श्री सुमति नाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामि स्वाहा ॥५॥

अथ श्रीषष्ठ तीर्थंकर पद्मप्रभ पूजा ॥६॥

चाल-सवैया।

पद्म जिनेश हरैं भवक्लेश, वितीर्ण करैं सुख आतमताई।
पाद पयोज लगैं अलिभव्य, रहें न कभी परमें चितलाई॥
गान करैं गुण वृन्द सभक्ति, सदा अति आनंद पावनताई।
मैं अवतार करूं इस हेतु, समीप विराजय पूजनताई॥

ओं ह्रीं श्री पद्मप्रभजिनेन्द्र! अत्र अवतर २ संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः; अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक

स्वच्छ मिष्ट शीत हीर वारि झारि लीजिये।
जन्म मृत्यु नाश काज पादको जजीजिये॥

पद्मपाद कामधेनु, काम पूरने कहे।
भक्ति भावसे सुपूजि, कर्म-काष्ठ को दहे॥

ओं ह्रीं श्री पद्म प्रभ जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि०

केसरादि गंधसार तापहार लीजिये, पाद पूज देवके भवार्ति नाश कीजिये।
पद्म पाद० । भक्तिभाव० । चंदनं।

अक्ष लुब्ध होंय देख, तंदुलादि अक्षतं। पुंज पाद अग्र थापि, प्राप्त हो पदाक्षतं॥ पद्मपाद० । भक्ति भाव० । अक्षतं।

पारिजात कुंद जाति, केतुकी जुही कही। देवपादमें चढाइ, कामतापको दही॥
पद्मपाद० । भक्तिभाव० । पुष्पं।

चारुपिंड भांति भांति, मिष्ट सद्यके बने। भेंट पादके समीप, भूख डायनी हने॥
पद्मपाद० । भक्ति भाव० । नैवेद्यं।

दीप राशिके प्रकाश, अंधकार दूर हो, भेंट भक्ति भाव साथ ज्ञान भानु प्राप्तहो॥

पद्मपाद० । भक्ति भाव० । दीपम् ।

अग्नि माहि धूपजात, धूम घूम यों कहे । होंय कर्म नष्ट, धूप पद्मपादमें दहे ॥

पद्मपाद० । भक्ति भाव० । धूपम् ।

दाख आम संतरादि, पक्क मिष्ट लीजिये । भेंट पद्मपाद पास, मोक्ष प्राप्त कीजिये ॥ पद्मपाद० । भक्ति भाव० । फलं ।

आठ द्रव्य साथ लाय, अर्घको बनाइये । पद्मपाद अग्र धारि, भक्तिसे चढाइये

पद्मपाद० । भक्ति भाव० । अर्घम् ।

अथ पंचकल्याणक अर्घ । आर्या छंद ।

माघवदीकी छठको, पद्म प्रभ मात गर्भ में आये ।
तीन जगत के सब ही, सुर असुर खगादि हरषाये ॥१॥

ओं ह्रीं माघ कृष्ण षष्ठी दिने गर्भ कल्याणक प्राप्ताय पद्मप्रभ जिनेन्द्रायार्घं नि०। १॥

कातिक कृष्णा तेरस, कौशांबी जन्म जिन लीना ।
कर अभिषेक सुराधिप, पद्म प्रभ नाम उन दीना ॥२॥

ओं ह्रीं कार्तिक कृष्ण त्रयोदश्यां जन्म कल्याणक मंडिताय पद्मप्रभ जिनेन्द्रायार्घं नि०॥२॥

जगका रूप निहारा, अथिर असार दुखका दाता ।
कार्तिक शुक्ला तेरस, मुनि पद्म भये जगत्राता ॥३॥

ओं ह्रीं कार्तिक शुक्ल त्रयोदश्यां दीक्षा कल्याणक मंडिताय पद्मप्रभ जिनेन्द्रायार्घं नि०

मोह क्षयको करके, ज्ञानावरणादि घातिया घाते ।
चैत सुदी पूनोको, पाया पद्मप्रभ केवल ज्ञान ॥४॥

ओं ह्रीं चैत्र शुक्ल पूर्णिमास्यां केवल ज्ञान मंडिताय पद्म प्रभ जिनेन्द्रायार्घं नि०॥४॥

नाशे पद्म प्रभुजी, अघाति वदि चौथ फागुन में ।
हुए सिद्ध महन्ता, पाये अष्ट गुण भरपूर ॥५॥

ओं ह्रीं फाल्गुन कृष्ण चतुर्थ्यां मोक्ष मंगल मंडिताय पद्मप्रभ जिनेन्द्रायार्घं नि० ॥५॥

जयमाल

लाल कमल सम तन प्रभा, कमलालिंगित देह ।
अमला कमला दीजिये, नाश कर्ममल गेह ॥

हे पद्म जिनेश ! दयानिधान, गुण गण अनंत राजित महान् ।
कौशाम्बी नगरी जन्म लीन, सब लोक किये हर्षित अदीन ॥२॥
वर्षे थे रत्न छमास पूर्व, यह धरिणी धनमय हुई पूर्ण ।
जब राज किया क्षत्रिय प्रधान, सब ईति भीतिकी हुई हान ॥३॥
अतिवृष्टि अनावृष्टि अग्निदाह । अरि मारि चोर डाकिनिप्रवाह ।
सब बंद हुए उस काल मांहि, तुम पुण्य उदय सब सुख लहांहि ॥४॥
कुछ कारण पाय-भए विराग, तब बारह भावनमें सुलाग ।
लौकांतिक देव तुरंत आय, वैराग्यभाव दृढतर कराय ॥५॥
सब छोड परिग्रह राजपाट, पुत्र पौत्र और परिजन सुठाठ ।
शुभ लिया दिगम्बर भेषधार, ले गुप्तिसमिति महाव्रत अपार ॥६॥
नाशा तपबल परमाद–सैन, किया प्राप्त आत्म आधीन चैन ।
किया चार घातियाकर्मनाश, पाया शुभ केवल ज्ञानभास ॥७॥

दिया दिव्यध्वनि धर्मोपदेश, सुन जीव भए सब निज सुखेश ।
"श्रीलाल ब्रह्मचारी" विनीत, कहता करना मोहि कर्मजीत ॥८॥

घत्ता ।

पद्मजिनेशा, नमितसुरेशा, सबजगईशा हितकारी ।
ज्ञानदिवाकर चारित नायक, अक्षय सुखके अधिकारी ॥९॥

ओं ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेंद्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामिस्वाहा ॥ ६ ॥

अथ सप्तम तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ पूजा ॥७॥

श्रीसुपार्श्व के पदकमल, पूजत शिव हो पार्श्व ।
कार्मणमल मिटजाय सब, आतम होय सुपार्श्व ॥

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेंद्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम संनिहितो भवभव वषट् ।

अथाष्टक चाल लावनी।

गंगा जमुनाकूप आदिका, स्वच्छ नीर भरकर झारी।
चरण जजो श्रीजिनवरजी के, जन्म जरा मृतिक्षयकारी।
सुपार्श्वजिनेश्वर जगके ईश्वर, शिव नगरी के अधिकारी।
तुम सुख दाता, हरो असाता, दीन जानि करुणाधारी ॥१॥

ओं ह्रीं श्रीं सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामि स्वाहा।

केसर चंदन कदलीनंदन, एलासंग घिसो भाई।
चर्चत चरण श्रीजिनवरके, भवकी ज्वाला बुझिजाई॥
सुपार्श्व जिनेश्वर, जगके ईश्वर, शि०। तुम सुख०॥ चँदनं ॥२॥

तंदुल शाली ब्रीहि आदि शुभ, अक्षत पुंज धरो लाई।
अक्षतपदकी प्राप्ति करनको, यह उपाय उत्तम भाई॥
सुपार्श्व०। तुम सुख०। अक्षतं ॥३॥

पारिजात मंदार जातिके, सुमन सुमन मन हर्षाई।
जजन करत हो श्रीजिनवर का, मन्मथ मान तुरत जाई॥
सुपार्श्व०। तुम सुखदाता०। पुष्पं ॥४॥

घेवर बावर मोदक फैनो, रसनाभावन रसधारी।
धरत भेंट श्रीजिनके आगै, क्षुधारोगके हरतारी॥
सुपार्श्व०। तुम सुख०। नैवेद्यं ॥५॥

अंधकारके नाशक दीपक, स्वपर प्रकाशन करतारी।
अग्र धरत अज्ञान नाश हो, स्वपर विवेक जागै भारी॥
सुपार्श्व०। तुम सुखदाता०। दीपं ॥६॥

धूप दशांगी धूपायनमें, डारि सुधूम उडै भारी।
कहता मानो कर्म काठ यह, जलकर उडता जाता री॥
सुपार्श्व०। तुम सुख०। धूपं ॥७॥

आम संतरा एला केला, खारक पिस्ता सुखकारी।
फलसे पूजे श्रीजिनवरको, निजसु फल लो अविकारी ॥८॥
सुपार्श्व०। तुम सुख०। फलं ॥

जल फल आदि द्रव्य वसु लाके, अर्घ बनाकर मन हारी।
पूजत श्रीजिनचरण कमल को, पद अनर्घ मिलता भारी ॥
सुपार्श्व०। तुम सुखदाता०। अर्घं ॥९॥

अथ पंच कल्याणक अर्घ। आर्या छंद।

वाराणसि में आये, भादव सुदि छट्ठि शुभ दिनको।
श्री सुपार्श्व प्रभुजी, गर्भ महोत्सव किया सुरपतिने ॥१॥
ओं ह्रीं भाद्रपद शुक्ल षष्ठ्यां गर्भ कल्याणक मंडिताय श्री सुपार्श्व जिनेन्द्रायार्घं नि०

जेठ सुदी बारस को, जन्मे श्री सुपार्श्व भगवान।
देवोंने हर्ष मनाया, करि अभिषेक मेरु ले जाकर ॥२॥
ओं ह्रीं ज्येष्ठ शुक्ल द्वादश्यां जन्म कल्याणक मंडिताय श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि०

हुवे सुपार्श्व विरक्त, संसार शरीर भोगोंसे ।
जेठ सुदी बारस को, दीक्षा ले मुनि बने बनमें ॥३॥

ओं ह्रीं ज्येष्ठ शुक्ल द्वादश्यां दीक्षा मंडिताय श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि० ।

फागुन की बदि छठि को, घाते घातिया चतुः कर्म ।
पाया केवल ज्ञान, पूज्य श्री सुपार्श्व प्रभुजीने ॥४॥

ओं ह्रीं फाल्गुन कृष्ण षष्ठ्यां केवल ज्ञान मंडिताय श्री सुपार्श्व नाथ जिनेन्द्रायार्घं नि० ।

सम्मेद शैल जाकर, पायी मुक्ति सुपार्श्व प्रभुजीने ।
सप्तमि फागुन बदिको, हूवे सर्व तन्त्र स्वतन्त्र ॥५॥

ओं ह्रीं श्री फाल्गुन कृष्ण सप्तम्यां मोक्ष कल्याणक मंडिताय श्री सुपार्श्व जिनेन्द्रायार्घं नि०

जयमाला । दोहा ।

यदि सुपार स्वको करण, चाहत भवका नीर ।
तो सुपार्श्व श्रीजिनचरण, सेवो गुणगंभीर ॥१॥

छंद त्रोटक ।

हम हैं जिनजी दुखिया जगमें, सुनिये दुख जो नित भोगनमें ।
वसु कर्म फिरावत दुर्गतिमें, न कभी मिलता सुख है पलमें ॥
मति नष्ट हुई इनके वशमें, न विवेक रहा निजमें परमें ॥२॥
अब बुद्धि करो जिनजी निपुणा, मम दुःख मिटै भव बंधनका ॥३॥
विपरीत कुभाव वमूं नित मैं, निज आतम शुद्धि करूं नित मैं ।
अकषाय कषाय मिटावन को, जग जाय सुधी सुख पावनको ॥४॥
अणुवृत्त महाव्रत धारणकी, अठवीस सुमूल गुणव्रत की ।
तप बारह भेद कहे जिनजी, उन पालन में रत हों नितजी ॥५॥
प्रथमार्त द्वितीय न हो कब ही, भव कारण आरत रौद्र सही ।
रति हो तिरतीय चतुर्थनिमें, शिव शीघ्र मिलै जिसकारण तें ॥६॥
दुइ वीस परीषह का सहना, उनसे नहि होय कभी चिगना ।
जगरूप विचार करूं नित मैं, अति लीन बनूं निज आतममें ॥७॥

अवलोक पशू वनके मुझको, न डरें थिर हों खुजला तनको।
इतनी करिये प्रभुजी करुणा, मिट जाय भवोदधिका रुलना ॥८॥
दोहा—तीन लोकके ईश तुम, श्री सुपार्श्व जिनचंद्र।
पार्श्व सदा 'श्री ब्रह्म' को, राखि करो जित तंद्र ॥९॥
ओं ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथ जिनेंद्राय अनर्घ्य पद प्राप्तयेऽर्घं निर्वपामि स्वाहा।

अथ श्री अष्टम जिन श्रीचंद्रप्रभ पूजा ॥८॥

अष्ट कर्म करि नष्ट, भए अष्टम क्षिति स्वामी।
अष्ट महागुण पाय, निज स्थित अंतर्यामी ॥
अष्टम तीरथकार, जगत जनके हितकामी।
पूजूं चन्द्र जिनेश, आय तिष्ठो जगनामी ॥१॥
ओं ह्रीं श्री चंद्रप्रभ जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अथाष्टक । जोगीरासा ।

श्वेत चंद्र सम स्वच्छ मनोहर, शीतल वारि सुलाओ ।
चरण प्रचालो श्री जिनवरके, जन्म जरा मृति टालो ॥
चंद्र किरण सम शांति प्रदाता, चंद्रप्रभ जिनराजा ।
श्वेत चंद्रवत तनकी आभा, चंद्र द्वितीय विराजा ॥

ओं ह्रीं श्री चंद्रप्रभ जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि० ।

मलया गिरि का उत्तम चंदन, केसर संग मिलावै ।
श्री जिनपतिके चरण चर्चकर, भवका ताप नशावै ।
चंद्र किरण सम० । श्वेत चंद्रवत० । चंदनं ।
चंद्र किरण सम श्वेत सुअच्छत, अच्छत लाय चढावै ।
अच्छय सुखकी प्रापति होवै, अविनाशी पद पावै ॥
चंद्र किरण सम० । श्वेत चंद्रवत० । अच्छतं ।
वेला चंपा पारिजात जुहि, नाना फूल मंगावै ।

श्री जिनवरके चरण पूजकर, कामकि पीर मिटावै।
चंद्र किरण सम०। श्वेत चंद्रवत०। पुष्पं।
खुरमा पेड़ा मोदक खाजे, ताजे तुरत बनाये।
अग्र धरे श्री जिन चरणोंमें, क्षुधकी वाधा जाये॥
चंद्र किरण०। श्वेत चंद्र०। नैवेद्यं।
रतन ज्योति या घृतके दीपक, वा करपूर जलाओ।
अज्ञान महातम नाश कराओ, श्री जिनचरण चढाओ॥
चंद्र किरण०। श्वेत चंद्रवत०। दीपम्।
दश विधकी बहु द्रव्य कुटाकर, धूप सुगंधित कीजे।
श्री जिनपाद समीप धुपायन, खेवत कर्म जलीजे॥
चंद्र किरण सम०। श्वेत चद्रवत०। धूपम्।
नाना विधके ताजे उत्तम, प्रासुक पक रसीले।
नेत्र घ्राण मनको सुखकारी, जिनको पूजे फल ले।

चंद्र किरण० । श्वेत चंद्रवत० । फलम् ।

अर्घ लायकर जिनको पूजो, मनमें हरष धरीजे ॥
कमसैनको दाणमें जयकर, अपने पदको लीजे ॥

चंद्रकिरण० । श्वेत चंद्रवत० । अर्घं ।

श्री पंच कल्याणक अर्घ । दोहा ।

चन्द्रपुरी नगरेशके, महिषी गर्भ मझार ।
चैत वदी पंचमि दिना चन्द्र लिया अवतार ॥१॥

ओं ह्रीं चैत कृष्ण पंचम्यां गर्भ कल्याणक मंडिताय श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्रायार्घं नि०

पौष वदी ग्यारस दिवस, जन्मे चन्द्र जिनेश ।
जगमें उत्सव छा गया, नाचा प्रथम सुरेश ॥२॥

ओं ह्री पौष कृष्ण एकादश्यां जन्म कल्याणक मंडिताय श्री चन्द्र प्रभ जिनेन्द्रायार्घं नि०

यमसे पीडित जगत को, देख हुए संत्रस्त ।
जन्म दिवस दीक्षा धरी, चन्द्र हुए आश्वस्त ॥३॥

ओं ह्रीं पौष कृष्णा एकादश्यां दीक्षा कल्याणक मंडिताय श्री चन्द्र प्रभ जिनेन्द्रायार्घं नि०

घाति घातिया चार विध, पाया केवल ज्ञान।
फागुन वदि सप्तमि दिवस, चन्द्र प्रभ भगवान ॥४॥

ओं ह्रीं फाल्गुन कृष्णा सप्तम्यां केवलज्ञान मंडिताय श्री चन्द्र प्रभ जिनेन्द्रायार्घं नि०

सम्मेदाचल शीश पर, पाया पद निरवान।
फागुन सुदि सप्तमि दिवस, चंद्र जजों धरि ध्यान ॥५॥

ओं ह्रीं फाल्गुन शुक्ल सप्तम्यां निर्वाण कल्याणक मंडिताय चन्द्र प्रभ जिनेन्द्रायार्घं नि०

जयमाल। दोहा।

चंद्र प्रभा सम तन प्रभा, चंद्र लगा है पाद।
चंद्र प्रभ जिननाथ जी, द्वितीय चंद्र अवदात ॥१॥
कर्म शैल भेदन पवी, शिवमग कथन प्रवीन।
ऋषियोंके तुम वंद्य हो, राग द्वेष मलहीन ॥२॥

भुजंग प्रयात ।

चंदा पुरीमें जबै नाथ आये, भए मंगलाचार आनंद छाये ।
  माता सुलक्ष्मा महासेन राजा, किमिच्छा दिया दान सवत्र साजा ॥३॥
चारो निकाया सवै देव आये, बडी धूमसे मेरुपै स्नापनाये ।
  सौधर्म इंद्राणि शृंगार कीना, अलंकार वस्त्रादिसे अर्घ दीना ॥४॥
लाये पिता पास तांडो किया है, हुआ चंद्रका चिह्न पादों लगा है ।
  चंद्रप्रभासी छबी देहको है, किया नाम चंद्रप्रभ श्री सही है ॥५॥
कौमार्यवस्था गई बीत सारी, युवासे लगा होन वृद्धत्व भारी ।
  तो भी न वैराग्य होता दिखा जो, तबै इंद्रने वृद्धका रूप साजो ॥६॥
आया सभामें अकस्मात बूढा, लगा रोवने धोवने माथ कूटा ।
  रक्षा करो नाथ ! मेरी दुखी हूं, बचाओ मुझे अन्यथा मैं मरूं हूँ ॥७॥
मेरे पिछारी लगा काल भारी, इसे मूलसे मार कीजे सुखारी ।
  पूछा तबै दीनसे चंद्र नाथा, बताओ तुझे, कौन पीडा करै था ॥८॥

बोला तबै वृद्ध माथा नमाके, करै काल पीछा सबै स्थान जाके।
सोची प्रभूने कहै सांच बाता, बली काल जीता कभी भी न जाता॥९॥
संबोधने मोहि माया करी है, महामोहकी नींद ही खोल दी है।
भोगे सदा भोग मैंने यहां हैं, कभी आत्मका ज्ञान नाही किया है॥१०॥
रागादि जीते विना काल जीता, कभी भी न जाता किसीने न जीता।
छोडा जिन्होंने पर द्रव्यका है, महामोह लोभांश द्वेषत्वका है॥११॥
दैगम्बरी रूप धारा जिनोंने, लिया कालको जीत, आत्मा उनोंने।
दीक्षा तबै धारि चंद्र प्रभूने, हरा कर्मको, काल जीता प्रभूने॥१२॥
जीता यथा, काल, कार्माणदूता, करी शुद्ध आत्मा परद्रव्यपूता।
हो बुद्धि 'श्री' की, तथा आत्मलग्ना, करो मोहि ऐसा करूं कालभग्ना॥१३॥
ओं ह्रीं श्री चंद्र प्रभ जिनेंद्राय पूर्णार्घं निर्वपामि स्वाहा।

अथ श्री नवम तीर्थंकर श्री पुष्पदंत जिन पूजा ॥९॥

स्थापना अडिल्ल छंद।

काकिंदा पुरि माहि, सुग्रीव राजा कहे, रानी रामा नाम तिन्होंके अवतरे।
आरण नाम स्वर्ग जबै छोडा सही, निरमल हुआ आकाश, हुई हर्षित मही।
दोह—पुष्पदंत आगमनसे, भारत हुआ पवित्र।
मैं भी निश्चय होंउगा, इससे आवहु अत्र ॥२॥

ओं ह्रीं श्री पुष्पदन्त जिनेन्द्र! अत्र अवतर २ संवौषट् अत्र तिष्ठ२ ठः ठः अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अथाष्टक। चाल सोलह कारण पूजाकी। आंचली मिश्रित चौपाई।

पद्म द्रहका शीतल वारि, मिष्ट सुवासित भरकर झारि।
सदा पूजो। श्री जिननाथ सदा पूजो॥

पुष्पदन्त हैं गुण की खान, वीतराग युत केवल ज्ञान।

सदा पूजो, श्री जिन नाथ सदा पूजो॥

ओं ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामि स्वाहा।

मलया गिरिका चन्दन लाय, केसर उसके संग घिसाय।

सदा पूजो। श्री जिननाथ सदा पूजो॥पुष्प०। श्री०। चंदनं॥

अक्षत श्वेत अखंडित लाय, पुंज करो श्री जिन के पाय। सदा पूजो०

पुष्पदन्त है०। वीतराग युत०। सदा ०। अक्षतान्।

पारिजात चंपा कचनार, काम रोग के नाशन हार। सदा पूजो०

पुष्पदन्त है०। वीतराग युत०। सदा०। श्री०। पुष्पं।

नेवज ताजे रसयुत मिष्ट, पूजत क्षुधा रोग हो नष्ट। सदा०।

पुष्पदन्त०। वीतराग०। सदा०। श्री०। नैवेद्यं।

रत्न मणी वा घृत के दीप, अज्ञान मेटने राख समीप। सदा पूजो०।

पुष्पदन्त०। वीतराग०। सदा०। श्री०। दीपम्।

धूप दशांगी पावक मध्य, खेय जलायो कार्मण बध्य। सदा पूजो०

पुष्पदन्त०। वीतराग०। सदा०। श्री०। धूपम्।

अनार संतरा दाखबदाम, फलसे पूज लहो शिवधाम। सदा ०।

पुष्पदन्त०। वीतराग०। सदा ०। श्री ०। फलं ०।

आठ द्रव्य का अर्घ बनाय, पूजत अविनाशी पद पाय। सदा ०।

पुष्पदन्त०। वीतराग०। सदा०। श्री०। अर्घम्।

पंच कल्याणक अर्घ। दोहा

पुष्पदंत आये गर्भ, फागुन नौमी कृष्ण।
छपन कुमारी देवियां, सेवैं मात सतृष्ण ॥१॥

ॐ ह्रीं फाल्गुन कृष्ण नवम्यां गर्भ कल्याणक मंडिताय श्री पुष्पदन्त जिनेन्द्रायार्घं नि०

मगसिर सुदि पडिवा दिवस, जन्मे पुष्प जिनेन्द्र।
इन्द्र आय उत्सव किया, हर्षे नाग नरेन्द्र ॥२॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदायां जन्म कल्याणक मंडिताय श्री पुष्पदन्त जिनेन्द्रायार्घं नि०

जन्म दिवस के दिवस ही, पुष्पदन्त महाराज।
देखि संसार अनित्यता, मुनी बने तजि राज ॥३॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदायां दीक्षा कल्याणक मंडिताय श्री पुष्पदन्त जिनेन्द्रायार्घं नि०

चार घातिया घात कर, पाया केवल ज्ञान।
कातिक सुदि द्वितोया दिवस, पुष्पदन्त भगवान ॥४॥

ॐ ह्रीं कार्तिक शुक्ल द्वितीयायां ज्ञान कल्याणक मंडिताय पुष्पदन्त जिनेन्द्रायार्घं नि०

शेष अशेष अघाति विधि, नाशि हुए हैं सिद्ध।
भादव सुदि अष्टमि दिवस, पुष्पदन्त गुणवृद्ध ॥५॥

ॐ ह्रीं भाद्रपद शुक्ल अष्टम्यां मोक्ष कल्याणक मंडिताय पुष्पदन्त जिनेन्द्रायार्घं नि०

जयमाल। दोहा।

कोटि चन्द्र सम दीप्त है, कुन्द पुष्प सम श्वेत।
श्वेत ज्ञान राजित प्रभो, श्वेत ध्यान समेत ॥

मोह महा बल है जगमें, दुख देत डरै नहिं है किससे ।
नाश किया इसका तुमने, वह मार्ग मुझे समुझाय दिजे ॥२॥
या जगमें जितने दुख हैं, सब मोहि दिये अब लों इसने ।
ज्ञान कुज्ञान किया इसने, विपरीत विभाव किया इसने ॥३॥
सैन कषाय कुदर्शन हैं, इन घेर लिया सब ओर मुझे ।
बन्ध सदा परमें करते, न अघात कभी दुख देत मुझे ॥४॥
आय लिया अब आश्रय है, प्रभु आप बचाव करो इनसे ।
होय न भाव कुभाव कभी, निजमें रत होंउ बचूं परसे ॥५॥
बन्ध अभाव सदा बन जाय, रहे नहि कारण बन्धन का ।
यों शुध रूप बनै प्रभुजी, निजरूप समान मुझे करना ॥६॥
भूल हुई अब लों मुझसे, पहिचान कभी न करी तुमसे ।
यों भटका जग मांहि सदा, दुख पाय मरा जनमा अबलों ॥७॥

सम्यगदृष्टि भयी अब तो, समझा तुमको जग तारक हो।
कारण "श्री" सुखका समझा, इससे बिनती मोहि पार करो ॥८॥

ओं ह्रीं श्री पुष्प दन्त जिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामि स्वाहा।

———०———

अथ श्री दशम तीर्थंकर श्री शीतलनाथ दशम पूजा ॥१०॥

स्थापना दोहा।

शीतल जिनके पद कमल, शीतल भव का ताप।
करने, आव्हानन करूं, आय बिराजो आप ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर संवौषट् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः अत्र मम संनिहितो भव भव वषट्।

सीतल मिष्ट सुवासित जल ले भर कंचन झारी।
चरण समीप धार दे मिटता भवका दुख भारी ॥२॥
सुनो जिन शीतल सुखकारी। भवका ताप तपाता मुझको शीतल करना जी

सुनो जिन शीतल सुखकारी ॥ टेक

ओं ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामि स्वाहा ।

चंदन सुरभित केसरके संग, एला घिस पानी ।
श्री जिनवर के चरण चर्चंते भवतप हो हानी ।
सुनो जिन० । भव का ताप तपाता ० । सुनो० । चंदनं ।

चन्द्र किरण सम स्वच्छ मनोहर, अक्षत अक्षत जी ।
पुंज करत श्री जिनवर के ढिंग, अक्षत पद लेजी ।
सुनो जिन० । भव का ताप तपाता ०। सुनो० । अक्षतम् ।

नाना विधके फूल मनोहर, सुरभित अलि गावैं ।
कहते मानो पुष्प चढाये, काम दूर जावैं ।
सुनो जिन ०। भवका ताप तपाता ० । सुनो० । पुष्पम्

मोदक खाजे फेनी खुरमा, नेवज बहु लाके ।

भेट धरत मिटता दुखछुधका, सुख साता लाके ।
सुनो जिन०। भवका ताप तपाता ०। सुनो०। नैवेद्यम्

रतन अमोलक मणि के दीपक, वा कपूर घृत के ।
जगमग ज्योति जलाये प्रगटै, ज्ञान परापरके ।
सुनो जिन० भवका ताप तपाता ०। सुनो०। दीपम्

सुगन्ध वाला अगर तगर, रूमी मस्तंगी ।
चंदन सुरभित धूप जलाई, पावक दश अंगी ।
सुनो जिन० भवका ताप तपाता ०। सुनो०। धूपम्

आम अनार संतरा केला, सरस पक्व लेरी ।
श्री जिन चरण चढाय भक्तिभर, शिवसुख फल लेरी ।
सुनो जिन० भवका ताप तपाता ०। सुनो०। फलम्

जल फल आदि आठ द्रव्य, लेकर अर्घ बनाय धरोजी ।

श्री जिन पूजत पाप नशत है, पद सु अनर्घं वरोजी।
सुनो जिन० भवका ताप तपाता ०। सुनो०। अर्घंम्

श्री पंच कल्याणक अर्घ। दोहा।

भद्रल पुरमें अवतरे, शीतल श्री जिनराज।
अष्टमि कृष्णा चैत्र को, सुरपति उत्स कराय ॥१॥

ॐ ह्रीं चैत्र कृष्ण अष्टम्यां गर्भ कल्याणक मंडिताय श्री शीतलनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि०

माहवदी द्वादश दिवस, जन्मे शीतलनाथ।
अभिषेक मेरुपर किया, हर्षित हो सुरनाथ ॥२॥

ॐ ह्रीं माघकृष्ण द्वादश्यां जन्म कल्याणक मंडिताय श्री शीतलनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि०

जन्म दिवस के दिवस को, लख संसार असार।
राज त्याग दीक्षा धरी, शीतलनाथ सुसार ॥३॥

ॐ ह्रीं माघ कृष्ण द्वादश्यां दीक्षा कल्याणक मंडिताय श्री शीतलनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि०

चार घातिया नाशकर, पाया केवल ज्ञान।

पौष वदी चौदशदिवस, श्री शीतल भगवान ॥४॥

ॐ ह्रीं पौष कृष्ण चतुर्दश्यां ज्ञान मंगल मंडिताय श्री शीतलनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि ०

आश्विन शुक्ला अष्टमी, सम्मेंदाचल जाय।

अघातिया चारो हने, शीतल श्री जिनराय ॥५॥

ॐ ह्रीं आश्विन शुक्ल अष्टम्यां मोक्षंगताय श्री शीतलनाथ जिनेन्द्रायार्घं निर्वपामि स्वाहा।

जय माला

दोहा—भद्दल पुरमें जन्म लिय, दृढरथ राजा गेह।

मात सुनन्दा कोख से, शीतल तीर्थ बरेह ॥१॥

शीतल दशवें तीर्थंकर शीतल करते पाप।

शीतल जिनकी वाणि है, सुनकर मिटता ताप ॥२॥

चंद्र किरण वा वज्र मणि, गंगाजल घनसार।

सुख वैसा देते नहीं, जैसा जिन धुनिसार ॥३॥

चाल ।

शीतलनाथ करो सुखको, हरके मृति जन्म जरा रुजको
जीव सदा भवमें भ्रमता, दुख हेतु कषाय कुदृष्टि धृता
छोडत चाहत नाहिं इन्हें, रति धारि प्रमाद कुचारित में
सम्यग्दृष्टि न धारत है, सद् ज्ञान न चारित पागत है
लीन रहै परमें सततं, निजरूप कभी न विचारत है
जो दुख हेतु प्रधान पने, उनमें रतिमान ठगावत है
आप सदा सुख दायक हैं, हितका उपदेश सुनाय कहै
आय लई इससे शरणा, अबकी मुझपै करिये करुणा
मैं भवमें बहु कष्ट सहूँ, भवका अब नाश अवश्य चहूँ
'श्री' कहता कर जोडि सदा, शिवराज मिलो सततं सुखदा

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घम् निर्वपामि स्वाहा ।

श्री एकादश तीर्थंकर श्रेयांस नाथ जिनपूजा

हरिगीता छंद। मात्रा २८।

श्रेयांस जिनने जन्म लीना, स्वर्गपुर को छोंडिके।
राजा विमल रानी सुविमला, सिंहपुरी में आयके॥
हर्षित हुये सव जीव जगके, मार्ग हितका पा गये।
अत्र आय विराज प्रभुजी, धन्य हम भी हो गये॥१॥

ओं ह्रीं श्री श्रेयांस नाथ जिनेन्द्र! अत्र अवतर २ संवौषट् अत्र तिष्ठ२ ठः ठः अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अथाष्टक।

अति मिष्ट निर्मल शीत जल ले, हेम झारि भराइये।
भक्तिसे जिन चरण धोकर, जन्म मृत्यु वहाइये॥

श्रेयांस नाथ अनाथ हितकर, श्रेय मार्ग प्रकाशते।
सद वाणि जिनकी श्रवण करके, जीव शमसुख पावते ॥२॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामि स्वाहा।

उत्कृष्ट गंध विलुब्ध होकर, आवती भ्रमरावली।
घनसारसे जिन चरण चर्चैं, नशै भवकी आवली ॥

श्रेयांसनाथ० सदवाणि० चंदनम्

अतिश्वेत अमल अखण्ड अक्षत, पुंज धरकर पूजिये।
मिलजाय अक्षत सौख्य शिवका, स्व स्वभावमय हूजिये ॥

श्रेयांसनाथ० सदवाणि० अक्षतम्०

बहु फूल नाना भांति लाकर, पाद जिनके पूजिये।
दुठकाम रोग विलीन करके, शांतिरस को पीजिये ॥

श्रेयांसनाथ० सदवाणि० पुष्पम्

नेवज विविध वहु मिष्ट लाकर, पूजते जिन भक्तिसे ।
क्षुध रोग का वे नाश करके, मुक्ति पावैं वेगसे ॥
श्रेयांसनाथ० सद्वाणि० नैवेद्यम्
दीपक प्रजाल उजाल करते, जैन आलय में सदा ।
वे ज्ञान दीप प्रकाश पावैं, लीन हो निजमें मुदा ॥
श्रेयांसनाथ० सद्वाणि० दीपम् ।
दश अंग धूप कुटाय प्राशुक धूप आयन जो दहैं ।
अष्ट कर्म जलाय शीघ्र हि मुक्ति रमणी वे वरैं ॥
श्रेयांस०। सद वाणि०। धूपं ॥
घ्राण लोचन मन हरणवाले, पक्क फल लाके मुदा ।
जिन पाद जो जन पूजते वे, मोक्ष फल पावैं सदा ॥
श्रेयांसनाथ० सद्वाणि० फलम् ।

सद द्रव्य वसु ले गाय जिनगुण, भक्तिसे पूजा करैं।
अनर्घ पदके स्वामी होकर, मुक्ति लक्ष्मी वे वरैं॥

श्रेयांसनाथ० सद्वाणि० अर्घम्।

पंच कल्याणक अर्घ। आर्या छंद।

जेठ बदी छठि तिथिको, श्री श्रेयांस गर्भ में आये।
सब जग आनन्द छाये, हम पूजें अर्घ शुभ लाये॥१॥

ओं ह्रीं जेष्ठ कृष्ण षष्ठ्यां गर्भ कल्याणक मंडिताय श्री श्रेयांसनाथ जिनेंद्रायार्घं नि०।

सिंह पुरी में आये, एकादशि कृष्ण फागुन को।
सुर सुरपति हर्षाये, श्रेयांस नाथ जिन लखिके॥२॥

ओं ह्रीं फाल्गुन कृष्णा एकादश्यां जन्मकल्याणक मंडिताय श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि०।

फागुन बदि ग्यारस को, विषय राग द्वेष मद मोहा।
अरिगण नाश करण को, श्रेयांस बने मुनिराजा॥३॥

ओं ह्रीं फाल्गुन कृष्णा एकादश्यां दीक्षा कल्याणक मंडिताय श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि०

माघ वदी मावस में, हने हैं घातिया चारो।
श्री श्रेयांस प्रभूने, केवलि हो दिया उपदेश ॥४॥

ओं ह्रीं माघकृष्ण अमावस्यायां ज्ञानकल्याणक मंडिताय श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि०

सावन सुदि पूनोमें, नाशे शेष अघातिया कर्म।
सम्मेदाचल ऊपर, सिद्ध भए अष्ट गुण अनन्ता ॥५॥

ओं ह्रीं श्रावणी पूर्णिमास्यां मोक्षकल्यानक मंडिताय श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि

जयमाला। दोहा।

श्रेयकरण श्रेयांसपद, श्रेय श्रेय बहु जीव।
निःश्रेयसपति हो गये, यातैं श्रेय सदीव ॥१॥

पद्धरी छंद।

महाबल काम हने सब जीव, न शांति लहैं इसके वश जीव।
महादुख पाय भ्रमैं जगबीच, गती नरकादि पडे दुख कीच ॥
कभी न इन्हैं मिलता सुख-अंश सदा रहते निज ज्ञान-सुअंश।

शरीर कुटुम्ब धनादिक लीन, करैं बहु पाप, रहैं बहु दीन ॥
कभी न करैं निजरूप विचार, सदा परमें रहते अविचार ।
कषाय महादुख देनन हार, रहैं इनमें रत सौख्य विचार ॥
लहैं सब जीव सदा सुख नित्य, उपाय करू इस भांति विचिंत्य ।
अपाय विचै शुभ ध्यान लगाय, लिया कर तीर्थ सुपुण्य उपाय ॥
अनेक बन्धी प्रकृती शुभ अन्य, भये जिनसे अतिशायि सुधन्य ।
हुई जब आयु मुनीश सुपूर्ण, गये तब स्वर्ग, जहां दुख चूर्ण ॥
गई जब बीत सुदेव पर्याय, हूए तब सिंहपुरी पति आय ।
अनुक्रमसे लहि केवल ज्ञान, हुई समवसृत शोभ महान ॥
जुडे भवि जीव तहां हित मान, सुना उपदेश लिया निजज्ञान ।
धरे व्रत चारित आत्म सुखार्थ, तिरे इस भांति महामुनि सार्थ ॥
अनेक सुभव्य सुदृष्टि उपाय, भये बहु देश व्रती मन लाय ।

किये इस भांति सुखी जगजीव, प्रभो रखिये अब 'श्री' सु समीप ॥

ओं ह्रीं श्री श्रेयांस नाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामि स्वाहा ॥११॥



अथ द्वादश तीर्थंकर वासुपूज्य जिनपूजा ॥१२॥

स्थापना

अरुण वर्ण छबि देह, विराजै मूंगा जैसा ॥
महिष चिन्ह पग लसै, वली जीता जम जैसा ॥
चंपापुर किया सुशोभित कल्याणक वरसे ।
करो सुशोभित मनको मेरे, निज आगमसे ॥१॥

ओं ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र अवतर २ संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः; अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

मिष्ट अच्छ शीत नीर, हेम झारिमें भरो ।
पाद धोय देव देव, जन्म मृत्यु को हरो ॥

वासुकीन वासवेन्द्र वासुनाथ पूजितं ।

वासुपूज्यदेव पूजि होय सर्व पूजितं ॥१॥

ओं ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि० ।

काशमीर गंधसार साथमें घिसाइये ।

पूज्य देव पाद पूजि तापको नशाइये ॥

वासुकीन० वासुपूज्य० चंदनम् ॥२॥

अक्ष चित्त देखि जाहि हर्ष हर्ष नाचते । पुंज अक्षतान धारि मोक्षस्थान पावते

वासुकीन० वासुपूज्य० अक्षतम् ॥३॥

फूल भांति भांति लाय, वासुपूज्य पूजते ।

कामकी व्यथा नशाय, आत्मसौख्य पावते ॥

वासुकीन० वासुपूज्य० पुष्पम् ॥४॥

चारु पिंड मिष्ट लाय, सद्य के बने सजे ।

हेम थाल में भराय, पूजते क्षुधा भजे ॥

वासुकीन० वासुपूज्य० नैवेद्यम् ॥५॥

हेम पात्र में जलाय, दीप अग्र वारिये ।
ज्ञान जोति जागि जाय, जाड्य को निवारिये ॥

वासुकीन० वासुपूज्य० दीपम् ॥६॥

धूप धूप-पात्र मध्य, अग्नि संग जो जरै ।
धूम -धूम यों कहे कि, कर्मराख यों उडै ॥

वासुकीन० वासुपूज्य० धूपम् ॥७॥

दाख आम संतरादि, पक्व प्रासु लीजिये ।
पूजि वासुपूज्य देव, मुक्ति प्राप्त कीजिये ॥

वासुकीन० वासुपूज्य० फलम् ॥८॥

अर्घ ले सुवर्ण थाल, अर्घ्य पाद पूजिये ।
पाइये अनर्घ थान, आत्मलीन हूजिये ॥

वासुकीन० वासुपूज्य० अर्घम् ॥९॥

अथ पंचकल्याणक अर्घ। आर्या छंद।

चंपापुर के राजा, वसुपूज प्रधान रानिके गर्भ।
आषाढ बदी छठिको, आये वासुपूज्य स्वर्ग तजिके ॥१॥

ओं ह्रीं आषाढ कृष्ण षष्ठ्यां गर्भकल्याणक मंडिताय श्री वासुपूज्य जिनेन्द्रायार्घं नि०

फागुन वदि शुभ चौदश, जन्म वासुपूज्य जिन लीना ॥
अभिषेक हुवा मेरूपर, आठ अधिक हजार कलसोंसे ॥२॥

ओं ह्रीं फाल्गुन कृष्ण चतुर्दश्यां जन्म कल्याणक मंडिताय श्री वासुपूज्य जिनेन्द्रायार्घं नि०

जगका स्वरूप लखिके, अखंड ब्रह्मचर्य व्रत धारो।
श्री वासुपूज्य भये मुनि, फागुन कृष्ण चौदशको ॥३॥

ओं ह्रीं फाल्गुन कृष्ण चतुर्दश्यां दीक्षा कल्याणक मंडिताय श्री वासुपूज्य जिनेन्द्रायार्घं नि०

माघ सुदी द्वितीया को, चार घातिया घातकर पाया।
जिन वासुपूज प्रभुने, केवलज्ञान नंतसुख युक्त ॥४॥

ओं ह्रीं माघ शुक्ल द्वितीयायां ज्ञान कल्याणक मंडिताय श्री वासुपूज्य जिनेन्द्रायार्घं नि०

चंपापुर में घाते, चार अघातिया बचे कर्म ।
वासु पूज्य गये शिव, भादोंकी शुक्ल चौदशको ॥५॥

ओं ह्रीं भाद्रपद शुक्ल चतुर्दश्यां मोक्ष मंगल मण्डिताय श्री वासुपूज्य जिनेन्द्रायार्घं नि०

जयमाला । दोहा ।

मल योनी मल बीज लखि, देह खेह की खानि ।
बाल ब्रह्मचारी रहे, गहा न त्रिय का पानि ॥१॥
चंपापुर के नृपति वर, गुणी सुधी वसुपूज ।
उनकी पाटल देविके, जन्म लिया जगपूज ॥२॥
बारहवें यह तीर्थंकर, वासु पूज्य है नाम ।
जगविजयी उत्तम सुभट, जीता जिनने काम ॥४॥

भुजंगप्रयात छंद ।

पधारं जवै आप भूलोक माहीं, भए मंगलाचार त्रैलोक्य माहीं ।
अधोलोक फूला, महीलोक फूला, सुरावास फूला सवै दुःख भूला ॥४॥

किया इन्द्रने जन्मका उत्स भारी, सजा सैन लाया सु सप्तप्रकारी।
चले गीत गाते हु हू आदि देवा, चली नाचते अप्सराराजि सेवा ॥५॥
कहैं सर्व देवा जयो नन्द देवा, मही आज धन्या हुई आपसे या।
"प्रभू ये हुए दुःख के दूर कर्ता, करो सेव तो होउगे कर्महर्ता" ॥६॥
बजे सर्व बाजे करोडों प्रकारा, हुवा हर्षमें मग्न त्रैलोक्य सारा।
गये ले प्रभू को सुमेरू जहां है, अभीषेक कीना प्रभूका वहां है ॥७॥
पिता सद्म लाये किया उत्स भारी, गये स्वर्ग देवा सुरौ भक्ति धारी।
बढे देव ऐसैं बढैं चंद्र जैसे, किया राज का त्याग कौमार्य वै मै ॥८॥
धरे धर्म्य शुक्ल चये कर्म चारो, त्यजा आर्त रौद्रात्मका भाव सारो।
हुवे सर्व ज्ञाता हुए सर्व दर्शी, हुए नंतसौख्यो हुए नंत वीर्यी ॥९॥
ध्वनी दिव्यसे लोक को सौख्य दीना, हुए आप मुक्तीश शुद्धात्मलीना।
करो मोहि स्वामी कहे "श्री"अकामी, हरो वेदना कर्म की जो निशानो
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामि स्वाहा ॥१२॥

अथ त्रयोदश तीर्थंकर विमलनाथ पूजा ॥१३॥

स्थापना अडिल्ल छंद।

विमल कर्म मल टारि, विमल जगसे हुए ।
निरवारा भवभ्रमण, लोक शिखरें गये ॥
वसु गुण धारक होय, शुद्ध आतम भए ।
कीजे आप समान, आय इह तिष्ठिये ॥१५

ओं ह्रीं श्रीविमल नाथ जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अथाष्टक।

जल विमल मेलि कलशानि, विमल श्रीचरणा।
पूजत मिलती है मुक्ति, कमला ले शरणा ॥

विमल विमल महाराज, मोको विमल करो ।
द्रव भाव कर्म नो कर्म, मल मल मैल हरो ॥१॥
ओं ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय जन्म मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामि स्वाहा ॥१॥

मलयागिरि चंदनसार, केशर संग घसै ।
श्रीविमल चरण को पूजि, भवका ताप नसै ।
विमल विमल० । द्रवभाव०। चंदनं ॥२॥

सद अक्षत शुभ्र अखंड, भरि कँचन थारी ।
करि भेंट विमल जिनपाद, मिलती शिवनारी ॥
विमल ०। द्रव भाव०। अक्षतं ॥३॥

शुभ पारिजात मंदार, सुरभित फूल गहे ।
धरि विमल चरण के पास, सुख निष्काम लहे ॥
विमल०। द्रवभाव०। पुष्पं ॥४॥

सद खुरमा मोदक खीर, नेवज बहुविधि की ।

रखि चरण विमल के भेंट, व्याधि मिटैं छुधकी ॥

विमल ०। द्रवभाव०। नैवेद्यं ॥५॥

उत्तम मणिके शुभ दीप, वा घृतके जालो ।
जिनमंदिर पूजो जाय, ज्ञानपूर्ण पालो ॥

विमल०। द्रवभाव०। दीपं ॥६॥

दशअंगज सुरभित धूप, अलिगण को प्यारी ।
जो खेवत जिनके धाम, पावैं शिवनारी ॥

विमल०। द्रवभाव०। धूपं ॥७॥

शुभ खारक दाख बदाम, प्रासुक सरस भले ।
फल लेकर जिनको पूज, शिवसुंदरि सुमिले ॥

विमल०। द्रवभाव०। फलं ।

वहु अर्घ बनाय अनर्घ, श्रीजिनको पूजो ।

शिव शाश्वत पदको पाय शुद्धातम हूजो ॥

विमल०। द्रवभाव०। अर्घं ।

पंचकल्याणक अर्घ। दोहा।

सहस्रारसे अवतरे, मात सुरम्या गर्भ।
जेठवदी दशमी दिवस, करने जगका शर्म ॥१॥

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णादशम्यां गर्भ कल्याणक मंडिताय श्री विमलनाथ जिनेन्द्रायार्घं ॥१॥

जन्मे माघकी चौथको, शुक्ल पक्षके मांहि।
कंपिल्या शोभित हुई, विमल नाथकी छांहि ॥२॥

ओं ह्रीं माघ शुक्लचतुर्थ्यां जन्म कल्याण मंडिताय विमलनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि ० ॥२॥

विमलनाथ होने विमल, चौथ माघकी शुद्ध।
दीक्षा ले तप वन गये, हो जगसे प्रतिबुद्ध ॥३॥

ओं ह्रीं माघशुक्लचतुर्थ्यां दीक्षा कल्याणक मंडिताय श्रीविमलनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि०॥३॥

माघ सुदी छठि के दिना, घाति घातिया चार।

विमल नाथ केवलि भए, कीया धर्मप्रचार ॥

ओं ह्रीं माघ शुक्लषष्ठ्यां केवलज्ञानमंडिताय श्रीविमलनाथजिनेन्द्रायार्घं नि०॥४॥

आषाढ कृष्ण की अष्टमी विमल नाथ हुए मुक्त ।

देवों ने पूजा करी, होने शिवसे युक्त ॥

ओं ह्रीं आषाढ कृष्णअष्टम्यां मोक्षंगताय श्रीविमलनाथजिनेन्द्रायार्घं नि० ॥५॥

जयमाल । दोहा ।

सहस्रार स्वर्गतैं चये, नगर कंपिला रम्य ।

मात सुरम्या उदरतैं, जन्मे विमल सुरम्य ॥१॥

चाल—जंगला वरवा

त्रिजगके ईश हे स्वामी ! हे शत इन्द्र करि बंदित !

त्रिलोकालोकके ज्ञाता, हे ऋषि मुनीश अभिनंदित ॥ टेर ॥

सुना है लोक में मैने, होकर वीतरागी भी ।

तारते हाथ धरकरके, जगके जीव रागीको ॥२॥ त्रिज० ।
अचंभा जानकर ऐसा, आया हूं शरण पानेको ।
भ्रमा मैं काल नादीसे, न सुख पाया कहीं मैंने ॥३॥ त्रिज० ।
कीजिये नाथ अब ऐसा, नहीं ये दुःख पाऊं मैं ।
मेरे य साथ लागे हैं कुत्सित भाव प्रमादादि ॥४॥ त्रिज० ।
जिनके भेद प्रभेदों की, साढे सैंतीस हज्जारा ।
गिनायी गिनति आगममें, सुनाऊं मैं उन्हें सारा ॥५॥ त्रिज० ।
विकथा चार कहलातीं, कषाय भी चार होते हैं ।
इंद्री पांच निद्रा स्नेह, मिल सब पंद्रह होते हैं ॥६॥ त्रिज० ।
उत्तर भेद विकथाके, सबै पच्चीस होते हैं ।
सोलह नो नौ मिलकरके, कषाय पच्चीस होते हैं ॥७॥ त्रिज० ।
अनिंद्रिय इंद्रि मिलकरके, इंद्रियां छह होती हैं ।

निद्रा स्त्यान गृद्धादी, निद्रा पांच होती हैं ॥८॥ त्रिज० ।
प्रणय स्नेह ये दो हैं, गुणें परस्पर इन सबको ।
सहस्र सैंतीस साढ़े हों, नशाओ हे प्रभो ! इनको ॥९॥ त्रिज० ।
इनके हि नाश होनेसे, मिलै निजरूप आतमका ।
"श्री" को अब विमल करके, नाम सार्थक करो निजका ॥१०॥

ओं ह्रीं श्री विमल नाथ जिनेद्राय पूर्णार्घं निर्वपामि स्वाहा ।



अथ चतुर्दश तीर्थंकर अनंतनाथ पूजा ॥१४॥

स्थापना ।

अयोध्या है हुई धन्या, जिन्होंके जन्म होनेसे ।
सूना स्वर्ग हूआ है, पुष्पोत्तरसे आने से ॥

प्रफुल्लित भव्य सुमन हूये, अनंतजिनसूर्य उगनेसे ।
अब अवतरण यहां कीजे, अनंतासुख मिलै जिससे ॥१॥

ओं ह्रीं श्री अनंतनाथ जिनेंद्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अथाष्टक ।

चाल आंचली मिश्रित जोगीरासा या होली

गंगा आदिक का जल लेकर, सुवर्ण कलश भराई ।
धार देय कर श्री जिन पूजो, जन्म जरा मृति जाई ॥
अनंत जिन पूजो जी भाई । भला जिन पूजो जी भाई ॥
दुर्लभ नर भव पाइके, जिन पूजो जी भाई ।

ओं ह्रीं श्री अनंतनाथ जिनेंद्राय जन्म जरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामि स्वाहा ॥१॥

सुरभित चंदन केशर लेकर, एला संग घिसाई ।
श्री जिनवरके चरण चर्चकर, भवका ताप नशाई ॥

अनंत जिन० । भला० । दुर्लभ० । चंदनं ॥२॥

दीरघ अत्तत अत्तत लेकर, कंचन थाल भराई ।
पुंज करत ही श्री जिनके ढिंग, अत्तत पदको पाई ॥
अनंत जिनपूजो जो भाई । भला० । दुर्लभ० । अत्ततं ॥२॥

तरह तरहके फूल लेय कर, माला गूंथ बनाई ।
श्री जिन चरण पूजकर भाई, काम उपाधि नशाई ॥
अनंत० । भला जिन० । दुर्लभ नरभव० । पुष्पम् ॥४॥

ताजे खाजे खुरमा पेडा बरफी आदि बनाई ।
नेवज याविधि चरण चढाये, त्तुधकी व्याधि नशाई ॥
अनंत जिन० । भला जिन० । दुर्लभ नरभव० ॥ नैवेद्यं ॥५।

घृत करपूर रतनमणि दीपक, भांति भांतिका लाई ।
जगमग जगमग जोति जगाये, पूर्णज्ञान जगाई ॥

अनंत जिन० । भला जिन० । दुर्लभ नर०। दीपम् ॥६॥

धूप दशांगी पावक संगी, करके धूम उडाई ।
कर्मकाठ सब राख बनेंगे, इनका नाम नशाई ॥
अनंत जिन० । भला० । दुर्लभ नर० । धूपं ॥७॥

पक्क सरस ताजे फल बहुबिधि, घ्राण चित्त सुखदाई ।
श्री जिनचरण समीप राखकर, शिवपद तुरत उपाई ॥
अनंत जिन० । भला जिन० । दुर्लभ० । फलं ॥

आठ द्रव्य ले अर्घ मनोहर, कंचन थाल भराई ।
महानर्घ्य पद पाने कारण, श्री जिनचरण चढाई ॥
अनंत जिन० । भला जिन० । दुर्लभ नर० । अर्घं ।

अथ पंचकल्याणक अर्घ । दोहा ।

अनंत आये गर्भमें, अयोध्या हुई है धन्य ।
कार्तिक वदि पडिवा दिवस, बरसे रत्न हिरन्य ॥

ओं ह्रीं कार्तिक कृष्ण प्रतिपदायां गर्भ कल्याण मंडिताय श्रीअनंतनाथ जिनेन्द्रायार्घं॥१॥

जेठ कृष्ण की द्वादशी, जन्मे अनंत जिनेंद्र ।
तीन लोक हर्षित हुए, सुर खग नाग नरेंद्र ॥२॥

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्ण द्वादश्यां जन्म कल्याणक मंडिताय श्री अनंत नाथ जिनेन्द्रायार्घंनि० ॥२॥

काय भोग संसारका, लखि स्वरूप निस्सार ।
जेठवदी बारस दिवस, लिया अनंत तपसार ॥३॥

ओं ह्रीं ज्येष्ठ कृष्ण द्वादश्यां दीक्षाकल्याणकमंडिताय श्रीअनंतनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि०॥३॥

अनंतनाथ मुनि 'जिन' भए, मावस चैत मझार ।
समवसरण में राजकर, कीया धर्म प्रचार ॥४॥

ओंह्रीं चैत कृष्ण अमावस्यायां ज्ञान कल्याणक मंडिताय श्री अनंतनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि० ॥४॥

समेद शिखरके शीशपर, करके काय निरोध ।
चैत अमावस शिव गए, अनंतनाथ जिनबोध ॥५॥

ओं ह्रीं चैत्र कृष्ण अमावास्यां मोक्ष मंगल मंडिताय श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि०

जयमाला । दोहा ।

अनंत गुणकी राशि तुम, हे अनंत जिननाथ ।
अनंत चतुष्टय पाय कर, हुये अनंत शिवनाथ ॥१॥
अनंत जितनी द्रव्य हैं, उन सबका भी अंत ।
दिखा आपके ज्ञानमें, ज्ञान अनंतानंत ॥२॥

चतुर्दश तीर्थंकर जिन देव, लिया जब जन्म अयोध्य सुदेव ।
कुवेर करी तब रत्न सुवृष्टि, हुई सब भांति सुखी जगसृष्टि॥३॥
जहां दुख ही दुख है सर्वकाल, भया नरकों सुख भी उस काल ।
लगे करने ध्वनि शंख सुजोर, हुआ भवनेशगृहे अतिशोर ॥४॥
पिटे विन व्यंतर लोक अवास, हुई पटहाध्वनि व्याप्त अकास ।
हुआ हरिनाद सु जोतिषलोक, वजे घनघंट विमानिक ओक ॥५॥
कंपे सव आसन मौलि शिरस्थ, हुए तब देव सभी भयग्रस्त ।

लगा अवधी समझा जिन जन्म, भये अति हर्षित भव्य सुजन्म ॥६॥
सुधर्म सभापतिने सबदेव, बुलाय कही उत्साह समेत।
हुआ जिन-जन्म अयोध्य मंझार, चलो करने उनका सत्कार ॥७॥
सजाय इरावत उत्तम रीति, चले सब देव लिये हृदि प्रीति।
शची जिन-बालक गोद उठाय, दिया निज ईश्वरके कर जाय ॥८॥
गये तब मेरु महीधर शीश, किया अभिषेक सभक्ति शचीश।
पिता घर आय किया बहु नाच, नचा प्रथमेंद्र सुतांडव नाच ॥९॥
हुआ जनमोत्सव अद्भुत रीति, लिया सब पुण्य महागुण प्रीति।
"सिरो" ब्रमचारि कहै करजोर, करो प्रभुजी मुझको निज ओर ॥१०॥

दोहा—अनंत गुणके नाथ तुम, अनंत जीव हितकार।
दीजे मुझे अनंत गुण, हे अनंत! जितमार ॥

ओं ह्रीं श्री अनंतनाथ जिनेंद्राय अर्घं निर्वपामि स्वाहा। पूर्णार्घं।

अथ पंद्रहवें तीर्थंकर श्री धर्मनाथ जिनपूजा ॥१५॥

स्थापना।

धर्मनाथ जिनदेव! रत्न संचयपुर आये।
भानुनृपति पटरानि, सुव्रतापुत्र कहाये॥
महा कल्याणक पांच, पाय, निजमग्न हुए हैं।
हम भी पावें इसीलिये अवतरण किये हैं॥

ओं ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेंद्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक। गीतिका छंद

शुभ स्वच्छ शीतल नीर लेकर, कनक कलशे भर लिये।
जिनपाद आगें धार देकर, जनि जरा मृति हरि लिये॥

जितराग मोह विकार, सर्वंग, धर्मके दृष्टा हुए।
धर्मनाथ सुदेव जिनवरको जजे सिद्ध काजा हुए ॥१॥
ओं ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेंद्राय जन्म जरामृति विनाशनाय जलं निर्वपामि स्वाहा।

चंदन कपूर मिलाय केसर साथमें घिस लीजिये।
जिननाथके पद कमल पूजो, ताप हर सुख लीजिये॥
जितराग मोह०। धर्मनाथ०। चंदनं ॥२॥

शुभ शालि व्रीहि सुगंध अक्षत, अक्ष चित्त लुभावने।
जिनपाद आगे पुंज धरके, अक्षते पद पावने।
जितराग मोह०। धर्मनाथ सुदेव०। अक्षतं।

पारिजात नमेरु सुंदर सुरभि पुष्प सुहावने।
जिन चरण पास चढाय करके, काम रोग नशावने॥
जितराग०। धर्मनाथ०। पुष्पं।

बहुभांति जाति बनाय चरु वर, सरस मिष्ट सुहावनी ।
थाल भरके जिन अग्र धारैं, क्षुधा रोग नशावनी ॥
जितराग० । धर्मनाथ० । नैवेद्यं ।

प्रजाल उज्ज्वल दीप घृतके, वा मणी रत्नानिके ।
जगाय जिनवर गेह जोती, ज्ञान पूर्ण सुपायके ॥
जितराग० । धर्मनाथ० । दीपं ।

सुगंध नाना द्रव्य कूटे, धूप सुरभित हो गई ।
वह खेय पावक मध्य जिनगृह, कर्मकी राखी हुई ॥
जितराग० । धर्मनाथ० । धूपं ।

अनार केला आदि बहुविध, पके सरस फल लीजिये ।
बहु थाल भरकर भेंट करके, मोक्ष फलको लीजिये ॥
जितराग मोह० । धर्मनाथ० । फलं ।

अनर्घ पदकी प्राप्ति कारण, द्रव्य आठो ले लिये।
"श्री ब्रह्म" जिनेंद्र चरण आगै धारि सब सुख लेलिये ॥
जितराग० । धर्मनाथ० । अर्घं।

पंचकल्याणक अर्घ। दोहा।

धर्मनाथ जब गर्भ में, आये स्वर्ग को त्याग।
शुक्ल वैशाख अष्टमी, जगमें हुई बडभाग ॥१॥
ओं ह्रीं वैशाख शुक्ल अष्टम्यां गर्भ कल्याणक मंडिताय धर्मनाथजिनेन्द्रायार्घं नि०
धर्मनाथ जिन देवने, रत्न पुरीमें आय।
जन्म माघ सुदि त्रयोदशी, लिया सर्व सुखदाय ॥२॥
ओं ह्रीं माघ शुक्ल त्रयोदश्याँ जन्म कल्याण मंडिताय श्री धर्मनाथ जिनेन्द्रायार्घम् नि०।
धर्मनाथ दीक्षित हुए, लख संसार की नीति।
नाशन कर्म समूह को, जन्म दिवसकी तीथि ॥३॥
ओं ह्रीं माघ शुक्ल त्रयोदश्यां दीक्षा कल्याणक मंडिताय श्री धर्मनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि०

पूरणमासी पौषको, धर्मनाथ जिनदेव ।
हुए घातिया घातकर, देव करैं हैं सेव ॥४॥

ओं ह्रीं पौष पूर्णमास्यां ज्ञान कल्याणक मंडिताय श्री धर्मनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि०

अघाति बचे जो कर्म थे, नाशे धर्म जिनेश ।
जेठ चतुर्थी शुक्ल को, मुक्त हुए परमेश ॥५॥

ओं ह्रीं ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्थ्यां मोक्ष कल्याणक मंडिताय श्री धर्मनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि० ।

जयमाल । चाल 'अहो जगतगुरु देव'की ।

धर्मनाथ जिनराय, सरवारथ सिध तैं आये ।
करो सर्वारथ सिद्ध, तुमारे ढिंग हम आये ॥
किया धर्म उपदेश, लगे सब धर्महि जीवा ।
किया आत्म उद्धार, रहे शिवमांहि सदीवा ॥१॥
अब भो आपकी वाणि, सुनकर जीव घनेरे ।
लगते शिवमग मांहि, वचन नहीं जात कहेरे ॥

श्रेष्ठ क्षमा परभाव, पर-अपराध अनन्ता ।
क्षमा करत यह जीव, पाता सौख्य अनन्ता ॥२॥
उत्तम मार्दव जोर, चित्तमें मृदुता धारै ।
पूरव परियाय विचार, मानका मूल उखारै ॥
उत्तम आर्जव पाय, ऋजुता ऐसी धारै ।
करके एकीकरण, मन वच काय संभारै ॥३॥
उत्तम शौच प्रसाद, परसे ममत्व निवारै ।
बाहिर शुचिता धारि, भीतर लोभ को मारै ॥
उत्तम सत्य प्रभाव, वचन सुखदायक बोलै ।
संयम के दो भेद, प्राणि इन्द्रिय को तोलै ॥४॥
जीवन की छह काय, सब पर करुणा धारै ।
स्पर्शन रसना घ्राण, आंख कान मद मारै ॥

बारह तपके भेद, अंतर बाहिर जे हैं।
तिन सबको प्रतिपाल, स्व आतमको सुख लेहैं ॥५॥
त्याग चार परकार, औषध अभय अहारा।
ज्ञान दान को देय, आत्म परका हितधारा ॥
धर आकिंचन भाव; मेरा कुछ भी नाहीं।
परमें करना मोह, व्यर्थ आपत्ति लहाही ॥६॥
ब्रह्मचर्य है श्रेष्ठ सकल धरम के माहीं।
ब्रह्म कहावै 'स्व' आतममें चर्या–लीन रहाहो ॥
एसैं धर्म प्रभाव, जीव शाश्वत सुख पावै।
धर्मनाथ जिन राज–की महिमा कैसे गावै ॥७॥

दोहा—धर्म नाथ जी तीर्थंकर, तुम जग कीया त्राण ॥८॥
धर्ममय "श्री" को कीजिये, धार्मिक जनके प्राण।

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामि स्वाहा। पूर्णार्घम्।

अथ सोलहवे तीर्थंकर श्रीशांतिनाथ जिनपूजा ॥१६॥

शांतिनाथ जिनराज, जगतको सुखके दाता ।
हस्तिनापुरमें जन्म पाय, हूए चक्री ख्याता ॥
बारहवें हूए काम, कामना पूरण कर्ता ।
अत्र विराजो आय, होऊ कर्मनिके हर्ता ॥१॥

ओं ह्रीं श्री शांति जिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर संवौषट् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

उत्तम जल सुमंगाय, कंचन भारि भरो ।
श्री शांतिनाथ पदधार, जन्म जराको हरो ।
शांतिकार जिन शांति, सब विधि शांति करो ।

शांत होय सब पाप, शम सुख उदधि भरो ॥१॥

ओं ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामि स्वाहा

चंदन उत्कृष्ट मंगाय, केसर संग घसो ।

शांतिनाथ पद चर्च, भव का ताप हरो ॥

शांतिकार जिन॰ शांत होय॰ चंदनम् ॥२॥

अक्षत शुभ्र मंगाय, कंचन थाल भरो ।

शांतिनाथ पदधार, अक्षय पदको वरो ॥

शांतिकार जिन॰ शांत होय॰ अक्षतम् ॥३॥

चंपा आदि अनेक, कामके बाण कहे ।

शांति चरणको पूज, विजयी काम दहे ॥

शांतिकार जिन॰ शांत होय॰ पुष्पम्॰ ॥४॥

मोदक आदि अनेक, व्यंजन क्षुधहारी ।

जिन चरणों में भेंट किये होवे क्षुधहारी ॥

शांतिकार जिन० शांत होय० नैवेद्यम्०॥५॥

दीपक ज्योति जगाय, पूजो जिन चरणा।
ज्ञानजोति जगजाय, पावो शिव शरणा॥

शांतिकार जिन० शांत होय० दीपम्०॥६॥

दश अंगी धूप मंगाय, खेओ जिन आगै।
कर्म भस्म हो जाय, शिवका सुख जागै॥

शांतिकार जिन० शांत होय० धूपम्०॥७॥

घ्राण चत्तु सुखकार, फल बहु जाति कहे।
शांति चरण रखि पास, शांति अनन्त लहे॥

शांतिकार जिन० शांत होय० फलम्०॥८॥

वसुविधि द्रव्य मिलाय, अर्घ करो सुखदा।
आरति शांति उतार, पाओ अमर पदा॥

शांतिकार जिन० शांत होय० अर्घं०॥९॥

पंचकल्याणक अर्घ । आर्या ।

सप्तमी भादव वदिको, छोड़ा अहमिंद्र पद प्रभुने ।
माता एरा गर्भ, पवित्र शांति जिन कीना ॥१॥

ओं ह्रीं भाद्रपदकृष्णासप्तम्यां गर्भ कल्याणक मंडिताय श्री शांतिनाथ जिनेन्द्रायार्घं ॥१॥

सब जगको सुखदाई, जन्मे शांतिनाथ भगवाना ।
जेठ की चौदश कृष्णा, हरि अभिषेक मेरुपर ठाना ॥२॥

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यां जन्म कल्याण मंडिताय शांतिनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि ० ॥२॥

द्वेष राग को जाना, दुखदायक संग चौबीसो ।
छोडे शांति जिनेश्वर, ज्येष्ठ की कृष्ण चौदशको ॥३॥

ओं ह्रीं ज्येष्ठ कृष्णाचतुर्दश्यां दीक्षा कल्याणक मंडिताय श्रीशांतिनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि०॥३॥

पौषकी सुदि दशमी को, केवलज्ञान शांति जिन पाया ।
समवसरणमें राजे, जीवोंको धर्म उपदेशा ॥४॥

ओं ह्रीं पौष शुक्लदशम्यां केवलज्ञानमंडिताय श्री शांतिनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि ० ॥४॥

जेठ की वदि चौदश को, नाशा सर्व कर्म सम्बन्ध ।
हूए लोक अधीश्वर, अमूर्त अनन्त गुण स्वामी ॥५॥

ओं ह्रीं ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दश्यां मोक्ष मंगल मण्डिताय श्री शांतिनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि०

जयमाला । त्रोटक छंद

जगमें पडती विपदा जबहो, घबडाकर जोव लहै तबहो ।
शरणा जिन पाद पयोजनकी, नहिं भक्ति करे विन स्वारथकी ॥१॥
तपती जब भास्कर भानु मही, लगती जलराशि भली तबही ।
शशिभा लगती सुखदा तबही, तरु छांह टटोलत है तबही ॥२॥
दशता जब क्रुद्ध अही तनको, विष दाह करे सगरे तनको ।
उसका शम भेषज मंत्र करै, अथवा बरुआ हवनादि करै ॥३॥
जडसे नाशि जाय तथा विपदा, मनुके मनकी तनकी दुखदा ।
जिनभक्ति करैं वचसे मनसे, उनकी उनकी उनकी झटसे ॥४॥
निशि ज्यों हर ले बल आंखनका, रवि नाश करे उसके तमका ।

उदयागत कर्म असातनका, तुम भक्ति हरे दुख त्यों जनका ॥५॥
कनकाचलसी छवि पीत अती, तनु देखत मोहत होत रती।
बहु भांति महागुण धारक हे, तुम शांति जिनेश यतीश कहे ॥६॥
तुम पादपयोजनके गुणकी, स्तुति की सरिता यदि ना बहती।
यमकी जलती इस पावक की, नहि दाह कभी जियकी बुझती ॥७॥
इस काल महा बलिने जगके, सब जीव करे वशमें निजके।
जगमें न कहीं थल है वह जो, इसका न जहां बल चालत हो ॥८॥
यह जीव मरे जनमें जगमें, इस काल बलीकृत संसृति में।
पर शांति जिनेश्वर भक्ति किये, नशि जाय बली क्षण एकहि में॥९॥
इतनी दृढता उर धार सही, करिये जिनभक्ति सदा मनही।
अब 'श्री' विनती करता प्रभुजी, हरिये मम कमनका बलजी ॥१०॥
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घं निर्वपामि स्वाहा।

अथ सप्तदश तीर्थंकर श्री कुन्थुनाथ जिनपूजा ॥१७॥

स्थापना ।

दोहा—सूर्यराज राजा तनुज, कुन्थुनाथ जिनराज ।
चक्री हथनापुर हुये, मैं पूजों निजकाज ॥१॥

ओंह्रीं श्री कुंथुनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर २ संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः; अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक ।

नीर सुस्वच्छ मंगाय, शीतल सुखकारी ।
तुम चरण जजों जिनराज, पाऊं सुख भारी ॥
श्री कुन्थुनाथ जिनदेव, कुन्थुन रखवारे ।
मैं करूं तिहारो सेव, शिवसुख हो म्हारे ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथ जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामि स्वाहा ।

केसर घनसार कपूर, एला संग लही ।

कुन्थुनाथ जिन पूज, पाओ शिव सुमही ॥
श्री कुन्थुनाथ० मैं करूं ति० चंदनम् ॥२॥
तंदुल चन्द्र समान, सित हैं सुखकारी ।
भक्तिभाव मनधार, पूजूं चरणारी ॥
श्री कुन्थुनाथ० मैं करूं ति० अक्षतान् ॥३॥
कुसुम अनेक प्रकार, सुरभित दश दिशमें ।
अर्चन कर जिनपाद, काम करो वशमें ॥
श्री कुन्थुनाथ० मैं करूं ति० पुष्पम् ॥४॥
नेवज बहुत प्रकार, ताजी मिष्ट महा ।
पूजत श्री जिनपाद, क्षुधका रोग दहा ॥
श्री कुन्थुनाथ० मैं करूं ति० नैवेद्यम् ॥५॥
दीपक घृत के सार, लेकर जिनआगे ।

आर्ति उतारे जाय, ज्ञान दीप जागै ॥

श्री कुन्थुनाथ० मैं करूं ति० दीपम् ॥६॥

चंदन चूर कपूर, धूप सुगन्ध करे ।
खेवत श्री जिनभूप, अठों कर्म जरे ॥

श्री कुन्थुनाथ० मैं करूं ति० धूपम् ॥७॥

केला आम अनार, आदिक सरस पके ।
फल पूजे जिनराज, शिवसुख मध्य छके ॥

श्री कुन्थुनाथ० मैं करूं ति० फलम् ॥८॥

जल आदिक द्रव्य सुले, अर्घ बनाय धरे ।
जिनवर सेव करेय, जिनसम होत खरे ॥

श्री कुन्थुनाथ० मैं करूं ति० अर्घम् ॥९॥

पंचकल्याणक अर्घ । आर्या ।

श्रावण वदि दशमी को, सर्वार्थ विमान त्याग के आये ।

श्रीमति माता गर्भ, श्री कुन्थुनाथ भगवाना ॥

ओं ह्रीं श्रावेण कृष्ण दशम्यां गर्भ कल्याणक मंडिताय श्री कुन्थुनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि ० ॥१॥

हथिनापुरकी शोभा, वैशाख सुदी प्रतिपद को ।
की देवोंने अद्भुत, श्री कुन्थुनाथ जन्मेसे ॥

ओं ह्रीं वैशाख शुक्ल प्रतिपदायां जन्म कल्याणक मंडिताय श्री कुन्थुनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि ०

जन्म तिथीमें दीक्षा, ली श्री कुन्थुनाथ भगवाना ।
छोडे चौदह रत्न, आदि विभूति चक्रवर्ती की ॥

ओं ह्रीं वैशाख शुक्ल प्रतिपदायां दीक्षा कल्याणक मंडिताय श्री कुन्थुनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि ० ॥३॥

घाते चारो घाती, पाया वर केवल ज्ञान ।
चैत सुदी तृतीया को श्री कुन्थुनाथ जिनजीने ॥

ओं ह्रीं चैत्र शुक्ल तृतीयायां ज्ञान कल्याणक मंडिताय श्री कुन्थुनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि ० ॥४॥

वैशाख सुदी एकमको, काटा सर्व कर्म सम्बन्ध ।
सम्मेदाचल ऊपर, पाई मुक्ति कुन्थु प्रभुजीने ॥

ओंह्रीं वैशाख शुक्ल प्रतिपदायां मोक्ष कल्याणक मंडिताय श्री कुन्थुनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि० ॥५॥

जयमाला। त्रोटक छंद।

त्रयलोक अलोक सभी थलमें, तुम विस्तृत ज्ञानमयी सबमें।
मणि रत्न जडी जिसकी छड है, वह तीन सुछत्र फिरैं सिर हैं ॥१॥
तुम पाद पयोज धरे मनसे, गुणगान करे अथवा वचसे।
भग आमय जाय सदा उससे, भग जाय यथा गज केहरिसे ॥२॥
सुरनारि जहां रमतीं मनसे, उस मेरु महीधरके मणि हे।
उगते रविकी द्युतिको हरती, तनुभा वलयाकृति धारक हे ॥३॥
उपमा जिसकी मिलती न कहीं, जिस बाधक कोइ न होय कभी।
तुलना जिसकी न विचार सकैं, सुख शाश्वतको तुम भक्त भजैं ॥४॥
रविकी किरनें न खिलैं जबलों, कजकी कलियां न खिलें तबलों।
तुम भक्ति धरैं न हृदें जबलों, सुख पावत जीव नहीं तबलों ॥५॥
जिनने तुम भक्ति धरी मनमें, उनकी मन-चीति भई क्षणमें।

तब "श्री" पर भी करुणा करिये, सद् दृष्टि बना भवको हरिये ॥६॥

सोरठा।

कुन्थुनाथ जिनदेव ! भक्ति तिहारीसे तिरे।
भव्य असंख्य स्वमेव, उनसा मुझको कीजिये ॥७॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथ जिनेन्द्रायार्घं निर्वपामि स्वाहा।

अथ अष्टादश तीर्थंकर अरनाथ जिनपूजा ॥१८॥

स्थापना।

देवेन्द्र नागेन्द्र नरेन्द्र पूज्य, चक्री पदे शोभित देव देव।
हे हस्तिनाधीश जिनेन्द्र चन्द्र ! पूजूं तिहारे अर ! पादपद्म ॥

ॐ ह्रीं श्री अरनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अथाष्टक।

क्षीराब्धिसा मिष्ट भराय नीर, झारी नलीसे चरण प्रक्षाले।

नाशो जिनेन्द्रार जरादि दुःख, माथा नमाता बहु भक्ति साथ ॥१॥
ॐ ह्रीं श्री अरनाथ जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामि स्वाहा
काश्मीरजा गंध अनिंद्य लीना, एला मिलाया जल साथ पीसा ।
देवेन्द्र नागेन्द्र नरेन्द्र बन्ध, पूजे जिनेन्द्रार पदारविंद । चंदनम् ॥
लंबे अखण्डाक्षत शुभ्र लेके, पुंजी करे अग्र जिनेन्द्र पाद ।
देवेन्द्र नागेन्द्र नरेन्द्र पूज्य, पूजे जिनेन्द्रार पदारविंद । अक्षतम् ॥
चंपा चमेली बहु पुष्प लीने, कामी जनोंके मन मोहते जो ।
देवेन्द्र नागेन्द्र नरेन्द्र पूज्य, पूजे जिनेन्द्रार पदारविंद । पुष्पम् ॥
नैवेद्य ताजा अति मिष्ट लाया, भेंटे जिनेन्द्रार भगी क्षुधा है ।
देवेन्द्र नागेन्द्र नरेन्द्र पूज्य, पूजे जिनेन्द्रार पदारविंद । नैवेद्यम् ॥
दीये जलाये घृतके मणीके, पूजे जिनेन्द्रार पदारविंद ।
अज्ञान नाशा सद ज्ञान पाया, मुक्ती मिली घातक कर्मसे है । दीपम् ॥
अग्नी मंगाई बहु धूप खेई, धूंआ उडा कर्म उडे हि मानो ।

देवेन्द्र नागेन्द्र नरेन्द्र पूज्य, पूजे जिनेन्द्रार पदारविंद । धूपम् ॥
बादाम पूगी कदली अनार, दाखें छुआरा फल थाल लोने ।
देवेन्द्र नागेन्द्र नरेन्द्र पूज्य, पूजे जिनेन्द्रार पदारविंद । फलम् ॥
द्रव्याष्ट ले अर्घ्य बनाय अर्घ, पावे अनर्घाच्युत स्वीय रूप ।
देवेन्द्र नागेन्द्र नरेन्द्र पूज्य, पूजे जिनेन्द्रार पदारविंद । अर्घम् ॥

पंच कल्याणक अर्घ । आर्या छंद ।

भूप सुदर्शन महिषी, मित्रा देवि गर्भ में आये ।
फागुन सुदि तृतीयाको, श्री अरनाथ जिनभावो ॥

ओं ह्रीं फाल्गुन शुक्ल तृतीयायां गर्भ कल्याणक मंडिताय श्री अरनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि० ॥१॥

मार्गशीर्ष चतुर्दशि, अरनाथ जन्म जिन पाया ।
हस्तिनापुर के चक्री, अभिषेक हूआ मेरू पै ॥

ओं ह्रीं मार्गशीर्ष चतुदर्श्यां जन्म कल्याणक मंडिताय श्रीअरनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि० ॥२॥

श्री अरनाथ जिनेश्वर, विरक्त हुए संसार शरीर भोगोंसे ।

मगसिर सुदि एकमको, दीक्षा ले आत्म हित कीना ॥
ओं ह्रीं मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदायां दीक्षा कल्याणक मंडिताय श्री अरनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि० ॥३॥
कार्तिक कृष्णा द्वादशि, घातें चार घातिया कर्म ।
केवल ज्ञान उपाया अरजिन सद्धर्म उपदेशा ॥
ओं ह्रीं कार्तिक कृष्ण द्वादश्यां ज्ञान कल्याणक मंडिताय श्री अरनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि० ॥४॥
अमावस चैत वदो को, तोडा सर्व कर्म सम्बन्ध ।
हुए अनन्त गुणाधिप, अरजिन मुक्ति पा करके ॥
ओं ह्रीं चैत्र कृष्णामावस्यायां मोक्ष कल्याणक मंडिताय श्री अरनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि० ॥५॥

जयमाला ।

अनन्तगुणे गुण हैं तुम ज्ञान, नहीं कर शब्द सकैं उनगान ।
असंभव हो स्तुति यों जिन सार्थ ! करें स्तुति तोभि लगे हम स्वार्थ ॥
गिना तृणसा तुमने सम्राज्य, दिया तज चक्र विभूषित राज्य ।
किये निज चक्षु हजार सुरेश, छका नहिं देखत आपसुवेश ॥

सुदृष्टि सुबोध चरित्र अवस्त्र, लिये निज हाथ सुतीक्ष्ण अस्त्र।
रिपू वह मोह जया तुम खेत, कषाय समूह जिसे जय देत ॥
त्रिलोकजयी स्मरका कुघमण्ड, किया तुमने उसका शतखण्ड।
हुआ उसका तब नाश समूल, अनंग बना फिरता निज भूल ॥
सदा दुख देत बढै सबकाल, सभी डुबते मरते बिन काल।
नदी तिसना इस भांति कराल, तरी तुम बोध-तरी चढ हाल ॥
मरैं जनमैं जिसके वश जीव, जया तुमने वह काल अजीव।
अनन्त गुण अज राजित देव, सदा समभाव विराजित देव ॥
न आयुध भूषण वस्त्र विरूप, दया दम बोधमयी तुम रूप।
कहै जगको तुम दोष विहीन, हुए निज आतम में लवलीन ॥
तन द्युति बाह्य किया तम नाश, स्व अन्तरका तम आत्म प्रकाश।
हुए अखिलज्ञ निजात्म सुभाव, समोशरणादि विभूति प्रभाव ॥

हुआ न सचेतन कौन विनीत, सुतृप्त न दिव्य वचोमृत पीत ।
अनन्त गुणात्मक वस्तु स्वरूप, कहा तुमने नय स्यात्पद रूप ॥

दोहा—हे अरनाथ जिनेन्द्र तुम, रक्षक सबके देव ।
ब्रह्म "श्री" को तारिये, रखिये अपनी सेव ॥१०॥

इति श्री अरनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामि स्वाहा

अथ एकोनविंशतितम श्रीमल्लिनाथ जिनपूजा ॥१९॥

तनका रूप असार मलिन सब जाना, की नहि नारि स्विकार हेय सब जाना ।
ऐसे मल्लि जिनेन्द्र बाल ब्रह्मचारी, आय विराजो पूजा करूं तिहारी ॥

ओं ह्रीं श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक ।

लीया शीतलवारि झारिमें भरिके, पूजे पाद जिनेन्द्र भक्ति मन धरिके ।

हैं मल्लि जिनेन्द्र बाल ब्रह्मचारी, प्रजावती के पुत्र, मुक्ति अधिकारा ॥१॥
ओं ह्रीं श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामि स्वाहा ॥१॥

चंदन केसर लाय, कटोरी भरके, चर्चें चरण जिनेन्द्र गुणा गाकरिके।
हैं मल्लि० प्रजावती चन्दनम् ॥२॥

अक्षत लीने थाल, पुंज बहु करिके, पूजे पाद जिनेन्द्र सेव अतिकरिके।
हैं मल्लि० प्रजावती० अक्षतम् ॥३॥

चंपा आदि मंगाय, कुसुम बहु नीके, धारे पाद जिनेन्द्र कामविजयीके।
हैं मल्लि० प्रजावती० पुष्पम् ॥४॥

मोदक खाजे आदि चारु चरु लेके, पूजे पाद जिनेन्द्र भगे क्षुध डरके।
हैं मल्लि० प्रजावती० नैवेद्यम् ॥५॥

रतनमयी वा घृतके दीप जलाके, पूजे पाद जिनेन्द्र कुबोध भगाके ॥
हैं मल्लि० प्रजावती० दीपम् ॥६॥

बहु द्रव्य सुगंधितकी धूप बनाई, पूजे पाद जिनेन्द्र कर्म जल जाई ॥

हैं मल्लि० प्रजावती० धूपम् ॥७॥

आम छुआरा दाख आदि फल लीने, पूजे पाद जिनेन्द्र मोक्षफल लीने ॥

हैं मल्लि० प्रजावती० फलम् ॥८॥

द्रव्य आठका अर्घ सुअर्घ बनाके, पूजे पाद जिनेंद्र भक्ति मन लाके ॥

हैं मल्लि० प्रजावती अर्घम् ॥९॥

पंच कल्याणक अर्घ । आर्या छंद ।

चैतसुदी एकमको, सुरलोकसे मध्यलोकमें आये ।
कोनी प्रजावति माता, श्री मल्लि गर्भमें आके ॥१॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्ल प्रतिपदायां गर्भ कल्याणक मंडिताय श्री मल्लि नाथ जिनेंद्रायार्घं नि० ॥१॥

जन्मे मल्लि जिनेंद्र, मगसिर सुदि एक दशमी को ।
मिथिलापुरमें आके, बहु भक्ति शचीशने कीनी ॥२॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्ष शुक्ल एकादश्यां जन्म कल्याणक मंडिताय श्री मल्लि नाथ जिनेंद्रायार्घं नि० ॥२॥

जगका रूप घिनावन, देख विवाह नहिं कीना ।
मगसिर सुदि तेरसको, मल्लि जिनमुनि बने वनमें ॥३॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदश्यां दीक्षा कल्याणक मंडिताय श्री मल्लि जिनेंद्रायार्घं नि० ॥३॥

द्वितीया पौष वदी की, घाते चार घातिया मलिने ।
केवल ज्ञान सुशोभित, हो उपदेश दिया भव्योंको ॥४॥

ॐ ह्रीं श्री पौष कृष्ण द्वितीयायां केवल ज्ञान मंडिताय श्री मल्लिनाथ जिनेंद्रायार्घं ॥४॥

लोक अग्रके वासो, मल्लि बने मोक्षके स्वामी ।
फागुन सुदी पंचमिको, श्री सम्मेद शिखर जाकरके ॥५॥

ॐ ह्रीं फाल्गुन शुक्ल पंचम्यां मोक्ष कल्याणक मंडिताय श्री मल्लि जिनेंद्रायार्घं नि० ॥५॥

जयमाला । दोहा ।

अपराजित को छोडकर मिथिलापुर किय वास ।
कुम्भराजके लाल तुम, दीजै ज्ञान प्रकाश ॥१॥

मोतिया दाम छंद (बारह वर्ण)

चला जब बीतत काल सराग, हुआ कुछ कारण देख विराग ।
लगे तब चिंतन में निज रूप, डरे जगका लख अन्तर रूप ॥२॥
य काल अनादि गया अब बीत, नहीं निज रूप लखा अतिभोत ।
धरे बहु योनि शरीर अनन्त, हुआ न अभी तक इसका अंत ॥३॥
मनुष्य शरीर बिना यह जीव, महा तप धारि सके न कदीव ।
बिना तप नष्ट न होत शरीर, अतः तप धारि बनूं अशरीर ॥४॥
जिनेन्द्र विरक्त हुए यह जान, नियोगि लुकांतिक देव सु आन ।
किया अनुमोद प्रशस महान, गये अपने अपने सब थान ॥५॥
हुआ तब शोर जुडे सब इन्द्र, जुडे खग ईश महेश नरेन्द्र ।
रची शिविका अति सुन्दर रूप, बिराज चले उसमें जिनभूप ॥६॥
धरी कुछ दूर नराधिप लोक, धरी कुछ दूर खगाधिप लोक ।
धरी फिर देव गये वन मध्य, जहां जिनराज तजे सब वध्य ॥७॥

महाव्रत आदि अठाइस भेद, धरे मुनिके गुण उत्तर भेद ।
प्रमाद करे सब नाश समूल, धरे तव शुक्ल सुध्यान सुथूल ॥८॥
किया तब घातिय कर्म विनाश, लिया सद केवल ज्ञानप्रकाश।
दिया उपदेश महा हितकार, सुना जिनने भव हो गये पार ॥९॥

सोरठा।

मल्लिनाथ जिनदेव, मुझको भवसे तारिये ।
कहता 'श्री' ब्रह्म सेव, आठो अंग नमायके ॥

इति श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामि स्वाहा ॥ १९ ॥



श्री विंशतितम मुनिसुव्रत नाथ जिन पूजा ॥२०॥

स्थापना ।

दोहा— कच्छप जिनके पग लसै, विंशतितम जिननाथ ।
श्री मुनिसुव्रत नाथजी, तीन लोक के नाथ ॥१॥

वीतराग सर्वज्ञ हो, हो शिव मारग नाथ।
घाति कर्म विजयी प्रभो, कीजे मुझे सनाथ ॥२॥

अष्टक। १६ मात्रा

शीतल मिष्ट सुवारि लयो, जिनपाद पूजि भव पाप गयो।
मुनि सुव्रत सुव्रत लेन चहों, निज रूप मग्न नित होन चहों ॥१॥

ओं ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेंद्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामि स्वाहा ॥१॥

केसर चंदन साथ लयो, जिन चरण पूजि भव ताप गयो।
मुनि सुव्रत० निजरूप० चंदनम् ॥२॥

अक्षत अक्षत पुंज धरों, जिन पाद पूजि अघनाश करों।
मुनि सुव्रत० निजरूप० अक्षतम् ॥३॥

सुगुलाब आदि बहु पुष्प धरे, जिन पाद पूजि रतिनाथ हरे।
मुनि सुव्रत० निजरूप० पुष्पम् ॥४॥

सरस सघृत सद नैवेद्य लिया, जिनपाद पूजि क्षुधनाश किया।

मुनि सुव्रत० निजरूप० नैवेद्यम् ॥५॥

सद मणि वा घृत का दीप लिया, जिनपाद पूजि अज्ञान गया।

मुनि सुव्रत० निजरूप० दीपम् ॥६॥

घनसार आदि की धूप बनी, जिनपाद पूजि वसु कर्म हनी।

मुनि सुव्रत० निजरूप० धूपम् ॥७॥

अति सरस पक्व फल थाल भरा, जिनपाद पूजि शिव सौख्य वरा।

मुनि सुव्रत० निजरूप० फलम् ॥८॥

वसु विधि द्रव्यका अर्घ लिया, जिनपाद पूजि पदनर्घ लिया।

मुनि सुव्रत० निजरूप० अर्घम् ॥९॥

अथ पंचकल्याणक अर्घ। दोहा।

श्री मुनिसुव्रत नाथने, छोड स्वर्ग का वास।
श्रावण वदिकी दोजको, कीया गर्भ में वास ॥१॥

ॐ ह्रीं श्रावण कृष्ण द्वितीयायां गर्भ कल्याणक मंडिताय श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि०

वैशाख वदी दशमी दिवस, जन्मे जगके नाथ ।
राजगृही राजन्वती, कीनी सुव्रत नाथ ॥२॥

ॐ ह्रीं वैशाख कृष्णादशम्यां जन्म कल्याणक मंडिताय श्री मुनि सुव्रतनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि०

जन्म तिथी को छोडकर, राजपाट संग साथ।
दीक्षा ले सुव्रत बने, श्री मुनि सुव्रत नाथ ॥३॥

ॐ ह्रीं वैशाख कृष्ण दशम्यां दीक्षा कल्याणक मंडिताय श्री मुनि सुव्रतनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि०

नवमी वैशाख कृष्ण की, मुनि सुव्रत भगवान ।
चार घातिया घात कर, पाया केवल ज्ञान ॥४॥

ॐ ह्रीं वैशाख कृष्ण नवम्यां ज्ञान कल्याणक मंडिताय श्री मुनि सुव्रतनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि०

फागुन वदि द्वादशि दिवस, कर्म सम्बंध का त्याग।
श्री मुनि सुव्रत ने किया, शिव रमणीसे राग ॥५॥

ॐ ह्रीं फाल्गुन कृष्ण द्वादश्यां मोक्ष कल्याणक मंडिताय श्री मुनि सुव्रतनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि० ।

जयमाल।

दोहा— नृप सुमित्र के लाडले, पद्मावति के लाल।
राजगृहके नाथ तुम, मुनिसुव्रत जिनपाल ॥१॥

भुजंगप्रयात छंद।

तरे आपकी भक्ति से जीव नंता, तरा पार संसार चाहूं अनंता।
गती चार भौंरे बडे दुःख दे हैं, चले जोर नाहीं सहे ही पडे हैं ॥१॥
जरा जन्म मृत्यु बडे नक्र ये हैं, धरें आस्य में शीघ्र मारा करे हैं।
बडे मत्स्य खायें यथा अन्य को हैं, सतावें तथा जो वली हीन को हैं ॥२॥
असाता बली कर्मकी क्या कथा है? पशू योनिमें देख भारी व्यथा है।
अपूर्णेन्द्रियोंकी बतावें कहां लों, जहां मार डालें न रच्चैं कजा लों ॥ ३ ॥
अजा भैंस बैलादि पूर्णेंद्रियोंकी, किसीको न आवे दया दुर्दशा की।
सताते सभी मार देते सभी हैं, चलाते स्व इच्छानुसारी सभी हैं ॥ ४ ॥
क्षुधा प्यास वा शीत गर्मी लगे है, पराधीनतासे सभीको सहे है।

लदै भार भारी चलैं ना सुखारी, पडै मार भारी सहै हो दुखारी ॥ ५ ॥
अधोभूमिके दुःख हैं जो अनंता, कहै शेष तो भी न आवे तदंता ।
सुरोंमें गये भी न होता सुखी है, पराई बढी संपदा से दुखी है ॥ ६ ॥
गती मानुषीमें दुखोंका नजारा, विचारैं जभी चोटसे चित्त हारा ।
लगे सैकडों शस्त्रकी सी व्यथा है, जिसे आपकी भक्तिने ही मथा है ॥ ७ ॥
इसीमें दिखै अल्प सच्चा सहारा, सुखी नित्य हो धर्मका ले सहारा ।
विता दे इसे व्यर्थ ही वासनामें, रमै ना कभी आपका रूप जामें ॥
करो नाथ मेरी मतो हो निजा धी, लगूं स्वात्ममें छोड सारी परा धी ।
चला व्यर्थ ही जन्म मेरा गया तो, मिलेगा न "श्री" को सहारा कहींतो ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रत जिनेंद्राय पूर्णार्घं निर्वपामि स्वाहा ॥२०॥

अथ इकीसवे तीर्थंकर श्री नमिनाथ जिनपूजा ॥२१॥

स्थापना। कुंडली।

श्री नमिनाथ जिनेंद्र, जगतमें सुखके कर्त्ता।
कर्ता धम विस्तार, नाशकर सबकी विपदा ॥
पदाब्ज लगा है नील, देह कंचनमय सोहै।
सो है अंतिम देह, आपकी, जन मन मोहै ॥
मो है पवित्र करती प्रभो, सब विधि-बाधा दूर कर।
कर कृपा आओ यहां, मैं पूजूं तुम चरण वर ॥

ओं ह्रीं श्री नमिनाथ जिनेंद्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणं)

अष्टक।

स्वच्छ मिष्ट शुभ वारि, भरि भृंगार लिया।
श्री जिन चरण चढाय, भवका नाश किया ॥
श्री नमिनाथ जिनेंद्र, गुण गण अगण भरे।
गुण गण ग्रहण निमित्त, नमि नमि नमन करे ॥

ओं ह्रीं श्री नमिनाथ जिनेंद्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामि स्वाहा ॥ १ ॥

मलया केसर साथ, कदलीनंद घिसा, श्री जिनचरण चढाय, भवका ताप नशा
श्री नमिनाथ० । गुण गण० । चंदनं ॥२॥
शालिव्रीहि बहुभांति, अक्षत धोय लिये, श्री जिन चरण चढाय, अक्षत पदहि लिये।
श्री नमिनाथ० गुणगण० अक्षतं ॥३॥
काम वाग विख्यात सुरभित पुष्प कहे, श्री जिन चरण चढाय काम कुसैन्य दहे।
श्री नमिनाथ० गुणगण० पुष्पम् ॥४॥
मोदक पूरी खीर नेवज विविध लिया, श्री जिन चरण चढाय क्षुध को दूर किया

श्री नमिनाथ० गुणगण० नैवेद्यं ॥५॥

मणि घृत वा करपूर दीपक जोय धरे, श्रीजिन चरण चढाय ज्ञान प्रकाश करे।

श्री नमिनाथ० गुणगण० दीपं ॥६॥

चंदन चूर कपूर अगर तगर कूटे, श्रीजिन चरण चढाय कर्म बंध टूटे।

श्री नमिनाथ० गुणगण० धूपं ॥७॥

आम मुसम्मि अनार अनरस रसवारे, फल भेंटे जिनराज शिवफल मिलता रे।

श्री नमिनाथ० गुणगण० फलं ॥८॥

जल अक्षत घनसार पुष्प धूप दीपा, फल नैवेद्य चढाय पूजो जिनभूपा।

श्री नमिनाथ० गुणगण० अर्घं ॥९॥

अथ पंचकल्याणक अर्घ। दोहा।

आश्विन कृष्णा दोजको, छोडा स्वर्ग महान।
मध्य लोक मिथिला पुरी, आये नमि भगवान ॥१॥

ॐ ह्रीं आश्विन कृष्ण द्वितीयायां गर्भ कल्याणक मंडिताय श्री नमिनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि०

अषाढ वदी दशमी शुभ, जन्म लिया नमिनाथ ।
चारो देव निकायने, पूजे परिजन साथ ॥२॥

ॐ ह्रीं आषाढ कृष्णा दशम्यां जन्म कल्याणक मंडिताय श्री नमिनाथ जिनेन्द्रायार्घम् नि०

जन्म तिथी के दिवस में, विरक्त हुए नमिनाथ ।
दीक्षा ली संग त्याग कर, होने शिव का नाथ ॥३॥

ॐ ह्रीं आषाढ़ कृष्ण दशम्यां दीक्षा कल्याणक मंडिताय श्री नमिनाथ जिनेन्द्रायार्घम् नि०

मगसिर सुदि एकादशी, घाते घाती कर्म ।
श्री नमिनाथ जिनेन्द्रने, पाया नन्ता शर्म ॥४॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्ष शुक्ल एकादश्यां ज्ञान कल्याणक मंडिताय श्री नमिनाथ जिनेन्द्रायार्घम् नि०

बचे अघाती कर्मका, नमिने कीना नाश ।
चौदश वदि वैशाख को, लीना शिवपुर वास ॥५॥

ॐ ह्रीं वैशाख कृष्णा चतुर्दश्यां मोक्ष कल्याणक मंडिताय श्री नमिनाथ जिनेन्द्रायार्घम् नि०

जयमाला।

दोहा—अपराजित से आयकर, अपराजित विधि जीत।
अपराजित नमि जिन हुए, नमन करूं सप्रीत ॥

पद्धरि १६ मात्रा। ह्रस्वांत

अपराजित में अहमिंद्र देव, करते श्रुत पाठ जिनेन्द्र सेव।
जब आयु रही छह मास शेष, हुइ भरत क्षेत्र शोभा विशेष ॥२॥
सौधर्म इन्द्र भेजा कुबेर, जिनगर्भागममें नहीं देर।
अब मिथिला पुरको करो शोभ, वर्षाओ धन तहां त्याग लोभ ॥३॥
घर महल सडक बाजार पाथ, सुपरिष्कृत कर सब रचो साथ।
श्री ह्री आदिक छप्पन कुमारि, जा सेव करो श्री वप्रनारि ॥४॥
जिन जननी है वह होनहार, इसलिये करो उसकी संभार।
हो नहिं कष्ट न रोग कोय, ना ईति भीति का विघ्न होय ॥५॥
आश्विन वदिकी शुभ दोज इन्द्र, च्युत हो हूआ मिथिला नरेन्द्र।

सित शुक्ति मध्य मुक्ता समान, श्री वप्रा गर्भ रहे स-मान ॥६॥
श्री तीर्थंकर प्रकृति प्रभाव, सब देव करें नित सेव भाव ।
भव प्रत्यय अवधि ज्ञान ईश, तनु वज्र वृषभ नाराच ईश ॥७॥
सम चतुरस्रक संस्थान ईश, दश शारीरिक अतिशय सुईश ।
संसार गहन है अति विशाल, इससे निकाल करिये निहाल ॥८॥

दोहा— अपराजित जिन सेव से, अपराजित जन होय ।
अपराजित "श्री" को करैं, अपराजित विधि खोय ॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घम् निर्वपामि स्वाहा ॥२१॥

द्वाविंशतितम श्री नेमिनाथ जिनेंद्र पूजा ॥२२॥

स्थापना ।

यादव कुलावतंस नेमि जिननाथ कहाये ।
शिवा देविके लाल, समुदविजय पुत्र महा ये ॥

अपराजितको त्याग, द्वारका वास किया है।
अत्र विराजो आय, यजनमें चित्त दिया है ॥१॥

दोहा—बालब्रह्मचारी प्रभो ! राजमतीभरतार।
मृग गण पर करुणा करी, त्यों 'श्री' को भी तार ॥२॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेंद्र ! अव अवतर अवतर संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक। चाल—लावनी आचलीबंध।

उत्तम सरका स्वच्छ नीर ले, भरि कंचन झारी।
श्री जिन चरण चढाये मिटता, जन्म मृत्यु भारी॥
नेमि जिन ! सुनियो यह अरजी, विधि वंध बंधा हूं,
दुख नित भोगूं, इसका नाश करो। नेमिजिन०।

ओं ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेंद्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनायार्घं नि० ॥१॥

चंदन लेकर मलयागिरिका, केसर संग धरो।

श्री जिनचरण चढा कर भाई ! भवका ताप हरो । नेमिजिन सुनियो० ।
विधि बंध बंधा हूँ, दुख नित भोगूं इसका नाश करो । नेमि० । चंदनं ॥

दीरघ अक्षत श्वेत चंद्र सम, अक्षत पुंज धरो ।
अक्षय पदकी प्राप्ति करनका श्रेष्ठ उपाय वरो । नेमि जिन० ।
विधि बंध बंधा हूँ, दुख नित भोगूं, इसका नाश करो । अक्षतं ॥३॥

सुमन सुमन प्रिय सुमन-से लेकर, श्री जिनपाद धरो ।
काम कामना कम कम करके इसका मूल हरो ।
नेमिजिन० । विधि बंध० । नित० । इसका० । ॐ ह्रीं ······· पुष्पं ॥४॥

तन मन मोहक मोदक खुरमा मद नैवेद्य करो ।
क्षुधा वेदना नष्ट होयगी, श्री जिन पाद धरो ।
नेमि० । विधि० । नित० । इसका० । ॐ ह्रीं ······· नैवेद्यं ॥ ५ ॥

मणि करपूर रतन वा घृतके, दीपक जोय धरो ।

मोह तिमिरके नाश करणको, यही उपाय खरो ॥
नेमि जिन० । विधि बंध० नित० । इसका० । ॐ ह्रीं ...... दीपं ॥६॥
दशविध सुरभित द्रव्य लेयकर, कूटो धूप करो ।
श्री जिन पाद समीप खेयकर कार्मण काठ जरो ॥
नेमिजिन० । विधिबंध० । नित० । इसका० । ॐ ह्रीं ...... धूपं ॥ ७ ॥
घ्राण नयन मन मोहन फल ले, सुवरण थाल भरो ।
श्री जिन चरण चढाओ इससे, शिवसुख प्राप्त करो ॥
नेमि जिन० । विधि बंध० । नित० । इसका० । ओं ह्रीं फलं ॥८॥
जल फल आदि आठ द्रव्य लेकर, अर्घ अनर्घ करो ।
श्री जिनवरके चरण पूजकर, पदहि अनर्घ वरो ॥
नेमि जिन० । विधि बंध० । नित० । इसका० । ॐ ह्रीं ...... अर्घं ॥९॥

पंचकल्याणक अर्घ । आर्या ।

कार्तिक शुक्ला छठिको, नेमिनाथ गर्भ में आ ।

त्रिभुवन मंगल छाये, वर्षे रत्न छ मास आगेसे ॥१॥
ओं ह्रीं कार्तिकशुक्ल पञ्चम्यां गर्भ कल्याणक मंडिताय श्री नेमिनाथ जिनेन्द्रायार्घं ॥१॥

सावन शुक्ला षष्ठी, जन्मे श्री नेमिनाथ भगवाना।
अभिषिक्त हुए मेरू पर, सेवा की सर्व देवोंने ॥२॥
ओं ह्रीं श्रावणशुक्ल षष्ठ्यां जन्म कल्याणक मंडिताय श्रीनेमिनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि० ॥२॥

जन्म तिथी को सुनकर, चिल्लाहट वन्य पशुओंकी।
संसार भीत होकर, मुनि बने हो। बनवासी ॥३॥
ओं ह्रीं श्रावणशुक्लषष्ठ्यां दीक्षा कल्याणक मंडिताय श्रीनेमिनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि०॥३॥

आसोज शुक्ल एकम, घाते चार घातिया विधि हैं।
सर्वज्ञ हुए नेमी, समवसरणादि विभूति के स्वामी ॥४॥
ओं ह्रीं आश्विन शुक्ल प्रतिपदायां केवलज्ञानमंडिताय श्रीनेमिनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि०

आषाढ सुदी सप्तमि को, मुक्ती ऊर्जयंत तें पाई।
नेमि भए अशरीरा, शाश्वत सुखाद्यनन्त गुणराशी ॥५॥
ओं ह्रीं आषाढशुक्ल सप्तम्यां मोक्ष कल्याणक मंडिताय श्रीनेमिनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि० ॥५॥

जयमाल।

दशवें भवसें जिन जीत विधी, जिननेमि वरी शिव नारि सुधी।
उनके गुणको कह कौन सकें, धरणींद्र ऋषींद्र सुरेंद्र थकें ॥१॥
जब ये पहले भव भील रहे, तव एकदिना मुनिनाथ लहे।
इनने उनको समझा मृग है, करमें ततकाल लिया शर है ॥२॥
तव साथिनि नारि निवार दिया, प्रभु! ये यतिनाथ अनाथ पिया।
यह हैं करते सब पर करुणा, मृग भी रहते नत हो चरणा ॥३॥
हम रंक बडे धनवान हुये, मुनिनाथ हमें अब दृष्ट हुये।
तव दम्पति पास गये मुनिके, नत हो हित वाक्य सुने उनके ॥४॥
तबसे उनकी मति शुद्ध हुई, क्रमसे बढ़ती अखिलज्ञ हुई।
जिसने पहले सद ज्ञान दिया, वह भीलिनि राजमती सुधिया ॥५॥
नववें भवलों पति साथ रही, दशवें भव नेमि जिनेन्द्र जही।
गिरनार पहाड चढे प्रभुजी, तप ले शिवनारि वरी प्रभुजी ॥६॥

सुरनाथ तहां पद चिह्न किया, निरवाणक थान प्रसिद्ध किया ।
तब से अब लों जन पूजत हैं, भव का दुखमूल निमूलत हैं ॥७॥
पति के पथ राजमती चल दी, तपसे पति-पत्निपना तजदी ।
वह भी सुर से नर जन्म धरैं, सब कर्म विनाशि शिवत्व वरैं ॥८॥
बलभद्र नरायण आदि सभी, चरणों पड पूजत हैं सुर भी ।
हम "श्री" नत हो वह मांगत हैं, शिववास जहां सुख शाश्वत हैं ॥९॥
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घम् निर्वपामि स्वाहा ॥२२॥

—o—

अथ त्रयोविंश श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा ॥२३॥

स्थापना । हरिगीतिका २८ मात्रा

दोहा—आनत वि-मान विमान करिके, स-मान की काशीपुरी ।
उपपाद देह धिकार दीनी, औदारिकी आदरी ॥

नृप विश्वसेन पिता बनाये, मात ब्रह्मा की सती ।
वह पार्श्व जिन त्रैलोक्य पति, हों आयकर पूजापर्ती ॥१॥

ओंह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर २ संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः; अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक । त्रिभंगी छंद । मात्रा ३२ ।

कंचन मय झारी भरिके वारी, धारी प्रभुके चरणारी ।
यह जरा मिटायी, जन्म मिटाया, मृत्यु मिटायी बेगारी ॥
श्रीपार्श्व जिनेश्वर जग परमेश्वर, सार स्वगुणके दाता हे ।
करुणा के धारी शिवसुखकारी जजों तिहारे चरणा ये ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामि स्वाहा ।

भव ताप तपाता करत असाता, कर्म अरीने रुलाया है ।
अब इसका नाशन करने कारण, चंदन पाद चढाया है ॥
श्रीपार्श्व जिने० करुणाके० चंदनम् ॥२॥

इस जगमें भ्रमते गति गति फिरते, चत विच्चत बहु देह धरी।
यह अच्चत लाया तुम्हे चढाया, पाने अच्चत देह खरी ॥
श्रीपार्श्व जिने० करुणाके० अच्चतम् ॥३॥

जिसने जग जीता वह तुम जीता, अनंग फिरता डर करके।
उसके ये शर लाया तुम तर, इन्हें दबाओ पद करके ॥
श्रीपार्श्व जिने० करुणाके० पुष्पम् ॥४॥

आहारक संज्ञा सदा असंज्ञा, करती रहती मुझको ये।
नेवज लाया तुम्हें चढाया, इसका नाशन करना है ॥
श्रीपार्श्व जिने० करुणा के० नैवेद्यं ॥५॥

भरे नादिसे मिथ्या तमसे, सम्यक पंथ न दिखता है।
दीपक लाये तुम्हें चढाये सम्यग्दर्शन मिलता है ॥
श्रीपार्श्व जिने० करुणा के० दीपं ॥६॥

ज्यों काठ दहनमें ध्यान शुक्लसें, कर्म शीघ्र ही जलते हैं ।
अग्नि जलाई धूप चढाई कहती वे यों उडते हैं ॥
श्रीपार्श्व जिन० करुणा के० धूपम् ॥७॥

अफलित विधि कीने शिवफल लीने, आपने अपनी शक्तीसे ।
फल थाल भराया तुम्हें चढाया, पाने शक्ती भक्तीसे ॥
श्रीपार्श्व जिने० करुणा के० फलं ॥८॥

वसु द्रव्य मिलाये अर्घ बनाये, चरण चढाये जिनवरके ।
भव दुःख नशाने शिवपद पाने स्वात्म लीनता ले करके ॥
श्रीपार्श्व जिने० करुणा के० अर्घं ॥९॥

अथ पंचकल्याणक अर्घ । आर्या छंद ।

आनत अवनत करके, वैशाख कृष्ण द्वितीया को ।
माता के गर्भ में आये, पार्श्व प्रभू वराणसि में ॥१॥

ओंह्रीं वैशाखकृष्ण द्वितीयागां गर्भ कल्याणकमंडिताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्रायार्घं नि०॥१॥

जन्मे पारसनाथा एकादशी पौष कृष्णा को ।
सौधर्म इन्द्र आया, चारो निकाय ले करके ॥

ओं ह्रीं पौष कृष्ण एकादश्यां जन्म कल्याणक मंडिताय श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि० ॥२॥

ग्यारस पौष वदी को, यह संसार दुःखमय जाना ।
द्विविध परिग्रह तजिके, दीक्षा ली पार्श्व भगवाना ॥३॥

ओं ह्रीं पौष कृष्ण एकादश्यां दीक्षा कल्याणक मंडिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि ० ॥३॥

उपसर्ग कमठ ने कीना, जीता श्री पार्श्व प्रभुजीने ।
पाया केवल ज्ञान, चैत की चौथ कृष्णाको ॥४॥

ओं ह्रीं चैत्र कृष्ण चतुर्थ्यां ज्ञान कल्याणक मंडिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि ०॥४॥

सम्मेद शिखर जाकर, मुक्त हुए पार्श्व भगवाना ।
सावन सुदि सप्तमिको, पाई अनन्त गुणऋद्धी ॥५॥

ओंह्रीं श्रावण शुक्ल सप्तम्यां मोक्ष कल्याणक मंडिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि० ॥५॥

जयमाला।

दोहा— मरुद्भूतिचर पार्श्व जिन, यथा किया स्वोद्धार ।
"श्री" का भी प्रभु कीजिये, विनती बारंबार ॥१॥

त्रोटक छंद। २ लघु १ गुरु अक्षर १२।

पुरपोदन मंत्रि विरक्त हुए, उनकी पदवी मरुभूति लिये ।
अरविंद नरेश चढे रिपुपै, तब भार दिया कमठ भ्रु वपै ॥२॥
उसने दुरनीति यहांतक की, अनुजग्रहिणी असती करदी ।
नृप ने चरसे सब जान लिया, तब देश बहिष्कृत दुष्ट किया ॥३॥
मरुभूति न थे इसमें सम–धी, कमठ भ्रु वने करली रिपुधी ।
तबसे अद्धया रिपुता चलदी, न समाप्त हुई भवआ–परिधी ॥४॥
जब पार्श्व हुए मरुभूति सुधी, तब मातृ-पिता कमठेश कुधी ।
जग की यह रीति सदासे रही, कुछ भी रहता समभाव नहीं ॥५॥
तट गंग नदी जिन पार्श्व गये, तपते इक साधु समीप गये ।

जलते अहि देख दयार्द्र हुये, तप अग्नि सदोष जनाय दिये ॥६॥
जलते अहि दम्पति मृत्यु लही, जिन शांति छबी लखि शांति लही।
धरणीन्द्र हुए उसके बलसे, जिनके गुणभक्त हुए तबसे ॥७॥
बहु देश महीपति आगत थे, अपनी अपनी तनुजा सह थे।
प्रभु पार्श्व वरें उनको सुखदा, अभिलाष यही सबकी मुददा ॥८॥
विनती जब पास गई प्रभुके, सुनते सुविचार हुए उनके।
विषयाश फसे जगजीव सभी, दुख भोगत आकुल होत सभी ॥९॥
पर छोड न चाहत हैं न कभी, मुझको यह दीखत सर्प सभी।
जिनकी रुचि देखि विराग गता, लवकांतिक देव हुए मुदिता ॥१०॥
अनुमोदन आय किया उनने, प्रभु ठीक विचार किया तुमने।
जग जीवनका अब दुःख गया, प्रभुने तपका सुविचार किया ॥११॥
उसही क्षण देव समागत थे, प्रभु ले चलने शिविका सह थे।

प्रभुने न वरीं तरुणी नृपजा, रुचि की वरने अनुभूति स्वजा ॥१२॥
वन जाकर वस्त्र तजे सबही, कचलोच किया निजरूप गही।
कमठाचर तापस भूत हुआ, उसने उपसर्ग महान किया ॥१३॥
जल अग्नि पहाड सभी वरषा, पर पार्श्व जिनेश रहे स्व-रसा।
धरणीपति पत्नि सहागत था, जिन छत्र बना उसका तनु था ॥१४॥
प्रभुने अरि चार हने तब ही, सुरलोक समागत था सबही।
महिमा अवलोक कुधी कमठा, उसही क्षण हर्षित हो सुलटा ॥१५॥
प्रभुने सब देश विहार किया, जगजीव हितार्थ सुबोध दिया।
अब "श्री" पर भी करिये करुणा, भव पार लगा रखिये शरणा ॥१६॥

ओं ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेंद्राय अर्घं निर्वपामि स्वाहा। पूर्णार्घं ॥२३॥

अथ चतुर्विंशतीथंकर श्री महावीर (वर्द्धमान) जिनपूजा ॥२४॥

स्थापना।

अपराजित किये पराजित जिनने, सिद्धार्थ बनाये सिद्धारथ जिनने ।
त्रिदश ला शं करी त्रिदशला जिनने, वे श्री महावीर विराजैं पुजने ॥१॥

ओं ह्रीं श्री महावीर जिनेंद्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक।

नानाविधि तीरथ वारि, पाद प्रचाले हैं ।
बुझै जन्म मृत्यु अंगार, यह मन धारे हैं।
श्री वीर जिनेश्वर पाद-पद्माकर सोहैं।
पूजत देते शिव-सौख्य, निज स्वरूप जो हैं ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामि स्वाहा

शशि कर सम शीतल कारि, चंदन से पूजे।
शीतल हों तापक कर्म, यह आशा पूजे ॥
श्री वीरजिने० पूजत देते० चंदनम् ० ॥२॥

सित अक्षत दीरघ लाय, पुंज करे भारी ।
अक्षत पद मिलता शीघ्र, यह आशा सारी ॥
श्री वीरजिनेश्वर० पूजत देते० अक्षतम् ० ॥३॥

सुरभित करते सब देश, पुष्प चढाये हैं।
कामके पैने तीर, लाय छिनाये हैं ॥
श्री वीर जिने० पूजत० पुष्पं ॥४॥

मन नयन रसन सुखदाय, नेवज से पूजे।
नशि क्षुधा वेदनी जाय, प्रभु एसा कीजे ॥
श्री वीर जिने० पूजत० नैवेद्यं ॥५॥

निज परका करे प्रकाश, दीपक पाद धरा ।
ज्ञानका यही स्वभाव, हो यह पूर्ण खरा ॥
श्री वीर जिने० पूजत० दीपं ॥६॥

दश दिश को महकाय, खेई धूप तुम्हे ।
वसु कर्म करेगी क्षार, संशय नाहिं इमै ॥
श्री वीर जिने० पूजत० धूपं ॥७॥

सब इन्द्रियनको सुखदाय, फल तुम पाद चढे ।
कहैं शिवफल इससे फलै, भव भव दुःख कढे ॥
श्री वीर जिने० पूजत० फलं ॥८॥

वसुद्रव्यनि का समुदाय, जिनके पाद धरे ।
वसु कर्म शीघ्र कट जाय, निजका रूप वरे ॥
श्री वीर जिने० पूजत० अर्घम् ॥९॥

पंचकल्याणक अर्घ । आर्या ।

सुदि अषाढकी छठिको, श्री वीर गर्भ में आये ।
कुंडनपुर की शोभा, हुई छह मास पहले से ॥१॥

ओं ह्रीं आषाढ शुक्ल षष्ठ्यां गर्भ कल्याणक मंडिताय श्री वीरनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि० ॥१॥

जन्मे वीर जिनेन्द्रा, शुभ सुदी चेत तेरस को ।
चौदश प्रातः काले, अभिषेक हुआ मेरूपे ॥२॥

ओं ह्रीं चैत्र शुक्ल त्रयोदश्यां जन्म कल्याणक मंडिताय श्री वीरनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि०॥२॥

तीस बरस की वयमें, संसार असार लखि करके ।
मगसिर सुदि दशमीको, वीर बने हैं मुनिनाथा ॥३॥

ओं ह्रीं मार्गशीर्ष शुक्ल दशम्यां दीक्षा कल्याणक मंडिताय श्री वीरनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि० ॥३॥

वैशाख सुदी दशमी को, घाते घातिया वीर प्रभुजीने ।
गणधर नहिं होने से, वाणी न खिरी साठछह दिनलों ॥४॥

ओं ह्रीं वैशाख शुक्ल दशम्यां ज्ञान कल्याणक मंडिताय श्री वीरनाथ जिनेन्द्रायार्घं नि० ॥४॥

पावापुरके सरतैं, कार्तिक मावस प्रात काले ही ।
मुक्त हूए जिन वीरा, दीपावली हुई तव से ॥५॥

ओं ह्रीं कार्तिक कृष्ण अमावास्यां मोक्ष मंगल मण्डिताय श्री वीरनाथ जिनेन्द्राय नि० ॥५॥

जयमाल । भुजंग प्रयात छंद ।

नमैं सर्व देवासुरा पाद जाके, स्तुवैं सर्व चक्री मुनींद्रादि जाके ।
लहैं ऋद्धि भारी विकारो नहीं हैं, धरैं दिव्य वाणी उचारी नहीं है ॥
अशोकादि आठो धरें प्रातिहार्या, न धारें किसीमें ममत्वादि कार्या ।
न होते प्रसन्ना करै जो वडाई, न होते विषन्ना करै जो बुराई ॥२॥
तथापी सुखी हो करै जो वडाई, दुखी हो, करै जो तुमारी बुराई ।
तुमारी छवी देख हो भाव शुद्धी, पढ़े स्तोत्र हो ताकि वाणी विशुद्धी ॥३॥
नमैं 'कायसे' काय होता सुहाता, इसीसे असाता न हो, होत साता ।
लगे सिंहके जन्मसे उन्नतीमें, गये मोक्ष को 'वीर' पावापुरी में ॥४॥

करै आपके से प्रयत्नों हजारों, करैं आपसा आप निश्चै हमारो।
करै याचना जो यहांके सुखोंकी, न जाने अज्ञानी सुशक्ती गुणोंकी ॥५॥
मिलै मुक्ति जासे, मिलै क्या न वासे, कथा क्या बतावैं सुखोंकी जरासे।
प्रभू आपने बालवस्था बितायी, कभी आपने बालता ना दिखायी ॥६॥
परीक्षा करी आपकी एक देवा, बना सर्प आया डराने स रेवा।
जरा भीत नाहींहुए आप वीरा, करी स्तोत्र देवा रखा नाम 'वीरा' ॥७॥
मुनि एकके चित्तमें शंक आई, नशी शंक सारी प्रभूको लखाई।
रखा नाम है सन्मती साथ जो है, रखा वर्धमान स्वराधीशने है ॥८॥
दिखा रुद्रता रुद्र शक्ती थकी है, न ध्यानत्वसे वीर शक्ती चिगी है।
कहा आपको 'महावीर' वीरा, नमो पादमें तो मिटै सर्व पीरा ॥९॥
हुये आप सर्वज्ञ, दिव्य ध्वनीसे, उवारे अनंते लगा धर्म जी से।
अभी भी तरैं आपकी सद्गिरा से, उतारो मुझै "श्री" कहे नम्रतासे ॥१०

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेंद्राय पूर्णार्घं निर्वपामि स्वाहा ॥२४॥

अथ द्वितीय वलय स्थित 'शब्द ब्रह्म' पूजा।

स्थापना। दोहा।

शब्द-ब्रह्म जाने विना, परम ब्रह्म नहिं पाय।
लौकिक आगम जल्पना इसके विना नशाय ॥
निश्चय नय व्यवहार के, दोनों ब्रह्म प्रतीक।
इससे ही आराध्य हैं, दोनों सत्य सुनीक ॥२॥

सोरठा—शब्दब्रह्म तुम देव ! करो कृपा मोपर प्रभो !
तिष्ठो आय स्वमेव, मैं पूजा चितसे करूं ॥३॥

ॐ ह्रीं चतुष्षष्टि-अक्षर संयोगज एकद्विप्रमाण शब्दब्रह्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः; अत्र मम सन्निहितं भव भव वषट्।

अष्टक। नाराच छन्द।

शीत मिष्टतीर्थ नीर झारि में भराइये। धार देय जन्म मृत्यु, अग्नि को बुझाइये।
ब्रह्म शब्द पूजते सुविघ्न सर्व जाय हैं। ब्रह्म आतम लाभ हो, अनन्त सौख्य पाय हैं ॥

ॐ ह्रीं चतुःषष्टिअक्षर संयोगज एकट्ठिप्रमाण शब्दब्रह्मणे जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामि स्वाहा ॥१॥

केशर कपूर संग चन्दनं घिसाइये। हर्ष चित्त धार सो सुनम्र हो चढाइये॥
ब्रह्म शब्द०। ब्रह्म आत्म०। ओं ह्रीं चन्दनं।

व्रीहि शालि अक्षतं, सुनाभ मात्र अक्षतं। पूजि पाद आपके, करैं मुझे सुअक्षतं।
ब्रह्म शब्द०। ओं ह्रीं अक्षतान् ॥ ३ ॥

केवडा गुलाब आदि फूल ले चढाइये। कामनाश शीघ्र हो, सदा सुखी रहाइये॥
ब्रह्म शब्द०। ओं ह्रीं पुष्पं नि० ॥ ४ ॥

नाहिं भूख जात है, अपार कष्ट देत है। नष्ट शीघ्र हो यही, चरू पुकार कैत है॥
ब्रह्म शब्द०। ओं ह्रीं नैवेद्यं नि० ॥ ५ ॥

मोह अंधकार से, दुखी हुआ अज्ञान से। नष्ट मोह हो प्रभू! चढे इस प्रदीप से
ब्रह्म शब्द०। ओं ह्रीं दीपं नि० ॥ ६ ॥

अग्निके प्रभाव से, जलै दशांग धूप है। कर्मको जलै समूह, शुद्ध आत्मरूप है।

ब्रह्म शब्द०। ओं ह्रीं धूपं नि० ॥ ६ ॥

संतरा अनार आदि, थाल में भराइये। भक्ति से चढाय पूज मोक्षराज पाइये ॥

ब्रह्म शब्द०। ओं ह्रीं फलं नि० ॥ ८ ॥

द्रव्य आठ साथ ले, महार्घको बनाइये। प्राप्त हो अनर्घता, सुलोक अन्त जाइये

ब्रह्म शब्द०। ओं ह्रीं अर्घं नि० ॥ ९ ॥

प्रत्येक अर्घ।

सब व्यंजन जिनके विना, अर्द्ध मात्र कहलाय।
अकारादि स्वर को नमूं, प्राची अर्घ चढाय ॥

ॐ ह्रीं ह्रस्व दीर्घ प्लुत भेद सहित अ इ उ ऋ लृ ए ऐ ओ औ स्वरेभ्यः अं अः ≍क≍ख ≍प फ अयोगवाहेभ्यश्च पूर्वदिशि अर्घं नि०।

पहला वर्ग कवर्ग है, क ख ग घ ङ है नाम।
आग्नेयी दिशि पूजते, सभी सिद्ध हों काम ॥२॥

ॐ ह्रीं क ख ग घ ङ इति कवर्गाय आग्नेयदिशि अर्घं ॥२॥

दक्षिण दिशि में शोभता, वर्ग चवर्ग महान ।
आठ द्रव्य से पूजकर, होवे गुण की खान ॥

ॐ ह्रीं च छ ज झ ञ इति चवर्गाय दक्षिणदिशि अर्घं ॥३॥

अपने साथी वर्ण से शोभित है टवर्ग ।
नैऋत दिशिमें पूजकर, प्राप्त करो अपवर्ग ॥४॥

ॐ ह्रीं नैऋत्य दिशि ट ठ ड ढ ण इति टवर्गाय अर्घं नि०

चौथा वर्ग तवर्ग है, पश्चिम दिशि है वास ।
वसु विधि अर्घ चढायकर, मेटो सब विधि त्रास ॥५॥

ॐ ह्रीं पश्चिम दिशि त थ द ध न इति तवर्गाय अर्घं नि०॥५॥

उच्चारण हो ओष्ठसे, अन्तिम वर्ग पवर्ग ।
वायव दिशिमें पूजिये, लीजे रूप निसर्ग ॥६॥

ॐ ह्रीं वायव्य दिशि प फ ब भ म इति पवर्गाय अर्घं नि०॥६॥

यरलव के आश्रय किये, सर्व विघ्न टल जाय।
उत्तरदिशि पूजा करो, हर्ष हर्ष गुण गाय ॥७॥

ॐ ह्रीं उत्तर दिशि य र ल व इति अन्तस्थाय अर्घं नि० ॥७॥

श ष स ह चारो वर्ण हैं, ऊष्म घोष हैं नाम।
भक्ति भाव से पूजिये, लीजे शिवपुर धाम ॥८॥

ॐ ह्रीं ईशान दिशि श ष स ह इतिवर्णेभ्योऽर्घं नि० ॥८॥

क्रमसे अक्षर आदिमें, ह भ म र घ झ स ख सुहाय।
अन्तमें म्ल्व्यूँ राख कर, अक्षर आठ बनाय ॥
क्रमसे एकेक राजते, आठो कोठे मध्य।
वसु विधि अर्घ चढायकर, पूजो इनको सद्य ॥

ॐ ह्रीं हकारादि अष्टाक्षर संयुक्त ह्म्ल्व्यूँ आदि अष्टबीजाक्षरेभ्योऽर्घं निर्वपामि स्वाहा।

जयमाला।

अकारादि स्वर नो कहे, कादिक वर्ग सु पंच ।
यरलव चार अन्तस्थ है, श ष स ह ऊष्म कहन्त ॥१॥
ह्रस्व दीर्घ प्लुत भेदसे, स्वर सत्ताइस होंय ।
अयोगवाह चारों मिले, चौंसठ सबही होंय ॥२॥
इनके द्विआदि संयोगसे, एकट्ठी श्रुत होय ।
द्वादशांग इसमें मिला, शब्द ब्रह्म यह होय ॥३॥

त्रोटक छंद।

परमात्म जनावन कारण हो, श्रुत बोध करो सुखदायक हो ।
जिनके मन है सब जीव भले, तुम आश्रय पाय सुखी सुर-ले ॥४॥
अपने मनकी सब बात कहैं, परके मनकी सब बात लहैं ।
नर देश–विदेश सभी थलमें, बन जाय सुखी इनके बलमें ॥५॥
जन पंडित ज्ञान विकाश करैं, मूरख ज्ञान सु लाभ करैं ।

स्वर व्यंजन आदि विना न कभी, जगका विवहार चलै न कहीं ॥६॥
इनका उपपाद न कोइ किया, त्तरना इनका नहिं होइ किया ।
तब अक्षर नाम पडा इनका, स्वयमेव भला करते जनका ॥७॥
इस कारण पूजन सिद्ध समा, इनका करते जन बांध समा ।
शिवकारण पैं तिस सोलह दो, इक आदि कहे पद चिन्तनको ॥८॥
गणधारक गौतम आदिकने, जिनवाणि धरी चुनि शास्त्रनिमें ।
इसमें तुमही सब राजत हो, जिससे शिवमार्ग चलावत हो ॥९॥

दोहा—शब्द ब्रह्म को सेवसे, शिवका पावे राज ।
इसही से पूजा रची, भक्तिभाव उर साज ॥१०॥
आलंबन नाना कहे, मोक्ष प्राप्तिके हेत ।
उनमें ध्यान पदस्थ यह, ध्यावो भक्ति समेत ॥११॥

ॐ ह्रीं चतुःषष्टि द्वि आदि अक्षर संयगोज एकट्ठी प्रमाण शब्दब्रह्मणे पूर्णार्घं नि० स्वाहा

अथ तृतीय वलय स्थित श्री पंच परमेष्ठि पूजन ।

श्रीमदर्हद् परमेष्ठि पूजा ।

स्थापना ।

जग के जीव महा दुख भोगत, राग द्वेषमें सने अपार ।
नहिं सूझत है इनको निज हित, रहते लीन सदा पर-कार ॥
इनका यह मिथ्यात्व छुडाकर, कैसे दुखसे लेऊं उवार ।
धर्मध्यान के साथ हुआ इम, दयाभाव उद्रेक अपार ॥
बन्धी प्रकृति तीर्थंकर शुभ तब, तीन लोक पूजित सुखकार ।
उदित अबाधा वीत हुई जब, तीन लोक में हर्ष अपार ॥
कल्याणककी पूजा पूर्वक, चार घातिया कर्म उपार ।
धर्म देशना करते हितकर, वे अर्हंत होंय सुखकार ॥२॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टादश दोष रहित पद् चत्वारिंशत् गुण सहित अर्हंत परमेष्ठिन् अत्र अवतर

अवतर, संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम संनिहितो भव भव वषट्।

अथाष्टक।

नाशे अठारे क्षुध आदि दोषा, नाहीं रहे जन्म जरा कलेशा।
कीजै मुझे भी गुणवान् जिनेन्द्रा, पूजूं जलोंसे चरणारविंदा ॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीमद् अर्हत परमेष्ठिने जलं निर्वपामि स्वाहा।

शास्ता परंज्योति विराग सार्थ, नीराग आत्मा परमेष्ठि पूज्य।
संसार का ताप विनाशकर्ता, श्रीगंध चर्चूं चरणारविंदा ॥ चन्दनं ॥२॥

रागी नहीं हैं कहते तथापि, स्वार्थी नहीं हैं रत स्वार्थ में है।
होती ध्वनीसे जन स्वार्थ पाते, पूजोऽर्हंतोंको सित अक्षतोंसे ॥अक्षतं ॥३॥

घाते अरी चार अनादि जो थे, पूरे चतुष्टय निज पास जो थे।
सर्वज्ञ दृष्टा सुख वीर्यनन्ता, पूजो कजोंसे पद आरिहन्ता ॥ पुष्पम् ॥४॥

सिंहासनाशोक तरुद्भवाब्धि, अष्ट प्रतीहार्य सुशोभमाना।
अस्पृष्ट देहा गत राग माना, नैवेद्यसे पूज पदाब्ज जैना ॥ नैवेद्यम् ॥५॥

दुग्धाब्धिवत् श्वेत शरीर—रक्ता, ज्ञानावधी शोभित बालवस्था।
सौगंध देहा मलखेदरिक्ता, दीप प्रजालो जिन अग्र भक्त्या॥ दीपम्॥६॥

साहस्र अष्टाधिक चिन्ह युक्ता, पादाब्जलीना सुर देव देवा।
जाले जिन्होंने विधि चार घाती, धूप प्रजालो जिनपाद पासी॥ धूपम्॥७॥

सद्धर्म का जो उपदेश देती, भाषा बने जो सब जीव जाने।
सो दिव्य भाषा जिनकी ध्वनी है, पूजों फलोंसे जिन पाद पद्म॥ फलं॥८॥

सौवर्ण पद्मावलि देव नीचे, रक्खें पदोंमें जब आप चालें।
माहात्म्य ऐसा नहिं अन्यका है, अर्घं चढाऊं जिनपाद पद्म॥ अर्घम्॥९॥

प्रत्येक गुण के अर्घ। जन्मके दश अतिशयोंके अर्घ।

स्वेदांबु जैसे जन अन्य आता, पारिश्रमाधिक्य व उष्णतासे।
वैसे न जो श्रांति जलाक्त होते, पूजो जिनेन्द्रा श्रमवारि मुक्ता॥१॥

ॐ ह्रीं अनन्त रहित शरीरातिशय युक्ताय जिनायार्घम् निर्वपामीति स्वाहा।

छद्मस्थ वस्थातक भुक्ति भोक्ता, होवे न तो भी मलमूत्र बाधा।
नैर्मल्य जन्मातिशयांग देवा, पूजो सदा भक्ति भरावनम्र ॥२॥

ॐ ह्रीं मलमूत्र बाधा रहित शरीरातिशय प्राप्ताग जिनायार्घम् निर्वपामीति स्वाहा

क्षीराब्धिके क्षीर समान शुभ्र, होता जिनोंका तनुरक्त शुभ्र।
जन्मातिशायी महिमा जिनोंकी, पूजो जिनेन्द्रा नत भक्तिमें हो ॥३॥

ॐ ह्रीं क्षीरवत् श्वेत रक्त धारक शरीरातिशयाय जिनायार्घम् निर्वपामीति स्वाहा

होता न जो घातित छिन्न भिन्न, वज्रर्षं नाराच सुसंहनांग।
शोभे जिन्होंके सबसे सुदाढ्यं, पूजो जिनेन्द्रा जग भानु चंद्रा ॥४॥

ॐ ह्रीं वज्र वृषभ नाराच संहनन सहिताय जिनायार्घम् निर्वपामीति स्वाहा।

हीनाधिकोन्मान विमुक्त अंग, संस्थान शोभै समचातुरस्र।
होता विकारी न कदापि म्लाना, पूजो पदाब्जा जिनराजजीके ॥५॥

ॐ ह्रीं समचतुरास्र संस्थान धारकाय जिनायार्घम् निर्वपामीति स्वाहा।

त्रैलोक्यमें ना उपमा कहीं है, मोहे मनोंको सुरनाथकों के।

सौंदर्य ऐसा जिनराज सोहै, पूजो उनोके चरणाब्ज दो को ॥६॥

ॐ ह्रीं सर्वातिशायि सौंदर्य धारकाय जिनायार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

सौगंध होती जिनके शरीरा, स्वाभाविकी अन्य कृता न जो है।
आवै न दुर्गन्ध कदापि कैसे, पूजो जिनेन्द्रा अतिशायि युक्ता ॥७॥

ॐ ह्रीं सर्वोत्कृष्ट सुगन्ध धारक शरीरातिशय प्राप्ताय जिनायार्घम् निर्वपामि स्वाहा।

शोभैं सहस्राधिक आठ लक्ष्मा, चक्रादि सामुद्रिक मानमान्या।
धारैं महा चिन्ह तनू जिनेन्द्रा, पूजो उनैं हो पद चंचरीका ॥८॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टाधिक सहस्र शुभ चिन्ह धारक शरीराय जिनेन्द्रायार्घं नि० स्वाहा।

औपम्य नाही बलके जिनोंका, कोटी भटोंको भयभीत कारी।
शारीरिकी शक्ति धरैं अनन्ता, पूजो जिनेन्द्रा अतुल प्रतापी ॥९॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्त बल धारक शरीराय जिनायार्घम् निर्वपामीति स्वाहा।

तृप्ती न होती जिनके सुनेसे, मध्यंकृशा आदिक दोषमुक्ता।
बोलैं सदा मिष्ट हितार्थ वाणी पूजो जिनेन्द्रा वचनातिशायी ॥१०॥

ॐ ह्रीं मधुर हित वचन प्रतिपादकातिशयाय जिनायार्घम् निर्वपामि स्वाहा।

समुच्चय अर्घ।

दोहा—शरीर गत ये धर्म दश, अनुपम जिन में होय।
तीर्थंकर शुभ प्रकृतिका, अतिशय ऐसा जोय ॥११॥

ॐ ह्रीं श्री दश जन्मातिशय सहिताय जिनायार्घम् निर्वपामि स्वाहा।

घाति कर्मक्षयसे दश अतिशय।

जोगीरासा—छंद।

समवसरण की रचना होती, उसके चारो ओरी।
सौ सौ योजन कोस चारसौ, सब दिशमें सब ठोरी॥
होता नही दुर्भिक्ष कदाचित, सबही सुखको पावै।
यह सुभिक्षता कारी अतिशय, पूजो जिनके पादै॥१॥

ॐ ह्रीं गव्यूतिशत चतुष्टय पर्यंत सुभिक्ष क्षेम कारिणे जिनायार्घं नि० स्वाहा

चार घातिया कर्म नशनसे, नभमें होत विहारा।

नीचे पगके देव धरैं तब, कांचन कमल अपारा ॥
नभोगामि यह अतिशय होवै, जगमें अचरज कारी ।
ऐसे जिनको अर्घ चढाये, होते शिव अधिकारी ॥२॥

ॐ ह्रीं नभोगामिने श्री जिनायार्घम् निर्वपामीति स्वाहा ।

समवसरण श्री जिनवरका जहां, जावै भवि हितकारी ।
नहिं प्राणि वध होता वहां वहां, सब हों करुणाधारी ॥
ऐसे श्रीजिन सब सुखदायक, घातिक्षय से होता ।
अप्राणिवध यह अतिशय भारी, पूजे शिवपति होता ॥३॥

ॐ ह्रीं प्राणिवध निवारकाय श्री जिनायार्घम् निर्वपामीति स्वाहा ।

कवलाहार नशा सब विधिका, नशी असाता सब ही ।
क्षुधा वेदना होती नहीं है, कायिक बल है तब भी ॥
भुक्त्यभाव यह अतिशय जिनके, घातिक्षयसे होता ।
पूजे उन अरिहन्त चरण को, सुखका बहता सोता ॥४॥

ॐ ह्रीं श्री कवलाहारवर्जित जिनायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

समवशरणमें जितने तिष्ठैं, निराबाध सव रहते ।
होता नहिं उपसर्ग किसीपर, घातक कर्म क्षय-ते ॥
अनुपसर्ग यह अतिशय भारी, अर्हंत इससे शोभै ।
पूजे इनके चरण कमलको, शिवकमला मन लोभै ॥५॥

ॐ ह्रीं सर्वोपसर्गरहिताय जिनायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

परमौदारिक देह होगई, निर्मल फटिक समाना ।
सप्त धातुमल वर्जित शोभे, देखत चित्त लुभाना ॥
चारों दिशामें आनन दीखे, सबको निज निज ओरी ।
चतुरानन यह अतिशय जिनके, पूजो पद कर जोरी ॥६॥

ॐ ह्रीं श्री चतुरानन जिनायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जितनी विद्या जगमें सबही, केवल ज्ञान समानी ।
कहलाते यों सर्व विद्याधिप, पूजें नर सुर नारी ॥

विश्व विद्येश्वरता यह अतिशय घातिक्षयसे होता।
पूजो अर्घ चढाकर जिनवर, पावो सुखका सोता ॥७॥
ॐ ह्रीं श्रीं सर्वविद्येश्वराय जिनायार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

देह उदारिक नहिं है ऐसा, जिसकी नही हो छाया।
श्री जिनके तो घाति क्षयतें, हो गई निर्मल काया॥
छाया नही है पडती इससे, अतिशय जगमें शोभे।
पूजे जो जिनवर चरणोंको, मुक्ति रमाको लोभे॥ ८॥
ॐ ह्रीं श्री छायारहित शरीर धारकाय जिनायार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

देवोंके आंखोंकी पलकें, लगती नहिं है जैसे।
श्रीजिनके भी लगते नहीं हैं, रहते देवों जैसे॥
नर होकर भी देव इसीसे, जग कहता है जिनको।
पलनस्पन्दन रहित विराजैं, अर्घ चढाओ इनको॥६॥
ॐ ह्रीं पलनस्पन्दरहिताय जिनदेवायार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

देह मलिन होनेसे निशदिन, केश नखादिक बढते ।
घातिक्षयतैं देह निर्मली, हो गई धातुक्षयतें ॥
बढते नहिं हैं केश नखादिक, समता धरके रहते ।
समनख केश सुहाता अतिशय, अर्घ चढाओ भनते ॥१०॥

ॐ ह्रीं समप्रसिद्धनखकेशाय जिनायार्घं निर्वपामि स्वाहा)

समुच्चय अर्घ ।

दोहा— अतिशय दश यों होत हैं, घाति कर्म हो नष्ट ।
इन विशिष्ट जिन पूजिये, मिटे कर्म का कष्ट ॥

ॐ ह्रीं श्री घातिकर्मक्षय-जात दशातिशय शोभित जिनायार्घं नि० स्वाहा

अथ देवकृत चौदह अतिशय ।

प्रत्येक अर्घ । २ लघु १ गुरु ।

जिनकी ध्वनि हो सबको सुखदा, विसतार करे मगधा सुरता ।
वह अर्ध हुई जिन उच्चरिता, वह अर्ध हुई मगध-प्रसृता ॥१॥

ॐ ह्रीं अर्धमागधी भाषातिशय शोभित जिनायार्घं निर्वपामि स्वाहा।

सब मित्र बनैं समभाव धरैं, उपकार करें सबका सबही ।
सद्भाव परस्पर हो निकले, जिनदेव तथा सुरके बलही ॥२॥

ॐ ह्रीं श्री सर्व जीव मैत्री विधायकाय जिनायार्घं निर्वपामि स्वाहा।

ऋतु आय करैं सबही अरचा, फल फूल खिले सब नित्य रहैं।
तरु भी जिन भक्ति विकास करैं, जिनदेव सुपाद निवास करैं ॥३॥

ॐ ह्रीं सर्वर्तु फल पुष्प विधायकाय जिनायार्घं निर्वपामि स्वाहा।

जिनराज विहार जहां करते, सुर रत्नमयी धरती करते।
सित दर्पण की तुलना धरती, धरती मोहनता धरती ॥४॥

ॐ ह्रीं दर्पणतलवन्निर्मल रत्नमयी पृथिवी कारकाय जिनायार्घं नि० स्वाहा।

अनुकूल गती धरती सुरभी, पवन प्रगती चलती सुर-भी।
सब जीव रहें सुखिया उससे, जिनदेव विहार करैं जिससे ॥५॥

ॐ ह्रीं अनुकूल सुगन्ध मंद पवन प्रेरकाय जिनायार्घं निर्वपामि स्वाहा।

जिननाथ विहार-गता परमा, सुषमा अवलोक जना सुमना ।
अति मोद धरैं सुख मग्न रहैं, करते विधि सो सुमना सुमना ॥६॥

ॐ ह्रीं सर्वजनानन्दकराय जिनायार्घं निर्वपामि स्वाहा ।

मरुतासुर भक्ति धरैं मनमें, सुरभी करते धरती पथमें ।
नहिं कंटक कीटक धूलि तृणा, रखते जिनके सुविहार समा ॥७॥

ॐ ह्रीं उपशमित धूलि कंटक कीटक तृणाय श्री जिनायार्घं नि० स्वाहा ।

स्तनितासुर भक्ति भरे मनसा, करते सुरभी जल की वरषा ।
बिजली चमके धनु-इन्द्र धरे, दिश नारि सहास विलास करे ॥८॥

ॐ ह्रीं स्तनित कुमार कृत गंधोदक वृष्टि अतिशय धारकाय जिनायार्घं नि० ।

जिनजी पद न्यास करैं जबही, सुर भक्ति करैं नत हो तब ही ।
तलमें रचि कांचन पुष्प धरैं, वर केसर पद्मपराग धरैं ॥९॥

ॐ ह्रीं गमनकाले कांचनपुष्पोपरि पदधारकाय जिनायार्घं नि० ।

सब जातिय धान्य फलैं सुखदा, उससे भरिता मनु मोद-रता ।

जिननाथ विहार विलोक मही, करती नृत्य सुहर्ष लहो ॥१०॥
ॐ ह्रीं सर्व प्रकार धान्य समृद्धि कराय जिनायार्घं नि०।

सरिता सर निर्मल हों सबही, गगनांगन स्वच्छ विकार नहीं।
रज तामस दोष नशौ दिशका, जिनराज विहार करैं सुखका ॥११॥
ॐ ह्रीं निर्मलाकाश विधायिने श्री जिनायार्घं नि०।

'जिनजी हैं सुखदायक सबको, सब आकर सेव करो इनको।
कहते अति उच्च सुरा असुरा, त्रिदशाधिपके अनुगा दिविगा ॥१२
ॐ ह्रीं जनाह्वाननरतसुरसेविताय जिनायार्घं नि०।

रविकी द्युति मात करै करसे, सत रत्न जडे अपने तनसे।
सुसहस्र अरा रुचिरा प्रजलै, सद्धर्म सुचक्र अगार चलै ॥१३॥
ॐ ह्रीं सुधर्मचक्राग्रगामिने श्री जिनायार्घं नि०।

शुभ दर्पण आदिक मंग-लसा, वसु दर्व लिये निजके शिरसा।
चलते असुरा जिन अग्र मुदा, नत हो गुण में लवलीन सदा ॥१४॥

ॐ ह्रीं मंगलाष्टक धारि सुर सेविताय जिनायार्घं नि०

समुच्चय अर्घ । घत्ता ।

अतिशायि चतुर्दश देव करैं, जिनपुण्य मरुत्-प्रतिघात धरैं ।
इनको हम पूजत आनन्दसे, शिवधाम वरैं गुण धारणसे ॥१५॥

ॐ ह्रीं देवकृत चतुर्दशातिशयधारकाय श्री जिनायार्घं नि०।

अष्ट प्रातिहार्य युत जिनको अर्घ । शिखरिणी छंद ।

नशाता शोकोंको अरुण मृदु पत्ते मन हरैं,
धरे वैडूर्योंसी सुभग सुषमा स्कन्ध जिसका ।
सुछाया देता जो जन शरण आते दुख भरे,
अशोकाग श्रेयान् जिनवृषभ राजैं उसतले ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री अशोक वृक्ष सहिताय श्रीजिनायार्घं नि०।

सुरत्नों की राशी चमक करती शोभित तना,
धरें हैं माथों पै चतुरदिक सिंहा-सनमना ।

बना है जो सिंहासन मणि शिलासे अनुपमा ,
विराजैं ऊंचे ही अधर जिन ईशा उपरमा ॥२॥

ॐ ह्रीं सिंहधृत सिंहासनोपरि विराजमान श्री जिनायार्घं नि०

धरैं है सोनेका अति वृहत् दंडा मणि जडा,
लगे हैं सन्मुक्ता मणि विविध रत्नांशु निबिडा।
बतावैं त्रैलोक्याधिपति जिन हैं श्रेष्ठ सबते,
चले आये सेवा शशि रवि मनो छत्र कहते ॥३॥

ॐ ह्रीं श्री छत्रत्रय विराजमान श्री जिनायार्घं नि०।

जिनोंके आभूषा द्युति करत हैं सर्व दिशमा,
कुई के फूलोंसे सित चमर ढोरैं सुर जना।
बतावे लोकोंको नमन करते जो जिनवरा,
गती ऊंची पाते नर सुरपती हो शिवधरा ॥४॥

ॐ ह्रीं श्री चतुः षष्टि चमर वीजित श्री जिनायार्घं नि० ।

हता जैसे अंभोनिधि पवन से शब्द करता,
बजाई देवोंसे विविध शुभ वीणादि सहिता ।
करैं वैसो मन्द्र ध्वनि नभगता दुंदुभि महा,
कहै है लोकोंको यह जिनप है कर्मरिपु-हा ।

ॐ ह्रीं श्री देव दुन्दुभी कृत विजय सूचना सहिताय जिनायार्घं नि०

वखैरे फूलोंको सुर असुर आकाश तलसे,
बताते लोकोंको जिन वचन होते कुसुमसे ।
करैं वे सर्वत्र प्रचुर सुरभी भूमि तल को,
चलै मंदी ठंडी पवन सुखदा सर्व जनको ॥८॥

ॐ ह्रीं शीतल मंद सुगंध पवन प्रेरित पुष्पवृष्टि शोभित जिनायार्घं नि० ।

मिले सूर्या चन्द्रा सम समय एकत्र जगमें,
मिटा रात्रिं दैनं विभजन सदाको उस समै ।

दिखैं है भव्योंको निज निज भवा सात उसमें।
धरै आभा भामंडल सुभग एसा जिनतना ॥७॥

ॐ ह्रीं भामंडल प्रातिहार्य युताय जिनायार्घं नि० ।

नशाती जीवों का हृदय गत अज्ञान जडसे,
दिखाती तत्त्वों का सद असद रूपत्व सुखसे।
पयोधारो मेघध्वनि करत जैसी ध्वनिभवा,
लसै जैनी वाणी गुणगणभरी जीव सुखदा ॥८॥

ॐ ह्रीं सर्व जीव हितंकर दिव्य ध्वनि सहिताय जिनायार्घं नि० ।

समुच्चय अर्घ । दोहा ।

अशोक वृक्षादिक भये, प्रातिहार्य शुभ आठ।
इनसे शोभित जिन भजो, जलें सर्व विधि-काठ ॥

ॐ ह्रीं अष्ट प्रातिहार्य शोभित श्रीजिनायार्घं निर्वपामि स्वाहा ।

अनंत चतुष्टयके अर्घ ।

आच्छाद ज्ञानावरणी करै था, होने न देता निज पूर्ण बोध ।
फेंका उसे मूल उखाड देके, पाया जिनेंद्रा तव नंत बोध ॥१॥

ओं ह्रीं अनंत ज्ञानधारकाय श्रीजिनायार्घं नि० ।

सामान्य दृष्ट्यावरणी जिनों ने, नाशा तपस्या बलसे समूल ।
पायी तबै क्षायिक दृष्टि शक्ती, पूजो जिनेंद्रा अखिलज्ञ दृष्टी ॥२॥

ओं ह्रीं श्री क्षायिक अनंत दर्शन सहिताय जिनायार्घं ॥२॥

नाशा सबोंका नृप मोहनीय, पाया तबै नाम सुवीतरागी ।
भोगैं इसीसे सुख राशि नंता, पूजो जिनेंद्रा निज सौख्य–रंता ॥३॥

ओं ह्रीं श्री अनंत सुख राजित जिनायार्घं निर्वपामि स्वाहा ॥३।

शक्ती विनाशै विधि अंतराय, नाशा उसे वीर जिनेंद्रने है ।
पायी अनंता निजवीर्य शक्ती, पूजो जिनेंद्रा बहुभाव भक्ती ॥४॥

ओं ह्रीं श्री अनंतवीर्य शक्ति शोभित जिनाय अर्घं नि० ।

समुच्चय अर्घ।

दोहा—अनंत चतुष्टयके धनी, वीतराग सर्वज्ञ।
पूजे इनको अर्घसे, बन जाये सर्वज्ञ॥

ओं ह्रीं श्री अनंत चतुष्टय राजित जिनायार्घं निर्वपामि स्वाहा।

जयमाल।

चाल—मोतियादाम छंद

रहा जब पुद्गल अर्ध भवांत, हुआ तब सम्यग दर्शन सांत।
चला क्रम उन्नतिका सब ओर, लगे मिलने शुभ कारण जोर॥१॥
अनादि लगे सब कर्म समूह, विनाशन होन लगा उन व्यूह।
प्रभाव पडा सब मध्य अगार, कुदर्शन वीर छिपा तिंह वार॥२॥
छिपे उस संग कषाय अनंत, पडी भगदौड डरे बलवंत।
दिखी जब शक्ति हुई कम जीव, चले फिर आय मिले निरजीव॥३॥
रही बहु काल यही भग दौड, परस्पर जीतन हारन होड।

सुयोग कदाचित जीव सुपाय, किया क्षय दर्शन मोह अपाय ॥४॥
क्षये अनु बंधि अनंत कषाय, हुआ तब जीव सुखी निजपाय।
परापर भेद जगा तब नित्य, लगा करने परसे निज भिन्न ॥५॥
कषाय किये तब शांत दुबार, धरे व्रतचारित पूर्ण अपार।
प्रमाद अभाव किया सब ओर, अपूर्व हुए परिणाम सजोर ॥६॥
नशी नरकायु तिरायु सुरायु, रही तब केवल एक नरायु।
नवें गुण थान चढे मुनिराज, लगे करने क्षय कार्मणराज ॥७॥
कषाय इकादश लोभ विहीन, सु-नौ अकषाय भये सब क्षीण।
इकेंद्रिय आदि नशीं चतु जाति, सधारण आतप थावर भांति ॥८॥
सत्यान गृधो प्रचला प्रचलांश, निद्रा निदरा नरकद्विक अंश।
पशू गति युग्म सुसूक्ष्म उदोत, छतीस करे क्षय कार्मणसोत ॥९॥
क्षया दशवें अति सूक्ष्म लोभ, क्षये फिर घातक कर्म विशोभ।

हुए तव आर्हंत पूज्य जिनेश, समोसृत तिष्ठ दिया उपदेश ॥१०॥
पदार्थ कहे नव, सात सुतत्त्व, कहे छह दर्व प्रमाण नयत्व।
लगे शिव मार्ग अनंते जीव, भये सुखिया अखिलज्ञ सदीव ॥११॥
महा उपकारक आर्हंत देव, नमो जग जीव सभक्ति सदेव।
कहै 'ब्रह्मचारि सिरी' सुविनीत, सदा जिन भक्ति मिलो सुपुनीत ॥१२॥

ॐ ह्रीं श्री अर्हत्परमेष्ठिने पूर्णार्घं निर्वपामि स्वाहा।

———

श्री सिद्ध परमेष्ठि पूजा।

स्थापना शिखरिणी छंद।

जिन्होंने कर्मोंकी सब प्रकृति नाशीं सरवथा,
गुणोंका आनंत्य प्रगट तब हूआ सरवथा।
बनाया स्वात्माको निजगुणमयो साधितरमा,

बनावें वे सिद्ध निजसम मुझे आतम परमा ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्ध परमेष्ठिन् ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अथाष्टक । त्रिभंगी छंद ।

ज्ञानावरणी नाशा इससे हूए पूरण ज्ञानमयी ।
भवजालको तोडा, फिरना छोडा, सिद्ध हुए लोकाग्रमही ।
शीतल हलका मीठा निर्मल गंगाजलले भरि झारी,
भवाग्नि बुझाऊं तुम्हें चढाऊं होऊं निर्मल आत्मा री ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्ध परमेष्ठिने जन्मजरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामि स्वाहा ।

दर्शनावरणी नाशा तुमने पाई अंतर्दृष्टि महा,
सामान्यालोकन संगमें ज्ञानके, होन लगा एकत्र महा ।
केसर एला चंदनमलया संगमें पीस चढाया तुमें,
भवताप मिटाकर निज सुख देकर सिद्ध बनावें शीघ्र हमें ।

ॐ ह्रीं श्री सिद्ध परमेष्ठिने संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामि स्वाहा० ।

मोहनि नाशा, शमरस पीया, रागद्वेष मिथ्यात्व गया ।
श्रद्धा क्षायिक पाई निर्मल पूर्णभाव सम्यक्त्व भया ॥
अक्षत शशिसे सित अतिदीरघ थाल भरे तुम चरण धरें ।
क्षायिक सम्यक् दृष्टी मुझको सिद्ध बनाय स्वसमान करें ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्ध परिमेष्ठिने अक्षतान् निर्वपामि स्वाहा ॥३॥

अँतराय नाशा, वीर्य प्रकाशा, सबही बाधा दूर करी ।
शक्ति अनती पाई तुमने, इसही से गुण नंत धरी ॥
पुष्प चमेली चंपा वेला पारिजात शुभ गंध भरे ।
चढाऊं तुम पद, दीजे शिवपद सिद्धराज ! सब शक्ति भरे ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्ध परमेष्ठिने पुष्पाणि निर्वपामि स्वाहा ॥४॥

वेदनी क्षयसे वेदन निजका निराबाध सब होन लगा ।

अव्याबाधित सुखसमराज्य आत्मामें अब नित्य जगा ॥
मोदक फैनी घेवर खाजा, आदि शुद्ध नैवेद्य लिया ।
तुम्हें चढाया सिद्ध ! स्ववेदी कीजै मुझको करके दया ॥५॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्ध परमेष्ठिने नैवेद्यं निर्वपामि स्वाहा ॥५॥

आयु स्पर्द्धक नाश किये सब सूक्ष्मता गुणको पाया ।
इसके कारण ज्ञेय सभी संग एक समयमें दरसाया ॥
मणिका दीपक घृतसे भरके तुम्हें चढाया भक्तीसे ।
जानन शक्ती मेरी कीजै, जानूं सबही व्यक्ती से ॥६॥

ओं ह्रीं श्री सिद्ध परमेष्ठिने दीपं निर्वपामि स्वाहा ॥६॥

नाना विधिके स्वांग धराता रच रच करके देहों को ।
नाम कर्मको नाशा तुमने ली अवगाहन शक्ती को ॥
नाना विधकी सुरभित द्रव्यें कूट बनाई धूपों से ।

तुमको पूजा हे सिधराजा ! मुझे छुडाओ पापों से ॥७॥

ओं ह्रीं श्री सिद्ध परमेष्ठिने धूपं निर्वपामि स्वाहा ।

ऊंचा नीचा करने वाला गोत्र जलाया शक्ती से।
अगुरु लघू तव गुणको पाया, सिद्ध हुए तुम व्यक्ती से ॥
आम संतरा एला केला दाडिम आदिक फल लेके।
तुमको पूजों सिद्धपती हे ! शिवफल दीजे मल हरके ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं श्री सिद्ध परमेष्ठिने फलं निर्वपामि स्वाहा।

अष्ट कर्म को नष्ट किया तब कहने में गुण अष्ट मिले।
मिले अनंते गुण हैं तुमको कहने में नहि शक्ति चले॥
जल फल आदिक द्रव्य अष्टविध थाल भरे उत्कृष्ट लये।
तुम्है चढाये शमसुख पाये. सिद्ध होनकी उमंग लये॥

ओं ह्रीं सिद्ध परमेष्ठिने अनर्घ्य पदप्राप्तये अर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

प्रत्येक अर्घ।

ज्ञानावरोधी प्रकृती प्रणाशी, सर्वज्ञता प्राप्त करी स्वरूप।
लोकाग्रवासी अशरीर आत्मा, पूजों तुमैं सिद्ध ! स्व सिद्ध होने ॥१॥

ओंह्रीं ज्ञानावरणी कर्म रहिताय सिद्धपरमेष्ठिनें अर्घं निर्व०।

दृष्ट्यावरोधी प्रकृती प्रणाशी, हो सर्वदृष्टा निजरूपदृष्टा।
लोकाग्रवासी अशरीर आत्मा, पूजों तुमैं सिद्ध ! स्व सिद्ध होने ॥२॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनावरणी कर्मरहित सिद्ध परमेष्ठिने अर्घं नि०।

बाधाप्रदायी विधि वेदनीको, नाशा, अबाधागुण प्राप्त कीया।
लोकाग्रवासी अशरीर आत्मा पूजों तुमैं सिद्ध ! स्वसिद्ध होने ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्री वेदनीय कर्मरहिताय श्री सिद्ध परमेष्ठिने अर्घं निर्वपामि स्वाहा।

सम्यक्त्व पाया क्षय मोहनीको, शांती मिली अक्षय शुद्धरूपा।
लोकाग्रवासी अशरीर आत्मा, पूजों तुमैं सिद्ध ! स्वसिद्ध होने ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं श्रीमोहनीय कर्म रहिताय सिद्ध परमेष्ठिने अर्घं निर्वपामि स्वाहा।

कर्मांधु नाश। गुण सूक्ष्म पाया, पाया अमूर्तत्व स्वतंत्रता भी।
लोकाग्रवासी अशरीर आत्मा, पूजों तुमें सिद्ध! स्वसिद्ध होने ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं श्री आयु कर्म रहिताय श्री सिद्ध परमेष्ठिने अर्घं निर्वपामि स्वाहा।

नाम प्रणाशा अवगाह शक्ती, पायी समाये इकमें अनंता।
लोकाग्र०। पूजों तुम्हें०। ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं नाम कर्मरहिताय श्री सिद्ध परमेष्ठिने अर्घं निर्वपामि स्वाहा।

गोत्र प्रणाशा अविनाश हूए, पायी महत्ता अगुरूलघुत्व।
लोकाग्रवासी अशरीर आत्मा, पूजों तुम्हें सिद्ध! स्वसिद्ध होने ॥७॥

ॐ ह्रीं श्री गोत्र शरीर रहित सिद्धपरमेष्ठिने अर्घं निर्वपामि स्वाहा।

नाशांतराया गुण वीर्य पाया, शक्ती अनंती प्रगटी सदा ही।
लोकाग्रवासी अशरीर आत्मा, पूजूं तुम्हें सिद्ध! सुसिद्ध होने ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं श्री अंतराय कर्म रहिताय सिद्ध परमेष्ठिने अर्घं निर्वपामि० ।

समुच्चय अर्घ ।

दोहा—द्रव्यभाव मल नष्ट कर, पाये गुण हैं नंत ।
"श्री" को भी वह दीजिये, सिद्धराज भगवंत ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं द्रव्यभाव कर्ममलवर्जित सिद्धपरमेष्ठिने अर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

जयमाल ।

जब कर्म कलंक विनाश करै, निज रूप सुशुद्ध विकाश करै ।
उपयोगमयो यह जीव सदा, पर कर्म अधीन अनादिपरा ॥१॥
इनके वश पाय महा दुखको, भ्रमता फिरता गति चारहिको ।
निजको जब साध्य बना मनमें, चलता जिनराज कहे मगमें ॥२॥
तब साधन नेक प्रकार गहे, निजरूप शनैः सुविशुद्ध करे ।
तब सिद्ध कहैं जगमें इसको, सब ही नमते फिर हैं इसको ॥३॥

इसमें न रहै परका कुछ भी, निजरूप सुरूप धरै नित ही ।
इसके सुखको कह कौन सकै, अनुभूति करै वह जान सकै ॥४॥
न घटै, न वढै, रहता इकसा, प्रतिरोध न हो सकता इसका ।
इसमें दुखका नहि लेश कभी, अवसान न होसकता कवही ॥५॥
सब काल रहै यह शाश्वत है, परके न कभी यह आश्रित है ।
इसका परिमान न है कुछभी, अन अंत कहैं चुप हों सब ही ॥६॥
यह इंद्रियके वशसे पर है, विषयाश्रित नाहि, स्व आश्रित है
नहि भूख लगै सिधको कब ही, नहि प्यास असात करै कब ही ॥७॥
इससे नहि पौद्गल खाद्य चहैं, नहि पुद्गलका रसपान चहैं ।
चखते सुख स्वाश्रित तृप्त रहें, फिर क्यों पर,-आश्रय चाह करैं ॥८॥
श्रमका नहि खेद सतात उन्हें, फिर नींद विछावन क्यों हि चहैं ।
जिसके नहि रोग उपद्रव है, वह औषधको क्या चाहत है? ॥९॥

किरणें रविकी तम नाश करैं, फिर दीपक कौन तलाश करै ? ।
इतनी महिमा जिन सिद्धनिकी, नमते उनको सब सज्जन ही ॥१०॥
नय संयम दर्शन ज्ञान तपा, चरितादि अनेक अपेक्षतया।
जितने विध सिद्ध कहे श्रुतमें, उनका यश,फैल रहा जगमें ॥११॥
भव भूत भविष्यत काल भवा, सब सिद्ध नमो जगतीन भवा।
गुण दें मुझको करके सुकृपा, विनती कर "श्री" कहता सुख पा ॥१२॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धपरमेष्ठिने पूर्णार्घं निर्वपामि स्वाहा ।

श्री आचार्य परमेष्ठि पूजा।

गणका रक्षण शिक्षण करते, दीक्षा दे जगका उद्धार।
रहें आतमरत करें देशना, प्रायश्चित दे शुद्ध अपार॥
ऐसे सूरि भूरिगुणभूषित, नाना विधके तप करतार।
आय विराजो मेरे हृदिमें, पूजनकी है उमंग अपार॥ १॥

ॐ ह्रीं षट्त्रिंशगुण समृद्ध आचार्य परमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

सिद्धगुणोंके भक्त, उनको नित्य चहें।
करि प्रमादको दूर, ध्यान सुमग्न रहें।
ऐसे सूरि महान्, मैं उनको पूजूं
जल ले प्रासुक श्रेष्ठ, पाद प्रक्षाल करूं॥ १॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य परमेष्ठिने जलं निर्वपामि स्वाहा।

रागदोष किया दूर, रत्नत्रय पालें।
परिमित सत्य सुमिष्ट, हितकारी बोलें।
ऐसे सूरि महान, मैं उनको पूजूं
चंदन केशर चर्च, भवका ताप हरूं ॥ २ ॥ चंदनं।
करते नित्य प्रकाश, मुनिगुणका जगमें
जिनशासन माहात्म्य, मानों मूर्ति धरैं।
ऐसे सूरि महान, मैं उनको पूजूं।
सित दीरघ अक्षत ले, अक्षत पदहि धरूं ॥ ३ ॥ अक्षतं
मोह कर दिया दूर, काम भगा इससे।
निज नृपको देख भगा, सैना भी भगदे।
ऐसे सूरि महान, मैं उनको पूजूं
पुष्प विविध बहु लाय, काम विनाश करूं ॥ पुष्पं।

प्रशस्त शुद्ध विवहार, हृद्गत शुद्धि कहे ।
उग्र तपस्या लीन, परीषह विजय करें ।
ऐसे सूरि महान, उनको मैं पूजूं ।
नेवज बहुविध लाय, क्षुधको दूर करूं ॥ नैवेद्यं ।

सब इंद्रियको जीत, आशा भी जीती ।
कुमार्ग करें परिहार, पाप विनाश करें ।
ऐसे सूरि महान, मैं उनको पूजूं ।
दीपक घृतके जोर, तम अज्ञान हरूं ॥ दीपं ।

करैं सतत स्वाध्याय, आतम मैल हरें ।
अनशनादि तपधार, वसु विधि-काठ दहें ।
ऐसे सूरि महान, मैं तुमको पूजूं
धूप दशांग चढाय, इंधन कर्म दहूँ ॥ धूपं ।

शिष्योंका चारित्र देखें शिथिल कभी।
दे सात्विक उपदेश, करते शुद्ध तभी॥
ऐसे सूरि महान, मैं तुमको पूजूं।
सरस सुपक्व फल ले, शिवफल प्राप्त करूं॥ फलं।
छत्तिस गुण सम्राट् तपका छत्र धरैं।
मूर्तिमंत चारित्र, ज्ञान दृष्टि चमरैं।
ऐसे सूरि महान, मैं तुमको पूजूं।
अर्घ अनर्घ चढाय, स्व-पद अनर्घ बरूँ।

ॐ ह्रीं श्री आचार्य परमेष्ठिने अर्घं निर्वपामि स्वाहा॥ ९॥

प्रत्येक गुणका अर्घ।

गणको रत चारितमें करते, निज भी उसमें रत हो रहते।
अतिचार विना चरणाचरते, उन सूरि पदा हम हैं नमते॥ १॥

ॐ ह्रीं आचारवत्त्वगुण धारक आचार्य परमेष्ठिने अर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

तप आदिक पंच अचार वढे, जिन आश्रय पा मति धर्म चढे ।
गुणके सु अधार रहैं सततं, उन सूरिपदाब्ज नमौं सततं ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं आधारवत्त्वगुण धारक सूरये अर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

विवहार सभी विध जानत हैं, द्रव काल सुभाव पिछानत हैं ।
श्रुतमोदित प्रायस-चित्त विधा, गणशोधक सूरि नमौं त्रिविधा ॥

ॐ ह्रीं व्यवहारित्त्व गुणधारक सूरये अर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

मुनि ग्लान जरायुत दुर्बल हों, ब्रत चारित पालन शक्त न हों ।
उन सेव अखेद करें मनसे, प्रतिकारक सूरि नमों मनसे ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं प्रतिकारकगुण सहिताय सूरिपरमेष्ठिने अर्घं नि० ।

परिवर्तन पंच वता करके, जगमें सु अपाय दिखा करके ।
ब्रतमें दृढता करते मुनिके, जगतारण सूरि यजों नमिके ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं अपायोपायिदृग्गुणाधारि सूरये अर्घं निर्व० ।

मुनिके चितमें कटु शल्य भरे, दृढता दिखला सब दूर करे ।
निरशल्य बना व्रतमें रखते, उत्पीलक सूरि नमों मनतें ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं उत्पीडक गुणधारिणे सूरये अर्घं नि० ।

गणके व्रतरक्षण की सुविधा, श्रुत अध्ययनादिक हों सुखदा ।
करते सदुपाय सदा हितका, सुखकारि नमों पद सूरिनिका ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं सुखकारि सूरये अर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

मुनि दोष कहें, सुनि मौन गहें, कहते न कभी उनको परसे ।
अपरिस्रवता गुण धारक हैं, जय सूरि नमों शुधिकारक हैं ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं अपरिश्रावि गुणधारिणे सूरये अर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

समुच्चय अर्घ ।

आचारि आदि गुणधनी, अष्ट कर्मके शत्रु ।

सूरि जजों नित भावसे, नाशो कर्म सुशत्रु ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं आचारी आधारी व्यवहारी प्रकारक अपायोपायदिक उत्पीडक सुखकारी अपरिश्रावी विशेष विशिष्टाय सूरये अर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

अथ दश स्थितिकल्पाः ।

तजे वस्त्र होती परीणाम शुद्धी, न होती किसी वस्तुमें आत्मगृद्धी ।
सुखी हो तपस्वी दिशा वस्त्र धारे, नमों सूरि आचेलताको संभारे ॥

ॐ ह्रीं आचेलक्य गुणधारिणे सूरये अर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

न उद्दिष्ट आधादि दोषी अहारा, करें वे सदा शास्त्रके आनुसारा ।
लगावें कभी नांतराया समस्ता, नमों सूरि माथें लगा युग्म हस्ता ॥

ॐ ह्रीं औद्देशिकाहार त्यागिने सूरये अर्घं नि० ।

गहैं ना कभी पिंड शय्याधरोंका, वसीती बनायी सुधारी जिनोंका ।
वतायी जिन्हे उनोंका अहारा, तजें सूरिपादा नमोऽस्तू हमारा ॥

ॐ ह्रीं शय्याधरेश पिंडोज्झन गुणधारिणे सूरये अर्घं नि० ।

गहैं ना कभी पिंड राजाघरोंका, वहां गये हो बाध नानाविधीका ।
निराबाध चारित्र पालें यतीका, नमों सूरिपादा त्रिगुप्ती पतीका ।

ॐ ह्रीं राजपिंडोज्झनगुणनिरताय सूरये अर्घं निर्वपामि ० ।

धरैं नम्रता उच्च चारित्रधारी, करैं सेव जो साधु होवे दुखारी ।
कृती कर्म पालें सदा सावधाना, नमो सूरिपादा गुणोंके निधाना ॥

ॐ ह्रीं कृती कर्म निरताय सूरिपरमेष्ठि ने अर्घं निर्वपामि० ।

त्रस स्थावरादी छहो जीवकाया, भली भांति जानैं न हिंसैं कदीवा ।
व्रतारोप चाहै बनावैं व्रती हैं, नमों सूरिपादा व्रतारोपणी हैं ॥

ॐ ह्रीं व्रतारोपणकर्त्रे सूरये अर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

गुणोंमें व्रतोंमें सदा ज्येष्ठ वे हैं, अतीचार भी ना लगाते कभी हैं ।
कहाते इसीसे सदा ज्येष्ठ वे हैं, नमों सूरिपादा स्थिती कल्प वे हैं ।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठतागुणधारिणे सूरये अर्घं निर्वपामि स्वाहा।

करैं रात्रिदैनं द्विसप्ताह मासा, चतुर्मास सांवत्सरी प्रातिकर्म।
रखें शुद्ध होने सदा भावनाको, नमों सूरिपादा सदा साधुकर्म।

ॐ ह्रीं प्रतिक्रमधारिणे सूरयेऽर्घं निर्वपामि स्वाहा।

रहें ग्राम जैसा लघू वा बडासा, दिना तीन सप्ताह वा पक्ष मासा।
न मोहैं विलोकैं सुभीता कदा ही, तजें वादको सूरिपादा सदा ही।

ॐ ह्रीं दिनत्रय सप्ताह पक्ष मासपर्यंत एकत्रवासिने सूरये अर्घं निर्व०।

चतुर्मासमें योग वर्षा धरैं हैं, न हो जंतुबाधा विहारा तजैं हैं।
सदा जीव रक्षा करैं सावधाना, नमों सूरिपादा गुणोंके निधाना॥

ॐ ह्रीं वर्षायोगनिरताय सूरये अर्घं निर्वपामि स्वाहा॥१८॥

समुच्चयार्घं।

कल्पस्थिति दशभेद हैं, उनके धारक सूरि।
जजों अर्घ लेकर त्रिधा, जो गुणसागर भूरि॥

ओं ह्रीं आचेलक, औद्देशिक, शय्याधरेश पिंडत्याग, राजपिंडोज्झन, कृतिकर्म, व्रतारोपण, जेष्ठता, प्रतिक्रमण, मासवासी, चतुर्मासवासी इति दश स्थितिकल्प धारकाय सूरये अर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

चतुरंग अहार तजैं तब ते, जब पालत आवलि आदि व्रते ।
उपवास करें करिके सुमना, हम पूजत सूरिगुणाभरना ॥

ओं ह्रीं अनशन तपोरताय सूरये अर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

भरि पेट अहार करें न कभी, इक आदि गिरास सु ऊन सभी ।
अवमोदर जो तप धारत हैं, उन सूरिपदों शिरनावत हैं ॥

ॐ ह्रीं अवमोदर्य तपोरताय सूरये अर्घं नि० ।

परिसंख्यन वृत्ति धरें मनमें, अनुसार अहार मिलें करलें ।
अथवा न मिले उपवास करैं, हम सूरिपदाब्ज प्रणाम करैं ।

ओं ह्रीं वृत्तिपरिसंख्यान व्रतरताय सूरये अर्घं ।

रसमें नहिं प्रीति धरें कब ही, परित्याग करें सब वा कुछ ही ।

रसत्याग तपोनिधि सूरि महा, उनके हम पाद जजैं अघ–हा ॥

ओं ह्रीं रसपरित्यागतपोनिधये सूरये अर्घं० ।

शयनासन नित्य विविक्त धरैं, सब जीव सुरत्तण भाव धरैं ।

निज–ध्यान धरैं सततं सुखदा, हम सूरि नमैं जगमें मुददा ॥

ॐ ह्रीं विविक्त शय्यासन तपोधारकाय सूरये अर्घं० ।

विविधासन धारि करैं तप हैं, न किलेश जरा तन भावत हैं ।

तपमें रत सूरि रहैं नित हैं, हम पूजत शाश्वत राज लहैं ॥

ॐ ह्रीं कायक्लेशतपोधारकाय सूरये अर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

समुच्चयार्घ । दोहा ।

बहिरंग तप छह बिध कहा, पालैं सूरि प्रशस्त ।

उन्हें जजों मैं भावसों, होऊं जो आश्वस्त ॥

ॐ ह्रीं षड्विध बहिरंग तपो रताय सूरये अर्घं नि०।

आलोचनको आदि दे, प्रायश्चित नो भेद ।

तिनके पालक सूरि को, जजों होउ निरखेद ॥

ॐ ह्रीं प्रायश्चित्त तपोधारकायाचार्याय अर्घं नि०।

चार भेद हैं विनयके, पालैं विन अवसाद ।

सूरि सुगुणधारक यती, जजों तिहारे पाद ॥

ॐ ह्रीं विनयतपोधारकायाचार्यायार्घं नि०।

वैयावृत्य दश भेद हैं, अंतरंग तप श्रेष्ठ ।

इसको पालैं सूरि नित, उन्हें जजों वे ज्येष्ठ ॥

ॐ ह्रीं वैयावृत्यतपोरतायाचार्यायार्घं नि०।

पंच प्रकार स्वाध्यायको, करते नित सावधान ।

स्व-पर-हितैषी सूरिको, जजो नित्य मतिमान ॥

ॐ ह्रीं स्वाध्यायनिरतायाचार्यायार्घं नि०।

दुर्ध्यानों को छोडकर, करते नित सद्ध्यान ।

आत्मीक सुखमें मगन, सूरि जजों धरि ध्यान ॥

ॐ ह्रीं सद्ध्यानतपोनिरतायाचार्यायार्घं नि० ।

निज तनकी ममता तजें, भावैं स्वपर विवेक ।
तप व्युत्सर्ग धरैं सदा, सूरि नमों सविवेक ॥

ॐ ह्रीं व्युत्सर्ग तपोनिरतायाचार्य परमेष्ठिने अर्घं नि०।

अन्तरंग तपमें निरत, अन्तरंग सुख लीन ।
जजो सूरि गुरु चरणकों, होवो निज आधीन ॥

ॐ ह्रीं षड्विधांतरंगतपोरतायाचार्याय अर्घं नि०।

छंद त्रोटक ।

सुखमें दुखमें समता धरते, तृन कंचन एक समा गिनते ।
थुति निंदन भेद लहैं न कभी, समताधर सूरि जजो सब ही ॥

ॐ ह्रीं समतावश्यक धारकायाचार्यायार्घं नि०।

जिन देव गुणाधिप जान सही, थुतिमें रत हो रहते नित ही ।

स्तुति धारक सूरि नमो सततं, मम सौख्य विकास करो सततं ॥

ॐ ह्रीं जिनस्तवावश्यक निरतायाचार्यपरमेष्ठिने अर्घं नि०।

नित वंदन आर्हंत अन्तिमका, करते विनयी वन सन्मतिका ।
सतवंदन-रक्त सुसूरि नमो, भवके सव संचित पाप वमो ॥

ॐ ह्रीं जिन वंदनावश्यकरताय सूरयेऽर्घं नि०।

जिन आगमका नित पाठ करें, निजरूप सुचिंतन लीन रहें ।
करते विकथा न कभी दुखदा, सत सूरि पदाब्ज नमो सुखदा ॥

ॐ ह्रीं स्वाध्यायावश्यक निरतसूरये ऽर्घं नि० ।

प्रतिकर्म करें निज शुद्धि धरें, अवलोकन नित्य स्वरूप करें ।
रहते निरदोप सदा व्रतमें, सत सूरि पदाब्ज नमो मनतें ॥

ॐ ह्रीं प्रतिक्रमणावश्यक निरत सूरये ऽर्घं नि०।

तनमें न ममत्व रखें कवहीं, निज आतमको समझें निज ही ।
तनका उतसर्ग सदा धरते, सत सूरि जजों द्रवभावनिते ॥

ॐ ह्रीं कायोत्सर्गावश्यकनिरत सूरयेऽर्घं निर्व०।

समुच्चयार्घं ।

दोहा—आवश्यक पालैं सदा रहते व्रतमें लीन ।
जजो सूरिके पद कमल, पद पावो स्वाधीन ॥

ॐ ह्रीं षडावश्यक निरत सूरयेऽर्घं निर्वपामि०।

जयमाल । दोहा ।

छत्तिसगुणके अधिप तुम, हे आचार्य महान ।
ये गुण मुझको भी मिलैं, दीजे वह वरदान ॥१॥

छंद इंद्रवज्रा

सद्दर्शन ज्ञान चरित्र वीर्य, आचार पांचो तपके समंत ।
पालैं स्वयं जो गणसे पलावैं, वे सूरि पादा जगको नमावैं ॥२॥
धारैं तपोंको अतिचार हीन, सद्गुप्ति पालैं दृढ आत्मलीन ।

ईर्यादि पांचों समिती धरै हैं, हिंसा किसीकी न कभी करैं हैं ॥ ३॥
सद् वाक्य बोलैं जिन शास्त्र लीन, दें देशना आत्महित प्रवीन ।
भिक्षा चरैं वे निर अंतराया, उत्पाददोषादिविहीनकाया ॥४॥
सद् ब्रह्मचर्याचरते सदा हैं, रक्खें परासक्ति न सर्वथा हैं ।
आकिंचनासक्ति धरैं सदा ही, नाशैं विकारीपरिणामता ही ॥५॥
आवश्य षड् भेद अवश्य पालैं, यों नित्य आत्मा गुणसे उजालें ।
आधार होते मुनिश्रावकोंके, निर्दोष चारित्र करैं उनोके ॥६॥
आदर्श रक्खैं सवके समीप, दूरी करैं दुःख मुनीजनोंके ।
जानैं सभी भांति जगव्यवस्था, दें द्रव्य आदो लखि प्राय-चित्ता ॥७॥
आचेलता आदि दश प्रकारा, कल्पस्थितो शास्त्र कहे नुसारा ।
धारैं महासूरि गुणाधिवासा, हरैं जनोंका जगका निवासा ॥८॥
धर्म क्षमा उत्तम आदिको जो, धारैं सदा स्वात्महितार्थसूरी ।

देवें मुझे वे गुण आत्मनीन, होऊं सदा जो गुणरत्नभूरी ॥९॥
मारा जिनोंने जगशत्रु काम, पायो निराबाध सुचित्त शांती।
संसारमें शांति वितीर्णकर्त्ता, वे सूरि होवें जगके सुभर्ता ॥१०

घत्ता।

छत्तिसगुणधारी, पापनिवारी, सर्व हितैषी जगत्राता।
सुख विस्तारैं धर्म बढावैं, ब्रह्म 'श्री' के व्रत दाता ॥११॥

ॐ ह्रीं षड्त्रिंशद्गुणधारिणे आचार्य परमेष्ठिने ऽर्घं निर्वपामि स्वाहा।

अथ श्री उपाध्याय परमेष्ठि पूजा।

स्थापना।

ग्यारह अंग पूरव चौदहको, पढैं पढावैं मुनिजनको
ज्ञानावरणी नाश करैं इम, ज्ञान दानको देकर जो ॥
पच्चीस गुणके धारक पाठक, सद्गुणकारक भव्योंको

आय विराजो यहां परमेष्ठिन्, पूजूं तुम पदपद्मोंको ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचविंशतिगुणशोभित उपाध्याय परमेष्ठिन् अत्र अवतर अवतर संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम संन्निहितो भव भव वषट् ॥

अथाष्टक ।

शीतल मिष्ट सुवासित जलसे, कंचनझारी भरि करके

जन्म जराकी अग्नि बुझाऊं, पाद प्रक्षालूं मन करके ॥

पाठक कठिन गुणोंके धारक, ज्ञाता श्रुतके अविकारी ।

देते ज्ञान सदा मुनिजनको, होते निज पर हितकारी ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं पंचविंशतिगुणसुशोभित उपाध्याय परमेष्ठिने जलं निर्वपामि स्वाहा ।

चंदन एला संग घिसाकर, केसर उसमें अतिगारी ।

चर्चत चरण कमल पाठकके, भवका ताप बुझै भारी ॥

पाठक कठिन० । देते ज्ञान० । ॐ ह्रीं चंदनं ॥ २ ॥

अक्षत अक्षत पुंज मनोहर, मुक्तासम अति स्वच्छ खरे ।
पाठक परमेष्ठीके पदतर, पुंज करत सब दुःख हरे ॥
पाठक० । देते ज्ञान० । ॐ ह्रीं अक्षतं ॥ ३ ॥

वेला चंपा पारिजात बहु, सुमन सुमन अतिसुखकारी ।
पाठक चरण चढाये मिटता, कामसूल बहु दुखकारी ॥
पाठक कठिन० । देते ज्ञान० । ॐ ह्रीं पुष्पं ॥ ४ ॥

ताजे खाजे आदि विविध बहु, नेवज लेकर भरि थारी ।
भेंट धरत श्री पाठक पदमें, क्षुधारोग मिटता भारी ॥
पाठक० । देते ज्ञान० ॐ ह्रीं नैवेद्यं ॥ ५ ॥

घृत कपूर मणिके वा दीपक, पाठक चरण चढानेसे ।
अज्ञानतिमिरका नाश शीघ्र ही, होता भक्ति बढानेसे ॥
पाठक कठिन० । देते ज्ञान० । ॐ ह्रीं दीपम् ॥ ६ ॥

दशविध द्रव्य सुगंध-कुटाकर, धूप बनाई गुणकारी।
धूपायनमें पावकके संग, खेवत कर्म जलें भारी ॥
पाठक कठिन० । देते ज्ञान० ॐ ह्रीं – .... धूपं ॥ ७ ॥

केला आम संतरा बहुविधि, ऋतु ऋतुके फल लेकरके।
श्रीपाठकके चरण चढाये, मिलता शिव सुख सुखकरके ॥
पाठक कठिन० । देते ज्ञान० । ॐ ह्रीं– .... फलं ॥ ८ ॥

आठद्रव्यका अर्घ बनाकर, पूजत भविजन भक्तीसे ।
पाठक चरणकमलके बलसे, पाते शिवसुख शक्तीसे ॥
पाठक कठिन० । देते ज्ञान० । ॐ ह्रीं– .... अर्घं ॥ ९ ॥

प्रत्येक गुणका अर्घ ।

श्री श्रुतका पहला अंग, आचारांग कहा ।
मुनिगणका आचार, जिसमें वर्ण रहा

पद हैं अठारह हजार, उनको जो जानैं ।

उपाध्याय गुणखान, पूजत सुख ठानैं ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टादश सहस्र पद परिमित प्रथमाचारांग पाठिने उपाध्याय परमेष्ठिने अर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

द्वितीय सूत्रकृत अंग, इसमें वर्ण रहा ।

व्यवहार क्रियाका रूप, निज परसमय महा ॥

पद हैं छत्तीस हजार, इनको जो जानै ।

वे उपाध्याय गुणखान, पूजत सुख ठानैं ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं षट् त्रिंशत् सहस्र पद परिमित द्वितीय सूत्रकृतांगपाठिने उपाध्याय परमेष्ठिने अर्घं नि० ॥ २ ॥

एक आदि दशरूप, जितने गणित कहे,

द्रव्योंके भेद प्रभेद, अंगस्थान कहे

पद व्यालीस हजार, इनको जो जानैं ।
वे उपाध्याय गुणखान, पूजत सुख ठानैं ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं द्वाचत्वारिंशत् सहस्र पद परिमित स्थानांग पाठिने उपाध्याय परमेष्ठिने अर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥ ३ ॥

द्रव्य क्षेत्र वा काल, भाव समान कहै,
समवाय अंग है नाम, अनुपम ज्ञान लहै ।
पद चौसट्ठि हजार, एक लाख अगरे ।
वे उपाध्याय गुणखान, जानत हैं सगरे ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं एक लक्ष चतुःषष्टि सहस्र पद परिमित समवायांग पाठिने उपाध्याय परमेष्ठिने अर्घं नि० ॥ ४ ॥

व्याख्या प्रज्ञप्ती अंग, व्याख्या करता है,
हजार साठ हैं प्रश्न, उत्तर भरता है ।

दो लाख अठीस हजार, पद इसमें शोभैं,

वे उपाध्याय सुखदान, जानत मन लोभैं ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं द्विलक्ष अष्टाविंशति सहस्र पद परिमित व्याख्याप्रज्ञप्ति पाठिने उपाध्याय परमेष्ठिने अर्घं नि० ॥ ५ ॥

गणधार तीर्थंकर आदि उत्तम धर्म महा ।

इनका व्याख्यान करै, ज्ञातृ-धर्म कहा ॥

पद छप्पन्न हजार, पांच लाख अगरे ।

वे उपाध्याय गुणखान, जानत हैं सगरे ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं पंचलक्षपट् पंचाशत् सहस्र पद परिमित ज्ञातृधर्म पाठिने उपाध्याय परमेष्ठिने अर्घं नि० ॥ ६ ॥

उपासकाध्ययनांग, श्रावक धर्म कहै ।

क्रिया कांड व्रत मंत्र, प्रतिमा आदि सवै ।

पद संख्या ग्यारह लाख, सत्तर सहस्र कही ।
जानत वे पाध्याय, पावत मोक्षमही ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं एकादशलक्ष सप्तति सहस्रपद परिमित उपासकाध्ययनांग पाठिने उपाध्याय परमेष्ठिने अर्घं नि० ॥ ७ ॥

सह उपसर्ग महा, मुक्त हुए मुनि हैं ।
उनका कथन जहां अंतकृत दश हैं ।
पद संख्या तेईस लाख, अठाईस सहस कहे ।
पढते हैं उपाध्याय, पूजत मोक्ष लहे ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं त्रयोविंशतिलक्ष अष्टाविंशतिसहस्र पद परिमित अंतकृद्दशांग पाठिने उपाध्याय परमेष्ठिने अर्घं नि० ॥ ८ ॥

अनुत्तरोपादिक अंग, वर्णन करता है ।
विजयादि भए उत्पन्न, महिमा कहता है ॥

पद हैं बानवै लाख, सहस चवालिस हैं ।
ज्ञाता पाठक जान, पूजत मुक्ति लहैं ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं द्विनवतिलक्ष चतुश्चत्वारिंशत् सहस्र पदपरिमित अनुत्तरोपपादिक अंग पाठिने उपाध्याय परमेष्ठिने अर्घं नि० ॥ ६ ॥

प्रश्न व्याकरण है अंग नष्ट मुष्टि चिंता ।
लाभ अलाभ त्रिकाल, वर्णत सह मिंता ॥
पद हैं तिरानवै लक्ष, सोलह सहस्र कहे ।
जानत पाठक गुणखान, पूजत सुक्ख लहे ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं त्रिनवति लक्ष षोडश सहस्र पद परिमित प्रश्न व्याकरणांग पाठिने उपाध्याय परमेष्ठिने अर्घं नि० ॥ १० ॥

विपाकसूत्र है अंग, कर्मविपाक कहे ।
शुभ अशुभ मंद अमंद, अनुभाग लहे ॥
पद हैं चौरासी लाख, एक कोडि अगरे ।

वे उपाध्याय गुणखान, जानत हैं सगरे ॥ ११ ॥

ॐ ह्रीं एककोटि चतुरशीतिलक्षपदपरिमित विपाक सूत्रपाठिने-उपाध्यायपरमेष्ठिने अर्घं नि० ॥ ११ ॥

दोहा—दृष्टिवादका भेद है, पूर्वांगत यह नाम ।
उपाध्याय पढते सदा, उनको सदा प्रणाम ॥ १२ ॥

ॐ ह्रीं अष्टोत्तर शतकोटि, अष्टापष्टि लक्ष; पट्पंचाशत्सहस्र पंच पदपरिमित दृष्टि वादान्तर्गत चतुर्दश भेद भिन्न पूर्वगत पाठिने उपाध्याय परमेष्ठिने अर्घं नि० ॥ १२॥

प्रत्येक अर्घ ।

द्रव्य इक्यासी भेदका वर्णन, उत्पादपूर्व है करता ।
पढैं पढावैं पाठक उसको, पूजक हो शिव-भरता ॥ १॥

ॐ ह्रीं एककोटि पद परिमित उत्पादपूर्व पाठिने पाठक परमेष्ठिने अर्घं नि० ।

सातशतक सुनय दुर्नय हैं, इनका वर्णन करता ।

अग्रायणीय पूर्वको जान, पाठक हो दुख हरता ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं षण्णवतिलक्षा पद परिमित अग्रायणीय पूर्व पाठिने पाठकपरमेष्ठिने अर्घं
निं० ॥ २ ॥

गुणपर्याय द्रव्यका वीर्य, वर्णत वीर्यानुवाद ।
जानत हैं पाठक परमेष्ठी, पूजो तजि परमाद ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं सप्तति लक्षापद परिमित वीर्यानुवाद पूर्व पाठिने पाठक परमेष्ठिने अर्घं
निं० ॥ ३ ॥

अस्तिनास्ति आदिक जे धर्म, अस्ति नास्ति है कहता ।
उसको जानै पाठक साधू, आत्मज्ञान नित वहता ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं षष्टि लक्षपद परिमित अस्ति नास्ति प्रवाद पूर्व पाठिने साधु परमेष्ठिने अर्घं

मति श्रुत आदिक भेदज्ञानके, ज्ञानप्रवाद है कहता ।
पढते पाठक साधू उसको; पूजक सुखसे रहता ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं एकोनकोटि पद परिमित ज्ञानप्रवाद पूर्व पाठिने पाठक परमेष्ठिने अर्घं

वचन गुप्तिका सबही वर्णन, सत्यप्रवाद है करता।
पढते पाठक परमेष्ठी हैं, पूजकके दुख हरता ॥६॥

ॐ ह्रीं षडुत्तरकोटि पद परिमित सत्यप्रवाद पाठिने पाठक परमेष्ठिनेऽर्घं नि०।

आत्म द्रव्यका सबही वर्णन, आत्म प्रवाद है करता।
पढते पाठक परमेष्ठी हैं, होते दुखके हरता ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं षड्विंशति कोटि पद परिमित आत्मप्रवाद पूर्वपाठिने पाठक परमेष्ठिनेऽर्घं ॥७॥

मूलोत्तर सबही कर्मोंकी, प्रकृतिका वर्णन करता।
कर्मप्रवाद पूर्वके ज्ञाता, पाठक हों सुख भरता ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं एककोटि अशीति लक्ष पद परिमित कर्मप्रवाद पूर्वपाठिने पाठक परमेष्ठिनेऽर्घं नि०।

पाप क्रियाका निषेध करै जो, प्रत्याख्यान कहाता।
ऐसे पूर्व ज्ञानका धारक, पाठक सर्व सुहाता ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्ष पद परिमित प्रत्याख्यान पूर्व पाठिने पाठक परमेष्ठिनेऽर्घं नि० ॥९॥

सात शतक गुरु पांच शतक लघु, विद्या वर्णन जिसमें।
पूर्वक दशवां विद्यानुवाद है, रमता पाठक उसमें ॥१०॥

ॐ ह्रीं एककोटि दशलक्ष पद परिमित विद्यानुवाद पूर्वपाठिने पाठक परमेष्ठिनेऽर्घं नि० ॥१०॥

कल्याणक वा उनके कारण, जो है वर्णन करता।
कल्याणवाद पूर्वके ज्ञाता, पाठक जगके भरता ॥११॥

ॐ ह्रीं षड् विंशतिकोटि पद परिमित कल्याण प्रवाद पूर्व पाठिने पाठक परमेष्ठिनेऽर्घं नि० ॥११॥

प्राणावाद पूर्व बारहवां, चिकित्सा सब विधि कहता।
जानत हैं पाठक परमेष्ठी, पूजक सुखको बहता ॥१२॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशकोटि पद परिमित प्राणावाद पूर्व पाठिने पाठकपरमेष्ठिने अर्घं नि० ॥१२॥

कला बहत्तर सब विधि क्रिया, शिल्प गुणोंकी व्याख्या।
क्रिया विशाल पूर्व है करता, ज्ञाता पाठक स्वाख्या ॥१३॥

ॐ ह्रीं नवकोटि पद परिमित क्रिया विशाल पूर्व पाठिने पाठक परमेष्ठिनेऽर्घं नि० ॥१३॥

व्यवहार वीज परिकर्म गणितका, मोक्ष स्वरूप बखानै।
तिलोक विंदु यह पूर्व चौदवां, पाठक सव विधि जानै ॥१४॥

ॐ ह्रीं द्वादशकोटि पंचाशल्लक्ष पद परिमित त्रिलोकविंदुसार पूर्वपाठिने पाठकपरमेष्ठिने अर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥१४॥

समुच्चय अर्घ।

पच्चीस गुणके धारक पाठक, नित्य पढाते गणको।
पूजत उनके चरण कमलको, पाते आत्मरम गुणको ॥

ॐ ह्रीं एकादश अंग चतुर्दश पूर्वेति पंचविंशति भेद भिन्न श्रुत ज्ञान पाठिने पाठक परमेष्ठिने अर्घं निर्वपामि स्वाहा।

जयमाल।

दोहा—पाठक परमेष्ठी सुगुण, ज्ञानध्यानमें लीन।
जयमाला उनकी कहूँ, यद्यपि मैं मतिहीन ॥

छंद—भुजंग प्रयात ।

पढाते सभी संघके साधुओं को, बढा ज्ञान देते वता अर्थ नीको ।
पढें अंग बारा, पढें पूर्व चौदा, शुभ ध्यान धारैं रहें आतममग्ना ।१
विकत्थें कभी ना रहें ज्ञान मग्ना, सदा ही पढावैं प्रमादें कभी ना ।
गुणा आठवीसा धरैं साधु के जो, निराबाध पालैं सदा मूलके जो ।२
अचारांग वाचैं कहें साधु चर्या, पढैं अंगसूत्रं क्रिया धर्मवर्या ।
कहें द्रव्य भेदप्रभेद स्वरूपा, तृतीयांग वाचैं सदा सत्स्वरूपा ।३
तुरीयांगमेंसे सदा साम्य काला-दि रूपेण माहात्म्य वांचैं विशाला ।
किये प्रश्न षष्टो हजारा गणीने, दिये उत्तरोंको पढैं भाव नीके ॥४
कहें धर्म तीर्थंकरोंका प्ररूपा, प्ररूपैं सदा श्रावकोंका स्वरूपा ।
सहा विघ्न पाया निजात्मा जिन्होंने, उनोंकी कथाको पढैं चित्त देके ।५
परीषा विजैसे विजै आदिमें जो, गये साधुके कार्य भाषैं जनोंको ।

सभी नष्ट मुष्टी अलाभादिको जो, कहै अंग बांचै सदा चित्त दे जो ।९

सभी कर्मके भेद पाकादिको जो, बतावै, पढैं अंग रात्रिंदिवं जो ।

सदा दृष्टिवादीय पूर्वादिभेदा, पढैं चित्त देके रहे हैं अखेदा ॥१०

दोहा ।

इस विध द्वादश अंगको, पढैं पढावैं नित्य ।

उपाध्याय वे सुगुरु हैं, पूजत दें "श्री" नित्य ॥८॥

ॐ ह्रीं पंचविंशति गुण गरिष्ठाय उपाध्याय परमेष्ठिनेऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

अथ श्री साधु परमेष्ठि पूजा ।

स्थापना । शिखरिणी छंद ।

हजारों रोगोंसे जननमृतिवार्धक्य दुखसे,

दुखी प्राणी देखे तब विरत हूए जगतसे ।

तजे बाह्याभ्यंतर्गत सकल संग स्वरुचि से,

बने ज्ञानी ध्यानी सुगुरुगुण साधू व्रत धरे ।

दोहा—रागद्वेषको नाशते, मूलोत्तर गुणधार ।

ऐसे साधु समाजको, पूजो वार वार ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं अष्टाविंशति गुणधारक साधु परमेष्ठिन् ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अथाष्टक ।

सुगुरु हम ध्यावैं, सुगुरु हम ध्यावैं, ध्यावत परमपद पावैं ।

परमपद पावैं, ऐसे श्री मुनिराज, सुगुरु हम ध्यावैं ॥

जलसे पूजत पाद, परम पद पावै, परम० ऐ० । सु० ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं अष्टाविंशति मूल गुणधारक साधु परमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशाय जलं नि० ॥१॥

वे तो, अतनमद मारैं, अतनमद मारैं, करते इंद्रियरोध । सुगुरु०

उनके, गंधसे पूजैं पाद, भवार्ति मिटावैं २ । ऐ० । सुगुरु हम ध्यावैं, सु० ।

ॐ ह्रीं श्री अष्टाविंशति मूल गुणधारक साधु परमेष्ठिने चंदनं नि० ॥२॥

वे तो, आवश्यक धारैं, आवश्यक धारैं, करते हैं कचलोच ।
सुगुरु हम ध्यावैं, सु० । ऐसे श्री मुनिराज सु० ।
उनके, अक्षतसे पूजैं पाद, अक्षत पद पावैं २ । ऐ० । सु० ॥३॥

ॐ ह्रीं अष्टाविंशति मूल गुणधारक साधु परमेष्ठिने अक्षतान् निर्वपामि स्वाहा ॥३॥

वे हैं, नगनतन धारैं, नगन तन धारैं ।
करते नाही स्नान, सुगुरु० । ऐसे० ।
उनको, पूजैं पुष्प चढाय । अतन मद मारैं २ । सु० । ए० ॥४॥

ॐ ह्रीं अष्टाविंशति मूलगुणधारक साधु परमेष्ठिने पुष्पं नि० ॥४॥

वे तो, महीतल सोवैं, महीतल सोवैं, घिसते नहिं हैं दांत ।
सुगुरु० । ऐसे श्री मुनि० ।
उनके, अर्चैं चरुसे पाद । क्षुधाहि नशावैं २ । सुगुरु० । ऐसे० ।

ॐ ह्रीं अष्टाविंशति मूल गुणधारक साधु परिमेष्ठिने नैवेद्यं निर्व० ॥५॥

ठाडे, अहार सु लेवैं, अहार सु लेवैं, दिनमें एकहि वार।

सुगुरु हम ध्यावैं, सुगुरु०। ऐसे श्री०।

उनको, पूजैं दीप चढाय, अज्ञान नशावैं २। सुगु०। ऐसे०।

ॐ ह्रीं अष्टाविंशति मूलगुण धारक साधु परमेष्ठिने दीपं नि० ॥ ६ ॥

वे, रूप जगतका ध्यावैं, जगतका ध्यावैं, भावैं भावनसार।

सुगुरु हम ध्यावैं०। ऐसे श्री मुनि० सुगुरु०।

उनके, धूपसे पूजैं पाद। कर्म जल जावैं २। ऐसे०। सुगुरु हम०।

ॐ ह्रीं अष्टाविंशति मूल गुणधारक साधु परमेष्ठिने धूपं निर्वपामि स्वाहा ॥ ७ ॥

वे, कठिन तप तपते, कठिन तप तपते, पालैं त्रिगुप्तीसार।

सुगुरु हम ध्यावैं २। ऐसे श्री०।

उनके, पूजैं फलसे पाद, मोक्ष फल पावैं २। ऐसे०। सुगुरु हम ध्यावैं ॥

ॐ ह्रीं अष्टाविंशति मूल गुणधारक साधु परमेष्ठिने फलं नि० ॥ ८ ॥

परमें, ममत्व निवारैं, ममत्व निवारैं, ध्यावैं आतम रूप ।
सुगुरु हम० । सुगुरु० । ऐसे० ।
पूजैं, वसुविधि अर्घ चढाय, अर्घ्य हम होवैं २ । ऐसे श्री० सुगुरु० २ । ॥६॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टाविंशति मूल गुणधारक साधु परमेष्ठिनेऽर्घं नि० ।

प्रत्येक गुणके अर्घ । छंद भुजंग प्रयात ।

छहो काय जीवों कि रक्षा करैं हैं, सदा योग तीनों स्व आधीनमें हैं ।
कषाय प्रवृत्ती करैं ना कभी हैं, वहिर्भाव हिंसा सदा ही तजो है ।

ओं ह्रीं अहिंसा महाव्रत धारक साधु परमेष्ठिने ऽर्घं नि० ॥ १ ॥

सदा मिष्ट वाणी कहैं हैं हितां की, कभी भी न निंदा करैं हैं परां की ।
कड़े निंद्य भाषैं कभी वाक्य वे ना, नमों साधु सत्यव्रतो पुण्य-वैना ॥

ओं ह्रीं सत्य महाव्रतपालक साधु-परमेष्ठिने ऽर्घं नि० ॥ २ ॥

विना दत्त वस्तु ग्रहैं हैं कभी ना, करैं याचना ना किसीसे कभी ना।
अचौर्यव्रती वे बड़े साहसी हैं, सदा शौच पालैं महा मानसी हैं ॥३॥

ओं ह्रीं अचौर्यव्रतपालक साधु परमेष्ठिने ऽर्घं नि० ॥ ३ ॥

सदा ब्रह्ममें लीन ब्रह्मव्रती हैं, पर द्रव्यमें ना कभी संरती हैं ।
धरैं शीलके भेद सर्व प्रकारा, नमों कामजेता मुनी निर्विकारा ॥४॥

ॐ ह्रीं पूर्ण ब्रह्मव्रत पालक साधु परमेष्ठि रे अर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥ ४ ॥

तजे ग्रंथ हैं बाह्य अंतः प्रकारा, निराकांक्ष शोभैं सदा निर्विकारा।
चहैं ना कभी द्रव्य त्रैलोक्य की हैं, नमों साधु निर्ग्रंथ सन्निस्पृही हैं॥

ॐ ह्रीं निष्परिग्रह महाव्रत धारक साधु परमेष्ठिनेऽर्घं नि० ॥५॥

रखैं पाद देखैं मही जीव-हीना, रहैं वे सदा जीव रक्षा प्रवीणा।
त्रसस्थावरोंकी दया नित्य पालैं, नमों साधु ईर्यापथ स्वामि चालैं ॥

ॐ ह्रीं ईर्यापथ समिति पालक साधु परमेष्ठिनेऽर्घं नि० ॥६॥

करैं देशना श्रावकोंको हितोंकी, उचारैं सदा वाणि जैन श्रुतोंकी।
कहैं ना कभी व्यर्थ भाषा किसीसे, नमों साधु भाषा समीती-रता ये॥

ॐ ह्रीं भाषा समितिरत साधु परमेष्ठिने अर्घं निर्व..ि स्वाहा ॥७॥

अदोषीक भिक्षा करैं हैं सदा ही, न लें मांतराया कुभिक्षा कदा ही।
रखैं एषणा शुद्धि पालैं स-माना, नमों साधु उद्दिष्ट भक्षैं न दाना॥

ॐ ह्रीं एषणासमिति निरताय साधु परमेष्ठिनेऽर्घं नि० ॥ ८ ॥

ग्रहैं वा रखैं वस्तु शास्त्रादि जो हैं, लखैं जंतुरक्षार्थ पीछी प्रशोधैं।
सुआदान निक्षेप पालैं समीती, प्रमादी न हों साधु पालैं सुरीती॥

ॐ ह्रीं आदान निक्षेपण समिति पालक साधु परमेष्ठिने अर्घं निर्वपामि स्वाहा।

मलत्याग मूत्रादि बाधा मिटावैं, मही जीवसे मुक्त देखें विशोधैं।
प्रतिष्ठापना पालते ना प्रमादैं, नमों साधुके पाद विश्व प्रसादैं ॥१०॥

ॐ ह्रीं प्रतिष्ठापना समिति निरताय साधु परमेष्ठिने अर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥१०॥

कहे स्पर्श अष्ट प्रकारा सभी हैं, न मोहैं कभी भी करैं ना रती हैं।
रहें स्पर्शनेंद्री विजेता सदा ही, नमों साधुवर्या रमैं आत्ममाही ॥११॥
ॐ ह्रीं स्पर्शनेंद्रिय विजेत्रे साधु परमेष्ठिने अर्घं नि० ॥११॥

न आस्वाद लेवैं रसोंके रसोंका, विजेता रहें रासनेंद्री विषोंका।
रमैं आत्मके स्वादमें वे सदा हैं, नमों साधुवर्या त्रिलोकी पिता हैं ॥१२॥
ॐ ह्रीं रसनेंद्रिय विजयकर्त्रे साधु परमेष्ठिने अर्घं निर्वपामि० ॥१२॥

न आसक्त होते सुगंधी सुखोंमें, न दुर्गंध आते करैं ग्लानि जीमें।
विजेता सदा घ्राण इंद्री रहे हैं, नमों साधु आत्मा-सुगंधी रमे हैं ॥१३॥
ॐ ह्रीं घ्राणेंद्रियविजयिने साधु परमेष्ठिने अर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥१३॥

विलोकैं कुरूपा न होते दुखी हैं, विलोकैं सुरूपा न होते सुखी हैं।
विजेता सदा चक्षुरिंद्रीयके हैं, नमों साधुवर्या बिलोकैं स्वमें हैं ॥१४॥
ॐ ह्रीं चक्षुरिंद्रियविजयिने साधु परमेष्ठिने अर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥१४॥

सुनैं शब्द मीठे न रागी बने हैं, सुनैं गालि तो भी दुखी ना बनें हैं।
धरैं साम्य निंदास्तुतीमें सदा हैं, नमो साधु कर्णेंद्रिजेता महा हैं ॥१५॥
ॐ ह्रीं श्रोत्रेंद्रियविजयिने साधु परमेष्ठिने अर्घं नि० ॥१५॥

करैं लोंच दो मास बीते जबे हैं, कभी तीन वा चार जाते चले हैं।
सदा निस्पृही कायमें जो रहैं हैं, नमो साधु लोच क्रिया स्वं वहे हैं॥१६॥
ॐ ह्रीं कचलोच मूलगुण पालक साधु परमेष्ठिनेऽर्घं नि० स्वाहा।

जली जीव बाधा न पायें इसीसे, नहावैं कभी ना किसीभी तरै से।
अहिंसा धरैं चित्त में वे दयालू, नमो साधु आत्मा गुणोंके रसालू ॥१७॥
ॐ ह्रीं स्नानवर्जन मूलगुण धारिणे साधु परमेष्ठिनेऽर्घं नि०।

मही शोध सोवैं शिला काष्ठपै वा, चहैं ना कभी कायको सुक्ख देना।
क्षिती शायिता मूल धारैं व्रती हैं, नमो साधु आत्मा गुणों में रती हैं॥१८॥
ॐ ह्रीं क्षितिशयन मूलगुण पालकाय साधु परमेष्ठिनेऽर्घं० ॥१८॥

पड़ैं अन्नके संग से जीव जो हैं, बचाने न घर्षैं कभी दांत वे हैं ॥१६॥
धरैं मूल यों वे अदंतव्रती हैं, नमों साधु के पाद जो सन्मती हैं ॥

ॐ ह्रीं अदंत घर्षण मूलगुण धारिणे साधुपरमेष्ठिने ऽर्घं नि० ॥१६॥

खड़ा हो सकूंगा स्व जंघा सहारे, करूं पाणिमें भुक्ति काया बचाने ।
स्थितीभुक्ति पालैं महासाहसी हैं, नमों साधुके पाद वे राजसी हैं ॥२०॥

ॐ ह्रीं स्थिति भोजन व्रत मूलगुण पालकाय साधुपरमेष्ठिने ऽर्घं नि० ॥२०॥

करें एक ही वार आहार पाना, प्रमादी बनैं ना धरैं ध्यान ज्ञाना ।
यही एक भुक्ती सदा काल पालैं, नमों साधुके पाद कर्म प्रजालैं ॥२१॥

ॐ ह्रीं एक भुक्ति मूलगुण पालकाय साधुपरमेष्ठिनेऽर्घं नि० ॥२१॥

दिशा वस्त्र ओढे, सभी वस्त्र त्यागे, न इच्छा करैं शीत लज्जाके लागे ।
अचेलक्य धारैं विकारी न होते, नमों साधु जो कामको हैं विगोते ॥२२॥

ॐ ह्रीं सर्वविधवस्त्ररहिताय साधु परमेष्ठिनेऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥२२॥

अरी मित्रमें लोष्ठ सोवर्णमें भी, समा बुद्धि रक्खैं विरागी सदा, हैं ।

रहैं स्वात्मलग्ना, करैं द्वेष भग्ना, नमों साम्य-मग्ना यती वे सुनग्ना ॥२३॥

ॐ ह्रीं समता आवश्यकपालक साधु परमेष्ठिने ऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥२३॥

उचारैं स्तुती तीर्थंकारी जिनोंकी, चतुर्विंश संख्या बखानी जिनोंकी।

गुणप्रीति धारैं स्व आह्लाद पावैं, नमों साधु आवश्यकस्तोत्र पालैं ॥२४॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतिजिनस्तुति निरताय साधु परमेष्ठिनेऽर्घं नि०॥२४॥

करैं बंदना वीर तीर्थंकरां की, चलै तीर्थ है आज भी सद् गिरांकी।

कृतज्ञत्वके साथ स्वानंद लेते, नमों साधु आवश्य में लीन होते ॥२५॥

ॐ ह्रीं बंदनावश्यक निरताय साधु परमेष्ठिने ऽर्घं निर्वपामि०॥२५॥

श्रुतप्रीति धारैं पढैं जैनवाणी, रहैं मग्न शाश्वत् गुणोंमें स्वज्ञानी।

कभी ना कहैं व्यर्थकी वे कथायें, नमों साधु आवश्यकोंमें रता हैं ॥२६॥

ॐ ह्रीं स्वाध्यायावश्यकरत साधु परमेष्ठिने ऽर्घं नि० ॥२६॥

चतुर्मास पक्षादि संवत्सरीमें, दिवा रात्रि में वा लगे दोष जीमें।

क्षमावैं सभीसे स्वनिंदा करैं हैं, नमों साधु आवश्यकोंको धरैं हैं ॥२७॥

ॐ ह्रीं प्रत्याख्यान आवश्यक निरत साधु परमेष्ठिनेघं ऽ नि० ॥२७॥

ममत्व त्यजैं देहमें वे सदा हैं, तपस्या तपैं चिगैं ना कदा हैं।
स्वमें लीनता धारि आनंद भोगैं, नमों साधु आवश्यकोंको सयोगैं ॥२८॥

ॐ ह्रीं कायोत्सर्गावश्यकनिरताय साधु परमेष्ठिने ऽर्घं नि०॥२८॥

समुच्चय अर्घ।

अठाईस जो मूल पालैं यती हैं, करो सेव दे चित्त वे सन्मती हैं।
मिलैगा महासौख्य अर्चैं उनोंके, बढैंगे गुण स्वीय जैसे जिनोंके ॥२९॥

ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रतादि अष्टाविंशतिमुलगुण पालन रताय साधु परमेष्ठिने ऽर्घं निर्वपामि० २९

जयमाला। छंद त्रोटक।

जय पालक पंच महाव्रतके, करुणाकर, धारक संयमके।
षटकायिक पालक साधु नमों, प्रथमव्रत पालक साधु नमों ॥१॥
कहते न कड़े वच निंद्य कदा, हितकारक मिष्ट कहैं सुखदा।
नित पालक सत्य महाव्रत हैं, जिन शास्त्र विरुद्ध कभीं न कहैं ॥२॥

तिलमात्र गहैं न अदत्त कभी, शुचि पीछि कमंडलु शास्त्र सभी ।
करते निजमें रति छोडि सभी, विधि नारि अचेतन चेतन ही ॥३॥
धरते न परिग्रह लेश कभी, दश बाहिर, चौदह अंतर ही ।
चलते अवलोकि मही सततं, न शनैः नहि शीघ्र धरैं चरणं ॥४॥
उपदेश करैं वच दोष तजैं, नय निश्चय औ विवहार सजैं ।
छह चालिस दोष विहीन बने, अँतराय विना कर–भोज गहैं ॥५॥
रखते निजदेह विना ममता, धर एषण शुद्धि सदा रहते ।
अधते रखते शुचिपात्र तथा, निज पुस्तक शोधि पिछी करके ॥६॥
सब इंद्रियरोध करैं सततं, मनको वशमें रखते सततं ।
समता स्तुति बंदन नित्य करैं, पढते जिनशास्त्र सुप्रीति धरैं॥७॥
व्रत दोष निराकरने करते, प्रतिख्यान निशा दिनमें लगते ।
तनमें ममता तजि ध्यान करैं, व्युत्सर्ग अवश्यक पाल रहैं ॥८॥

कच लोच परीषह जीत करैं, इकभुक्ति अहार खडे कर में।
क्षिति-काष्ठ शिला विवहार करैं, दँत घर्षण मज्जन नित्य तजैं ॥९॥
नहि वस्त्र किसी विधिका पहरैं, दिशाअंबर धार सुमोद लहैं।
मन रोध करैं शुभ शुक्ल धरैं, बहिरांतर दोविधि ताप हरैं ॥१०॥
शिवसाधनमें रत नित्य रहैं, निज सार्थक नाम सुसाधु करैं।
कर जोर नमें हम "श्री" चरणा, रखिये नित ही अपनी शरणा ॥११॥

दोहा।

निश्चय औ व्यवहार है, शिवपथ दोनो रूप।
साधत उसको साधु हैं, होते शिवके भूप ॥१२॥
पूजो उनको भावसे, अष्ट द्रव्यके साथ।
अविनाशी "श्री" लीजिये, बन त्रिभुवनके नाथ ॥१३॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टाविंशति मूलगुण निरताय साधुपरमेष्ठिने ऽर्घ नि०स्वाहा ॥

अथ श्री रत्न त्रय पूजांतर्गत

सम्यग्दर्शन पूजा ॥

अथ स्थापना । वसंत तिलका छंद ।

संसार दुःख जिसके बिन जीव भोगें ।
नाना गति भ्रमण नाश करै तथा जो ॥
पाये जिसे सुख अनंत मिलें जनों को,
सद् दृष्टि सूर्य वह आ मनमें विराजो ॥१॥

ॐ ह्रीं संसार नाशक सम्यग्दर्शन ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम सन्निहितं भव भव वषट् ।

अथाष्टक । चाल नंदीश्वर पूजा ॥

जल शीतल मिष्ट सुवास, लेकर भरि झारी ।
पद पूजत भवका ताप, मिटता दुखकारी ॥

हे सम्यग्दर्शन सार, जग का हितकारी ।
कर जन्म मृत्यु का नाश, देता सुख भारी ॥१॥
ओं ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय जलं निर्वपामि स्वाहा ।

घिस केसर सह घनसार, जल करपूर चढ़ा ।
नाशै सब विधि की व्याधि, देता सुक्ख बढ़ा ॥
हे सम्य० । जग० । कर जन्म० । देता० । चंदनं ॥२॥

अक्षत अक्षत पदधार, पुंजनिसे पूजो ।
सत अक्षत पदको पाय, अक्षतगुण हूजो ॥
हे सम्यग्द० । कर जन्म । देता० । अक्षतं ॥३॥

नाना विधि पुष्प चढ़ाय, काम व्यथा जावै ।
हो मनमें शांति अपार, आकुलता जावै ॥
हे स० । जग० । कर० । देता० । पुष्पं ॥४॥

चरु बहुविधि सद्य बनाय, पूजत जो जन हैं।
वे अघकी व्याधि नशाय, पावत अति सुख हैं॥
है स०। जग०। कर जन्म०। देला०। नैवेद्यं ॥५॥

घृत मणि करपूर जलाय, दीप चढ़ाते हैं।
वे खोवत भ्रमतम जाल, ज्ञान बढ़ाते हैं॥
है सम्य०। कर ज०। दीपं ॥६॥

दशविधकी धूप कुटाय, खेवत हैं आगै।
जलै अष्ट कर्म समुदाय, आतम-सुख जागै॥
है सम्य०। कर जन्म०। धूपं ॥७॥

फल सरस सुपक्क मंगाय, पूजत जो मनसे।
वे पाते शिवफल सौख्य, पुजते हैं जगसे॥
है सम्य०। कर जन्म०। फलं ॥८॥

सब विधिको द्रव्य मिलाय, अर्घ चढ़ाते हैं।
भवकी सब व्याधि मिटाय, शिवपद पाते हैं॥
हे सम्य० । कर जन्म० । अर्घ ॥६॥

अथ अंग पूजा । छंद भुजंगप्रयात ।

कहे तत्व सर्वज्ञने वाणिसे हैं, यथारूप वे तत्त्वथारूप ही हैं।
न संख्या घटै है बढै है कदाचित, निशंकत्व सद्दर्शनांग प्रपूजो॥
ओं ह्रीं निःशंकितांग सहित सम्यदर्शनायार्घं नि० ॥१॥

विनाशीक संसार की सर्वसंपद्, पराधीन कर्माणका बीज भी है।
न वांछै अतः इन्द्रियोंके सुखोंको, निकांक्षा द्वितीयांग सद्दृष्टि पूजो ॥२॥
ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनांग निकांक्षितायार्घं नि० ॥२॥

शरीर स्वतः ही मलोंसे भरा है, नहीं शौचका लेश भी धारता है।
सुदृष्टी सु चारित्र सुज्ञान शोभै, इसीसे जुगुप्सै न, ज्ञानी विलोभै ॥३॥
ॐ ह्रीं निर्जुगुप्सांग सम्यग्दर्शनायार्घं निर्वपामि स्वाहा ॥३॥

प्रशंसा न मिथ्यात्वकी संगती ना, करै प्रीति सम्यक्त्वके सद्गुणों में ।
अमूढत्व तुर्यांग शोभै महा है, चढाओ जलाद्यष्ट याके पदोंमें ॥४॥

ओं ह्रीं अमूढ दृष्टि सदंगाय जलाद्यर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥४॥

प्रकाशै कभी दोष-ना है परोंके, छिपावैं सदा दोष ही धार्मिकोंके ।
प्रशंसा न भाषै स्वतः की कभी भी, समर्चों सदा पांचमा गूहनांग ॥१५॥

ओं ह्रीं उपगूहनांगायार्घं निर्णपामि स्वाहा ॥५॥

चलै दृष्टि चारित्र से जो कदाचित्, दृढावैं उसीमें पुनः सर्वथा है ।
करै धर्म में प्रेम सद्दृष्टि ऐसा, स्थितीकार पूजो सदंगी सुखेशा ॥६॥

ओं ह्रीं स्थितिकरणांगायार्घं निर्णपामि स्वाहा ॥६॥

स्वसाधर्मिमें वत्सवत् प्रीति राखै, मिटावै विपत्ती किसी भी प्रकार ।
छलै ना कभी भी किसी को सुदृष्टी, जजो वत्सलत्वांग दे चित्तभक्ती ॥७॥

ओं ह्रीं वत्सलतांगायार्घं निर्णपामि स्वाहा ॥७॥

बड़े दुःख पाते विना ज्ञानके हैं, बढाते इसीसे शुभ ज्ञानको जो ।

प्रचारैं जिनाज्ञा सभी भांति से हैं, प्रभावैं वही जैन धर्मत्वको हैं ॥८॥

ओं ह्रीं प्रभावनांगायार्घं निर्वपामि स्वाहा ॥८॥

समुच्चय अर्घ दोहा।

अष्ट अंग सद् दृष्टिके, जैसे तनुमें अंग।
अंग हीन नहिं मुक्ति दे, पूजो हो सर्वंग॥

ॐ ह्रीं अष्टांग सहित सम्यग्दर्शनायार्घं निर्वपामि स्वाहा ॥९॥

जय माला। त्रोटक छन्द।

जगमें विपदा जितनी दिखतीं, सब ही सद्-दर्शनसे नशतीं।
इससे जगपूज्य बनै जन हैं, सुखसार लहै शुध आतम हैं ॥१॥
तरणी तरती जब खेवटिया, करता श्रम हो करके मुखिया।
समझो उस भांति सुदर्शनको, जगतारण मुख्य सुसाधनको ॥२॥
तरु हो नहिं बीज बिना कब ही, फल भी नहिं पासकते कब ही।
नहिं सम्यक के बिन मोक्ष मिलै, न चरित्र न ज्ञान कभी सुफलै ॥३॥

परमें निज बुद्धि अनादि लगी, इससे वह शीघ्र हि जात भगी।
यह हो जिसके उर अंतरमें, शमभाव जगै निज आतम में ॥४॥
विधिबंध रुका न कभी अब लों, रुकने लगता इससे क्रम लों।
विधि-अंश झरैं गुण श्रेणि क्रमैं, झर जांय सभी इसही क्रममैं ॥५॥
सुख हैं, जितने जगमें तनके, मनके मिलते सब ही इनके।
इससे जितने जन हैं सब ही, कर यत्न गहो इसको मन ही ॥६॥
षटखंडपती सद तीर्थपती, सुर ईश खगेश तिलोकपती।
बनते शुध दर्शन धारक ही, महिमा इसकी गणधार कही ॥७॥
जग में यह सार पदार्थ कहा, इससे मिलता शिव सौख्य महा।
यजना इसको नित चित्त लगा, तनसे वचसे सब शक्ति लगा ॥८॥
दोहा—सम्यग्दर्शन मुख्य है, रत्नत्रयके मध्य।
'श्री' चित में यह नित रहै, दायक सौख्य अवश्य ॥९॥
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनायार्घं निर्वपामिस्वाहा।

अथ सम्यग्ज्ञान पूजा ॥

स्थापना। दोहा।

ज्ञान विना आतम नही, आतम विना न ज्ञान।
सम्यकता हो यदि तदा, सुखदायक वह जान ॥ १ ॥
आठ अंग उसके कहे, परमागम अनुसार।
आह्वानन कर पूजिये, होगा सौख्य अपार ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं अष्टांगसमन्वित सम्यग्ज्ञान! अत्र अवतर अवतर संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम सन्निहितं भव भव वषट्।

अथाष्टक—छंद इन्द्रवज्रा

सम्यक्त्वके साथ रहै सदा जो, कर्माष्ट कक्ष क्षय हेतुभूत।
गंगादिका नीर सुमिष्ट लेके, सज्ज्ञान पूजो नित भक्त होके ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्रीअष्टांग सम्यग्ज्ञानाय जलं निर्वपामि स्वहा ॥१॥

अज्ञानसे जो तप कर्म–हर्ता, होता हजारों वर्षों में जाके।
होता क्षणैकेन सुबोधसे है, पूजो उसे चंदन को चढाके ॥२॥ चंदनं॥
सद्बोध नौका यदि ना चढें तो, होते न संसार–समुद्र पार।
माहात्म्य ऐसा जिसका बखाना, पूजो उसे अक्षतपुंज लेके॥३॥ अक्षतं
शमादि शत्रू नश शीघ्र जाते, न द्वेष रागादि अनिष्ट होते।
आत्मा सुखी हो निज भाव पाके, पूजो उसे पुष्पलती चढाके॥४॥ पुष्पं
पूर्ण प्रकाशी जब बोध होता, क्षुत् प्यासका सर्व विनाश होता।
आहारका काम रहै न कोई, पूजो उसे सद्य बनी चरूसे॥५॥ नैवेद्यं।
सूर्य प्रकाशै अथ चंद्र भासै, दीप प्रकाशै नाह सर्वको है।
ज्ञान प्रकाशै जगके पदार्थ, पूजो उसे दीप उजाल लेके॥ ६ ॥ दीपं।
होवै न जो चित्त विशुद्धिकारी, सद्बोध अग्नी जिस आत्म में है।

होता सदा अंध असूझता है, पूजो उसे धूप दशांग खेके ॥७॥ धूपं ॥
अज्ञानसे मोक्ष फलै नहीं है, चारित्रशाखी दृढ़ हो तथापी ।
सद्बोधसे शीघ्र फलै वही है, पूजो उसे सद् फल पक्क लेके ॥८॥ फलं ॥
कर्माष्ट भस्मी करना यदी है, सद्बोध आत्मा बन शीघ्र जाओ ।
होगे अनर्घ्यात्म सदा सुखी भी, पूजो उसे अर्घ चढाके भक्त्या ॥९॥अर्घं ।

प्रत्येक अंगका अर्घ ।

शब्द व्यंजनादिसे, सुबोध होत है सदा ।
भाषिये सतर्क हो, विकास बोध हो तदा ॥
नीर आदि अर्घको, सुभक्तिसे चढाइये ।
ज्ञान की विशालता, सुबोध पूज पाइये ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं व्यंजन व्यंजित ज्ञानांगायार्घं निर्वपामि स्वाहा ।

सुप्तिङन्त शब्दको, कहैं पद प्रमाण हैं ।
अर्थ की सुसंगती, करै वही सुज्ञान है ॥

नीर आदि० । ज्ञानकी विशालता० ॥

ॐ ह्रीं अर्थ समग्राय ज्ञानांगायार्घं निर्व० ॥२॥

शब्द अर्थ युग्मका, यथार्थ ज्ञान जो करै ।

मोह अंध नाशके सदात्म सौख्य को वरै ॥

नीर आदि० । सुभक्ति० । ज्ञानकी वि० । सुबोध०॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं तदुभयसमग्राय सम्यग्ज्ञानांगायार्घं नि० ॥३॥

शास्त्र पाठ को करै, सुयोग्य काल देखिके ।

ज्ञानकी पवित्रता, सुपाय ऋद्धि लेयके ॥

नीर आदि० । ज्ञानकी वि०। सुबोध ०॥४॥

ॐ ह्रीं कालाध्ययन पवित्राय सम्यग्ज्ञानांगायार्घं नि०॥४॥

ज्ञानको सहायता, करैं पदार्थ शुद्ध हैं,

शुद्ध भाव हों तदा, सुखी बनै य जीव है ॥

नीर आदि०। ज्ञानकी वि०। सुबोध ०॥५॥

ॐ ह्रीं उपध्यानोपहित सम्यग्ज्ञानायार्घं निर्वपामि स्वाहा ॥५॥

चित्तमें विनीत हो, करै अभ्यास ज्ञानका ।
ज्ञान नंत हो तदा, नशै किलेश भ्रांतिका ॥
नीर आदि०। सुभक्ति०। ज्ञानकी०। सुबोध०॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं विनयलब्ध प्रभावनांगाय सम्यग्ज्ञानायार्घं निर्वपामि स्वाहा ॥६॥

ज्ञान दान दे किया, महोपकार जासने
नाम ना छिपा, कहै स—मान नाम चावसे ॥
नीर आदि०। सुभक्ति०। ज्ञानकी०। सुबोध०॥७॥

ॐ ह्रीं गुर्वाद्यपन्हव समग्राय सम्यग्ज्ञानांगायार्घं निर्व०॥७॥

मान दे बहुप्रकार ज्ञानलाभ लेत हैं ।
वृद्ध होत ज्ञानसे नंत सौख्य पात हैं ।
नीर आदि०। सुभक्ति०। ज्ञानकी त्रि०। सुबोध०॥८॥

ॐ ह्रीं बहुमानोन्मुद्रिताय सम्यग्ज्ञानांगायार्घं निर्व०॥८॥

समुच्चय अर्घ। दोहा।

व्यंजन व्यंजित प्रथम है, अर्थ समग्र द्वितीय।
व्यंजनार्थ तदुभय कहा, कालाध्ययन तुरीय॥१॥
उपध्यानोपहित पांचवा, विनय लब्ध है षष्ठ।
गुर्वाद्यपन्हव सातवां, बहुमानान्वित अष्ट॥२॥
आठ अंग सज्ज्ञानके, परमागमके मध्य।
भाषे श्रीसर्वज्ञने, पूजक होत अबध्य॥३॥

ॐ ह्रीं व्यंजनसमग्राद्यष्टांगेभ्योऽर्घं निर्वपामि स्वाहा॥

जयमाला।

दोहा—जगके सर्व पदार्थको, सूर्य प्रकाशै नाहि।
ज्ञान प्रकाश करै नहीं, वह पदार्थ है नाहि॥ १ ॥
अद्भुत महिमा ज्ञान की, कह न सकै है कोय।
ज्ञान ज्ञानको जानता, और न जाने कोय॥ २ ॥

मोतियादाम छंद ।

पहाड विनाश करै जिम वज्र, विनाश करै यह मोह धराध्र ।
नशै सव राग समेत प्रमाद, मिटै मनका सव ही अवसाद ॥ ३ ॥
प्रकाशित हों जगके सव तत्त्व, सुखी बनते इससे सव सत्त्व ।
प्रमाण निक्षेप नयादि विभेद, सहायक हैं इसके सव वेद ॥ ४ ॥
करैं न हि काम अनंत दिनेश, करै यह एक हि सर्व सुखेश ।
सुदर्शन में दृढता इस होत, चरित्र बनै अति निर्मल जोत ॥ ५ ॥
नशै कलि कल्मष कर्दम राशि, क्षयै विधिवंध महा दुख राशि ।
भवावलि नाशक है यह वीर, बिना इसके न सुखै भवनीर ॥ ६ ॥
अनंग समुद्भव दुःख समूह, नशै, तव हो सुख आतम रूप ।
सदागम है इसका शुभ अंग, सुध्यान कहे दृढ मूल उतंग ॥ ७ ॥
उपांग कहे अनुयोग सुचार, फलै यह मोक्ष महासुख सार ।
श्रुतावधि आदि अनेक सुपत्र, सुबोध तरू पर सोह पवित्र ॥ ८ ॥

करै जन जो इसकी शुभ सेव, फलै उनको अविनश्वर मेव।
थके महिमा कहते गणधार, 'सिरी' मतिमन्द सकै न उचार ॥६॥

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्ज्ञानायार्घं निर्वपामि स्वाहा।

सम्यक् चारित्र की पूजा

स्थापना।

दर्शन मोह अभाव होय जब, ज्ञान बनै सद् ज्ञान अनूप।
जगकी रीति अनीति भरी लखि, विवेक जगै गहने निजरूप ॥
राग द्वेष का नाश किये बिन, शुद्ध न होता है चिद्रूप।
इससे सम्यग्दृष्टी धरते, सच्चारित्र महासुख कूपे ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्
अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम सन्निहितं भव भव वषट्।

अथाष्टक जोगीरासा।

निर्मल शीतल मिष्ट सुपावन, नीर कलशामें भरिये।

धार देय कर चारु चरण में, जन्म जरा मृतु हरिये ॥

तेरह विधका सम्यक चारित, आतम रूप प्रकाशै।

इसको धारत जो हैं प्राणी, उनको ही सुख भासै ॥१॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय जलं निर्वपामि स्वाहा ॥१॥

चंदन मलयागिरिका लेके, केसर के संग घिसिये।

चर्चन करके चारु चरणका, भवका ताप नशाइये ॥

तेरह विधिका० । इसको धारत० । चंदनं ॥२॥

शालि सुगंधित अक्षत लेके, पुंज मनोहर करिये।

अर्चन करके चारु चरण का, अक्षत पद को गहिये।

तेरह विधिका० । इसको धारत० । अक्षतं ॥३॥

नानाविध के फूल सुवासित चुन चुन कर से लइये।

चारु चरण के चरण चढाकर, काम व्यथा को हरिये ॥

तेरह विधिका० । इसको धारत० । पुष्पं ॥४॥

सरस सुमिष्ट सुपावन घृतकें, सद्य बनें चरु लइये ।
चारु चरणके भेंट चढावत, क्षुधका दुख सब हरिये ॥
तेरह विधिका० । इसको धारत० । नैवेद्यं ॥५॥

पावन घृत वा मणि रत्ननिके, दीप संजोय धरीजें ।
चारु चरण के चरण चढाकर, भ्रमतम घात करीजें ॥
तेरह विधिका० । इसको धारत० । दीपं ॥६॥

अगर तगर घनसार आदिकी, धूप दशांग बनाओ ।
पावक के संग धूपायन में, खेकर कर्म जलाओ ॥
तेरह विधिका० । इसको धारत० । धूपं ॥७॥

प्रासुक सुन्दर नानाविधिके, फलका थाल भराओ ।
चारु चरणके चरण चढाकर, शिवसुखका फल पाओ ॥
तेरह विधि० । इसको धारत० । फलं ॥८॥

जल चंदन अक्षत आदिक ले, अर्घ अनर्घ बनाओ ।
चारु चरण के चरण चढाकर, पद अनर्घ का पाओ ।
तेरह विधि० । इसको धारत० ! अर्घ० ॥६॥

प्रत्येक अर्घ

त्रस थावर की करुणाकरना, सब ही विधि आरंभ का तजना ।
परिहार कषायनिका करना, सुअहिंस महाव्रत का धरना ॥ १ ॥
ॐ ह्रीं अहिंसा महाव्रतायार्घं निर्वपामि स्वाहा ॥ १ ॥

जिस वाक्य कहे पर–पीडन हो, जग निंद्य कहै मन दुःखित हो ।
उसका व्यवहार कभी न करै, यह सत्यमहाव्रत दुःख हरै ॥ २ ॥
ॐ ह्रीं सत्यमहाव्रतायार्घं निर्वपामि स्वाहा ॥ २ ॥

कुछ भी न गहै परका न दिया, पर-वस्तु विरक्त रहै सुखिया ।
निज में रत होकर नित्य रहै, वह अस्तेय महाव्रत नाम धरै ॥ ३ ॥
ओं ह्रीं अस्तेय (अचौर्य) महाव्रतायार्घं निर्वपामि स्वाहा ॥ ३ ॥

सब ही विधि नारि परित्यजना, निज-अन्तरलीन सदा रहना ।
चहना नहि दर्शन का सुख है, यह पावन ब्रह्म महाव्रत है ॥ ४ ॥
ओं ह्रीं ब्रह्मचर्य महाव्रतायार्घं निर्वपामि स्वाहा ॥ ४ ॥

सब भांति परिग्रहका तजना, दिग-अंबर हो वनमें रहना ।
ममता परमें न हि लावत है, अपरिग्रह नाम महाव्रत है ॥ ५ ॥
ओं ह्रीं अपरिग्रह महाव्रतायार्घं निर्वपामि स्वाहा ॥ ५ ॥

दोहा—पंच महाव्रत साधु के, चारित के हैं भेद ।
इनको पूजो भक्ति से, अर्घ चढाय अखेद ॥
ओं ह्रीं अहिंसा आदि पंच महाव्रतायार्घं निर्वपामि स्वाहा ॥

कर चार मही लखिके चलना, षडकाय वचा चरणा रखना ।
इरियापथ है पहिली समिती, इस पालत साधु धरैं सुमती ॥ ६ ॥
ओं ह्रीं ईर्यापथ समितयेऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥ ६ ॥

कथनी जिन धर्म बढावन की, करना निजरूप लखावन की ।

विकथा वचसे करना न कभी, यह भाषण की दुसरी समिती ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं भाषासमितयेऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥ ७ ॥

करना निरदोष अहार सदा, अंतराय बिना तजिके ममता ।
यह एषण शुद्धि महासमिती, धरना मनमें रखिके सुमती ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं एषणा समितयेऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥ ८ ॥

गहना धरना निज वस्तुनिका, शुचिपात्र कमंडलु शास्त्रनिका ।
लखि शोधि पिछी करके करना, समिती चउथी इसको यजना ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं आदान निक्षेपण समितयेऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥ ९ ॥

तजना मलमूत्र उसी थल में, दुख हो न किसी जिव के तनमें ।
समिती प्रतिठापन पंचम है, यजना इसका अति उत्तम है ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं प्रतिष्ठापन समितयेऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥ १० ॥

दोहा—चारित का सद अंग है, समिति पंच परकार ।
इनको अर्घ चढाइये, मोक्ष मिलै सुखकार ॥

ॐ ह्रीं पंच प्रकार समितयेऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

मनका वशमें करना नित ही, निजरूप विचारण हो अति ही ।
मन गुप्ति कहैं इसको सुमना, नित पूजन से बनते सुमना ॥ ११ ॥

ॐ ह्रीं मनोगुप्तयेऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

वच रोध करो, अति मौन धरो, निज में रतिधार सुवृत्त गहो ।
वचगुप्ति कहैं इसको सुमना, नित पूजन से बनते सुमना ॥ १२ ॥

ॐ ह्रीं वाग्गुप्तयेऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥ १२ ॥

वश काय रहे न हलै न डुलै, थिर एक तरै रहना न भुलै ।
तनुगोपन नामक गुप्ति कहो, यजना इसको मन राखि सही ॥ १३ ॥

ॐ ह्रीं कायगुप्तयेऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥ १२ ॥

दोहा—तीनगुप्ति का पालना, कर्म उच्छेदक जान ।
इनका अर्चन जो करैं, पावैं केवल ज्ञान ॥

ॐ ह्रीं त्रिगुप्तयेऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

दोहा—दुर्गतिका जो नाशकर, देता सुखका सार।
महिमा उस चारित्र की, 'श्री' सकता न उचार ॥ १ ॥

छंद—भुजंग प्रयात।

सुचारित्र संसार में सार जानो, विनाशै यही दुःख की राशि मानो।
सुदृष्टी तथा ज्ञान भी हो अपारा, विना चारु चारित्र होवै न पारा ॥२॥
जलो अग्नि देखै डरै चित्तमाही, जलावै मुझे ज्ञान भी है तथा ही।
करै ना सुरक्षा प्रमादी बनै तो, जलै शीघ्र ही दुःख पावै मरै तो ॥३॥
लगे कर्म के मैल को जो हटावै, बली मोहकी सैनको जो भगावै।
करै साम्य वस्था हटा इष्टनिष्ट, बनावै सुखी नित्य दे स्थान इष्ट ॥४॥
करै आत्म में लीन योगी जनों को, बना केवली घातिया घात के जो।
मिला अंतरंगी सुलक्ष्मी चिरस्था, करै स्वस्थ सर्वोपरी दे प्रतिष्ठा ॥५॥

जिसे धार सत्कार पावैं सभी से, सुरों से खगों से नराधीश्वरों से ।
पराधीनता छोडि स्वाधीन हो है, सुचारित्र ऐसा किसै नाहि मोहै ॥६॥
बड़े तीर्थकारी तिलोकीपती भी, इसे धारते सिद्ध होते तभी ही ।
रुला जीव संसार में जो सदा है, धरा ना सुचारित्र याने कदा है ॥७॥

दोहा—मोक्ष मार्ग का अंग है, सच्चारित्र महान ।
पूजो धारो भव्यजन, जो चाहो कल्यान ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधं सम्यक् चारित्रायार्घं निर्वपामि स्वाहा ।

अथ चतुर्थ वलय-स्थित ऋद्धिधर मुनीश पूजा

प्रथम कोष्ठस्थ—ज्ञानर्द्धिधारक मुनीश पूजा ।

स्थापना । वसंततिलका छंद ।

आत्मा अनंत गुणपिंड अखंड जाना, ज्ञानावृतादि वसु कर्म अधीन माना ।
स्वाधीन होन तब बुद्धि जगी विशाला,

धारा महाव्रत तथा समिती प्रकारा ॥ १ ॥
कायादि गुप्ति धरि इन्द्रिय वश्यता भी,
जीतीं परीषह सभी निजरूप ध्याया।
ज्ञानावृती तब सुदूर भगी, जगा है,
ज्ञानस्वरूप, बहु ऋद्धि–समृद्ध होके ॥ २ ॥

दोहा—ऐसे ज्ञानी ऋद्धिधर, केवलि आदि मुनीश।
पूजूं मैं अति भक्ति से, आय विराजो ईश ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्री केवलज्ञानादि ऋद्धि धारक मुनीश्वराः अत्र अवतरत अवतरत संवौषट्, अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः, अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्।

अथाष्टक

शीत स्वच्छ सुष्ठु मिष्ट नीर झारिमें भरा। ज्ञानऋद्धि धारि साधुके सुपादमें चढा
जन्म रोग दूर होत, मृत्युनाश शीघ्र ही। दूर भागि जाय ईति भीति सर्व व्याधिही।

ॐ ह्रीं ज्ञानर्द्धि धारक मुनिवरेभ्यो जलं नि० ॥१॥

गंधसार सार लेय, केशरं मिलाइये, ज्ञान ऋद्धिधारि साधु-पाद में चढ़ाइये ।
दूर जाय दुःखराशि, मुक्तिसौख्य पास हो, आत्मरूप शुद्ध होत ज्ञानका प्रकाश हो॥
ॐ ह्रीं ज्ञानर्द्धि धारक मुनिवरेभ्यो गंधं नि० ॥२॥

श्वेत शालि व्रीहि लेय, पुंज अक्षतं करैं ।
ज्ञान ऋद्धि धारि साधु पाद पास में धरैं ॥
बीत जाय अक्ष दुःख, पूर्ण आत्म-सौख्य हो ।
ज्ञान ऋद्धि वृद्धि पाय, अज्ञता विनष्ट हो ॥ २ ॥ ओं ह्रीं···अक्षतं नि०।

पुष्प जाति भांति भांति, हाथ से चुनाइये ।
ज्ञान ऋद्धि धारि साधु—पाद में चढाइये ॥
काम शूल दूर होत, आत्म—शान्ति पास हो ।
ब्रह्म-प्रीति नित्य धारि अन्य में न लीन हो ॥ ४ ॥ ओं ह्रीं···पुष्पं ।

मिष्ट शुद्ध सद्य जात, चारु भोज्य लीजिये,

ज्ञान ऋद्धि धारि साधु-पादमें निवेदिये ॥
भूख जाय प्यास जाय, वेदना असात की,
व्याधि ना सतावै कोय, प्राप्ति होय शांतिकी ॥५॥ ॐ ह्रीं—नैवेद्यं ।५।
दीपका प्रकाश होत, पुद्गली दिखै सदा,
ज्ञानका प्रकाश होत, सर्व द्रव्य जानता,
ज्ञान ऋद्धि धारि साधु-पाद सेवसे मिलै,
ज्ञान का महा प्रकाश, जो नहीं चलै हिलै ॥६॥ ॐ ह्रीं—दीपं ।६।
भांति भांति के सुगंध द्रव्य ले बनाइये,
धूप डारि अग्नि-मध्य, भक्तिसे चढाइये,
ज्ञान ऋद्धि धारि साधु-पाद सेव जो करै,
कर्म राशि दे जलाय, मुक्ति नारि को वरै ॥७॥ ॐ ह्रीं—धूपं ।७।
पक्क मिष्ट गंध पूर्ण, आम आदि ले फलं ।

ज्ञान ऋद्धि धार साधु-पादको जजै अलं ॥
ज्ञानका अधीश होत, अज्ञता विनाशके ।
नंत सौख्य नित्य भोग, होत है निजात्मके ॥८॥ ओं ह्रीं ... फलं ॥
द्रव्य आठ एक साथ, थालमें भराइये ।
ज्ञान ऋद्धि धारि साधु-पादमें चढाइये ॥
प्राप्त हो अनर्घ्य थान, आत्म ऋद्धि पाइके ।
दुःख ना कभी सतात, राग और द्वेषके ॥९॥ ओं ह्रीं ... अर्घं ॥

प्रत्येक अर्घ

संसारके सर्व पदार्थ जात, जानै सदा एकही काल देखै ।
वे केवली सर्व जगत् प्रसिद्ध, हों वे मुझे ज्ञानसमृद्धि दाता ॥१॥
ॐ ह्रीं केवलज्ञानर्द्धि सहिताय जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥१॥
प्रत्यक्ष देशैक मनः सुबोध, जानै मन स्थायि विचारधारा ।
धारैं मुनी जो उस ज्ञानको हैं, हों वे मुझे ज्ञान समृद्धि दाता ॥२॥

ॐ ह्रीं ऋजु विपुल मति मनः पर्यय ज्ञानर्द्धि धारकाय अर्घं नि० ॥२॥

उत्कृष्ट सर्वावधि एक देश, प्रत्यक्ष जानैं सब मूर्तिमंत ।
धारैं मुनी जो उस ज्ञानको हैं, हों वे मुझे ज्ञान समृद्धि दाता ॥३॥

ॐ ह्रीं देशावधि सर्वावधि परमावधि ज्ञानर्द्धि धारकाय साधवे अर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥३॥

कोठे भरे धान्य बहु प्रकारा, काढैं यथेच्छा जिसने भरे हैं ।
त्यों हो श्रुतान्तर्गत सवतत्त्व, प्रश्नानुसारी कहदे यथाथ ॥
ऐसा श्रुतज्ञान समर्थ जो है, होता मुनीके तप के प्रभाव ।
धारैं मुनी जो उस ज्ञानको हैं, हों वे मुझे ज्ञानसमृद्धि दाता ॥४॥

ॐ ह्रीं कोष्ठस्थधान्योपम श्रुत ज्ञानर्द्धि धारकेभ्यो मुनिभ्यो अर्घं नि० ॥४॥

ज्यों बीज से एक अनेक होते, त्यों एक से अर्थ अनेक भाषैं ।
बीजत्व ऋद्धी जिनके प्रकाशी, हों वे मुझे ज्ञान समृद्धि दाता ॥५॥

ॐ ह्रीं एकबीज श्रुतज्ञानर्द्धि धारकेभ्यो मुनिभ्योऽर्घं नि० ॥५॥

१८

नंत ध्वनी हों सब एक साथ, जानैं उनोंको सब भिन्न भिन्न ।
संभिन्न संश्रोतृ विशाल शक्ती, ऋद्धीश ज्ञानी श्रुतबोधको दें ।।६।।
ॐ ह्रीं संभिन्न संश्रोतृ श्रुत ज्ञानर्द्धिधारकेभ्यो मुनिभ्यो अर्घं ।।६।।
आद्यंत वा मध्य पदैक से ही, व्याख्या करैं ग्रन्थ समस्त की जो ।
पादानुसारी मति ऋद्धिधारी, होवें मुझे ज्ञान समृद्धि दाता ।।७।।
ॐ ह्रीं पादानुसारी ऋद्धिधारक मुनिभ्यो अर्घं नि० ।।७।।
संस्पर्शनेंद्री जितना स्पर्शै है, स्पर्शैं उसीसे अति दूरवर्ती ।
संस्पर्शनेन्द्री मति ज्ञानधारी, हों वे मुझे ज्ञान समृद्धि दाता ।।८।।
ॐ ह्रीं दूरस्पर्शनर्द्धि धारक साधुभ्यो अर्घं निर्वपामि स्वाहा ।।८।।
आस्वादनेन्द्री नव योजनों की, स्वादैं रसीली सब वस्तुओं को ।
आस्वादनेकी उससे प्रकृष्ट, शक्ती जिनोंके ऋषि ऋद्धि को दें ।।९।।
ॐ ह्रीं दूरास्वादनर्द्धि धारक ऋषिभ्यो अर्घ निर्वपामि स्वाहा ।।९।।
घ्राणेंद्रि सूंघै नव योजनोका, सद् गंध दुर्गंध पदार्थ का है ।

शक्ती उसीसे अधिकी जिनों में, वे हों मुझे ज्ञानसमृद्धि दाता ॥१०॥
ॐ ह्रीं दूराघ्राणर्द्धि धारक यतिभ्यो अर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥१०॥

नेत्रेन्द्रिको शक्ति विलोकने की, हज्जार सैंतालिस योजनाकी।
दो सौ तिरेसट्ट मिले उसी से, ऋद्धीश देखें अधिक प्रमाण ॥११॥
ॐ ह्रीं दूरावलोकनर्द्धि धारक मुनये अर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥११॥

श्रोत्रेंद्रि की योजन बार शक्ती, जानैं सुनैं जो अधिक प्रमाण।
श्रोत्रेन्द्रि ऋद्धीधर वे मुनीशा, होवें मुझे ज्ञान समृद्धि दाता ॥१२॥
ॐ ह्रीं दूर श्रवणर्द्धिधारक मुनीश्वरेभ्यो अर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥१२॥

प्रज्ञा जिनोंकी अतितीक्ष्ण सूक्ष्म, जानैं, पढे ना श्रुतको तथापि।
प्रज्ञा प्रधाना मति ऋद्धिधारी, हों वे मुझे ज्ञानसमृद्धि दाता ॥१३॥
ॐ ह्रीं प्रज्ञाश्रमणर्द्धि धारक मुनिभ्यो अर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥१३॥

नाहीं पढे हैं श्रुत को तथापि, व्याख्यान दें संयम ज्ञानका जो।
जानैं पृथक् जीव अजीव को जो, प्रत्येक बुद्धीश्वर ज्ञानको दें ॥१४॥

ॐ ह्रीं प्रत्येक बुद्धि ऋद्धिधारक मुनिभ्यों अर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥१४।

जाना जिनोंने दशमांगपूर्व, आईं तबै रोहिणी आदि विद्या।
नाहीं लुभाने उनसे यती हैं, दें ज्ञान वे पूर्वदशर्द्धि धारी ॥१५॥

ॐ ह्रीं दशपूर्वत्वर्द्धि धारक मुनिभ्यो अर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥१५॥

ज्ञाता हुए ग्यारह अंगके जो, जानै तथा पूर्व चतुर्दशों को।
ऐसे सुज्ञानी श्रुत ऋद्धिधारी, होवें मुझे ज्ञान समृद्धि दाता ॥१६॥

ॐ ह्रीं चतुर्दश पूर्वर्द्धि धारि मुनिभ्योऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥१६॥

वादी जिनों से भग दूर जाते, ना जीत सक्ते किस ही प्रकार।
स्याद्वाद की शक्ति अपार धारैं, वादित्व ऋद्धीश्वर ज्ञान देवें ॥१७॥

ॐ ह्रीं प्रवादित्वर्द्धि धारक मुनिभ्यो अर्घं नि० ॥१७॥

भौमान्तरीक्षादि निमित्त ज्ञानी, वक्ता भविष्यत् सब कार्य के जो।
बुद्धीश अष्टांग निमित्त ज्ञानी, होवें मुझे ज्ञान समृद्धि दाता ॥१८॥

ॐ ह्रीं अष्टांग निमित्त ज्ञानर्द्धि धारक मुनिभ्यो अर्घं नि० ॥१८॥

समुच्चय अर्घ । छंद वसंततिलका ।

अन्तर्वहिभव अनेक तप प्रभाव ।
ज्ञानर्द्धि अष्ट दश भेद जगी ज़िनों के ॥
द्रव्याष्ट लेय जल चंदन अक्षतादि ।
पूजो नमाय वसु अंग मुनीश्वरों को ॥

ॐ ह्रीं केवल ज्ञानादिअष्टादश भेद भिन्न ऋद्धि धारक मुनीश्वरेभ्यो अर्घं नि० ॥

जयमाल ।

दोहा—ज्ञानरूप यह जीव है, पडा कर्म के फंद ।
करै तपस्या भावसों, हो जावै स्वछंद ॥१॥

त्रोटक छंद

जब पुद्गल अर्ध रहै भ्रमणं, तब सम्यक हो सुखदायि वरं ।
निज की पहिचान करै पर से, तब भिन्न करू यह बुद्धि जगै ॥२॥
तप आश्रय ले करके निजसे, निजके गुण वृद्ध करै क्रम से ।
अति शक्ति जगै उस आतम में, वह ऋद्धि कही परमागम में ॥३॥

सब से बलि केवल बोध जगै, जिसमें सब बोध समाय लगे।
मन पर्यय बोध जगे जब ही, परके मन की कहते सब ही ॥४॥
परमावधि सर्व अणू तक का, कह दे बल पुद्गल मूर्तिक का।
श्रुतबोध बढ़ै जब आतम में, श्रुत पाठ करै इक ही क्षण में ॥५॥
मति भी अतिशायि बनै तब है, परिधी बल इन्द्रिय की न रहै।
उन शक्ति बढ़ै अति जाननकी, पर काम न लें उन सेवन की ॥६॥
परवादिनि के मद दूर करें, प्रतिभा अति तीव्रविशाल धरें।
स्वर आदि निमित्त विलोक कहैं, सुख वा दुख का फल होन चहै ॥७॥
प्रगटा दश पूर्व सुबोध जिनै, पर वे उसको कुछ नाहि गिनै।
सब पूर्व चतुर्दश भेद जगै, श्रुत वारिधि निजमें आय लगै ॥८॥
यह है महिमा तप धारण की, बुधि ऋद्धि बढ़े इस आतम की।
हम "श्री" अभिलाष करैं उसकी, इससे अरचा करते ऋधिकी ॥९॥
ॐ ह्रीं श्री केवल ज्ञान प्रभृति अष्टादश बुद्धि ऋद्धि धारक मुनीश्वरेभ्यो अर्घं नि० ॥१॥

द्वितीय कोष्ठस्थ श्री औषधर्द्धि धारक मुनीश पूजा ॥ २ ॥

परशन हो यदि किसी अंग का, वा मल छू कर आइ बयार ।
लगे अंग से रोगी जन के, हरे रोगको तुरत उखार ॥
ऐसे श्री गुरु औषध रिधि के, धारक तारक जगदाधार ।
आय विराजो यहां हे स्वामी ! पूजन को है उमंग अपार ॥१॥

ॐ ह्रीं अष्ट प्रकार औषध ऋद्धिधारक सर्व मुनीश्वराः अत्र अवतरत अवतरत संवौषट्, अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट् ।

अथाष्टक ।

कलशा जलका भर कर में लिया, पाद पद्मतर धार दिया ।
औषधि रिधि के स्वामि जजैं, पूजक के सब रोग भजैं ॥

ॐ ह्रीं श्री औषधर्द्धि धारक मुनिभ्यो जलं निर्वपामि स्वाहा ॥१॥

घनसार कुकुम को साथ घसो, पाद पद्मतर लेप करो।
औषध रिधि के स्वामि जजें, पूजक के सव रोग भजें ॥ चंदनं ॥२॥
अक्षत अक्षत थाल भरो, पाद पद्मतर पुंज करो। ओं० । पू०। अक्षतं ॥३॥
कमल आदि बहु पुष्प लिये, पाद पद्म तर धार दिये। ओं०। पुष्पं ॥४॥
सरस मिष्ट पकबान लिये, पादपद्म तर भेंट किये॥ ओं०। पू०। नैवेद्य ॥५॥
घृत कपूर के दीप लिये, पादपद्म तर वार दिये। ओं० । पू०। दीपं ॥६॥
अगर तगर की धूप करी, पादपद्मतर वारि धरी ॥ ओं० । पू० । धूपं ॥७॥
सरस पक्व फल थाल भरे, भेंट करत अति मोद धरे ॥ ओं० । पू० । फलं ॥
जल गंध आदि सव द्रव्य लिये, पाद पद्मतर भेंट किये॥ ओं०। पू०। अर्घं ॥

प्रत्येक अर्घ।

संस्पर्श हो यदि शरीरज अंग संग,
भागैं समस्त दुख दायक रोग संघ।
आमर्ष ऋद्धि सुखदायक धारते जो,

पूजो मुनीश जल आदिक द्रव्य लेके ॥१॥

ॐ ह्रीं आमर्षौषधि ऋद्धि धारक सर्व मुनीश्वरेभ्यो अर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥१॥

संस्पर्श हो न तनुसाथ तथापि रोगा,
भागें समस्त जिनकी समुपस्थिती में ।
सर्वौषधीश सुखदायक ऋद्धि धारी,
पूजो मुनीश जल आदिक अर्घ लेके ॥२॥

ॐ ह्रीं सर्वौषधि ऋद्धि धारक मुनीश्वरेभ्यो अर्घं निर्वपामि० ॥२॥

आशीष देत सब रोग भज तुरंत,
होता सुखी विषधरेश- विषाक्त रोगी ।
आशीर्विषंविष धरैं सुखदायि ऋद्धि,
पूजो मुनीश जल आदिक अर्घ लेकें ॥३॥

ॐ ह्रीं आशीर्विषंविषर्द्धि धारक मुनीश्वरेभ्यो अर्घ नि० ॥३॥

दुःसाध्य भी विनश जाय विष प्रभाव,

देखैं स्वचन्तु मुनिनाथ दयासमुद्रं ।

दृष्टो विषंविष धरैं सुखदायि ऋद्धि,

पूजो मुनीश जल आदिक अर्घ लेके ।।४।।

ॐ ह्री दृष्टिविषंविषर्द्धि धारक मुनीश्वरेभ्यो अर्घं नि० ।।४।।

खंकार थूक जिनके हरते कुरोगा,

आई सपर्श उन वायु हरैं ह सो भी ।

खिल्लौषधर्द्धि सुखदायक धारते जो,

पूजो मुनीश जल आदिक अर्घ लेके ।।५।।

ॐ ह्रीं खिल्लौषधर्द्धि धारक मुनिश्वरेभ्यो अर्घं नि० ।।५।।

विष्टा हरैं विषय रोग समूह को है,

आई सपर्श कर वायु हरै ह सो भी ।

ऐसे विशाल बलशालि विडौषधीशा,

पूजो मुनीश जल आदिक अर्घ लेके ।।६।।

ॐ ह्रीं विडौषर्द्धि धारक मुनीश्वरेभ्यो अर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥६॥

प्रस्वेद औषध समान विनाशता है,
शरीर रोग सब मूल उखाड़ देके।
जल्लौषधर्द्धि सुखदा प्रगटी जिनों के,
पूजो मुनीश जल आदिक अर्घ लेके ॥७॥

ॐ ह्रीं जल्लौषधर्द्धि धारक मुनिभ्यो अर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥७॥

सर्व प्रकार मल रोग विनाशता है,
ऐसा शरीर जिनका सुखका प्रदाता।
ऋद्धी मलौषधिपती सुखदायि होते।
पूजो मुनीश जल आदिक अर्घ लेके ॥८॥

ॐ ह्रीं मलौषधर्द्धि धारक मुनिभ्यो अर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥८॥

समुच्चय अर्घ।

दोहा—औषधर्द्धिके भेद हैं, आमर्षादिक आठ।

धारक मुनिवर पूजिये, जलै कर्ममय काठ ॥९॥

ॐ ह्रीं आमर्ष-सर्वौषध-आशीविषविष-दृष्टिविषविष-खिल्लौषध-विडौषध जल्लौषधि, मलौषध-

इति अष्ट ऋद्धि धारक सर्व मुनीश्वरेभ्यो अर्घं नि० ।

जयमाल ।

दोहा—चहते सुख सव जीवको, करते तप उत्कृष्ट ।
महिमा तनमें हो प्रगट, हरै रोग निसकृष्ट ॥१॥

जय औषध रिधिधारी मुनीश, तप करते तो भी सुख अधीश ।
जय जीव मात्र रक्षा करंत, सव सुखि हो जग में प्राणवंत ॥२॥
दिनरात भावना करत सार, इस ही से ऋधि उपजैं उदार ।
यह राजैं जिस थानक मझार, सव सुखी होंय दुख होंय छार ॥३॥
अति मरी रोग शाकिनि पिशाच, नहि करैं जोर भागैं कुलाच ।
सव विषधर का विष उतरि जाय, जन आनंद धरते नहि अघाय ॥४॥
रहती नहि भीति किसी प्रकार, जन निर्भय सुख भोगैं अपार ।

सब शत्रु शत्रुता देत छार, अति प्रेम सहित वरते उदार ॥५॥
षट ऋतु फलती हैं एक साथ नहिं, शीत उष्णकी होय व्याध।
अतिवृष्टि अनावृष्टिका प्रकोप, मुनि रिधि से वह होय लोप ॥६॥
उनकी जहां जहां दृष्टि जाय, विष अमृत सम परिणमिय जाय।
उपदेश वाक्य वा सुन अशीष, रहता नहिं रोग कदा च शीष ॥७॥
उनको छूकर आई बयार, वह भी हरती सब रोग भार।
मल मूत्र स्वेद खंकार थूक, वह भी उनके औषध अचूक ॥८॥
महिमा इनकी अद्भुत अपार, कह न सकें मति जिनकी अपार।
तब तुच्छबुद्धि "श्री" ब्रह्मचारि, कह दे उसको कैसे उचारि ॥९॥

दोहा—हरते तन का रोग हैं, ऐसे श्री ऋषिराज।
हरैं रोग भवका महा, देकर शिवका राज ॥१०॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टौषधर्द्धि धारक मुनिवरेभ्यो अर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥

अथ रसर्द्धि धारक मुनि पूजा ।

स्थापना । शिखरिणी छंद ।

तपस्या धारैं जो निज तन ममत्व त्यजनतैं ।
करैं आत्मध्यान, स्व वचननिका रोध करके ।
मनोगुप्ती पालैं सब विषय वाह्य त्यजनतैं,
हुए ऋद्धी धारी मन वचन काया अतिवली ॥१॥

दोहा—आवैं वे ऋषिराज जी, करने हमें पवित्र ।
पूजैं उनके चरण हम, होवैं कर्म लवित्र ॥

ॐ ह्रीं मनो वचन काय बलर्द्धि धारक सर्व मुनीश्वरा अत्र अवतरत अवतरत संवौषट अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः, अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट् ।

अथाष्टक।

निरमल जल शीतल लाय, सुवरण कलश भरूं।
दुख जन्म जरा मृति जाय, भवमें नाहिं रुलूं॥
बल रिधिके धारि यतीश, पूजूं तुम चरणा।
बल, करमनाशने हेतु, दीजै करि करुणा॥१॥

ॐ ह्रीं बलर्द्धि धारक सर्व मुनीश्वरेभ्यो जन्म जरा विनाशनाय जलं नि० ॥१॥

घनसार कपूर मिलाय, केसर घिस लीजै।
अति विनय हृदय में धार, चरणों में दीजै॥
बलरिधि०। पूजूं०। बल, करम०। दीजै० ओं ह्रीं ... चंदनं।

शुभ तंदुल शालि अनूप, भरकर थाल लिये।
पद अक्षय प्रापति हेतु, पदतर भेंट किये॥
बल रिधि०। पूजूं। बल, करम०। दीजै०। ओं ह्रीं अक्षतं।

कमल केतकी कचनार, बहुबिधि फूल लिये।

दुखदायि अतनको मार, धारी शांति हिये ॥
बल रिधि० । पूजूं० । बल, करम० । दीजै०। ओं ह्रीं पुष्पं ।
बहुविध के सद्य बनाय, चरु उत्तम लीजै ।
चरणों में भेट चढाय, क्षुधका दुख छीजै ॥
बलरिधि० । पूजूं० । बल, करम० । दीजै० ॥ ओं ह्रीं नैवेद्यं ।
मणि कपूर वा घृत दीप, चरणों भेंट किये ।
मिट जाता मन अंधकार, सम्यग्ज्ञान लिये ॥
बल रिधि० । पूजूं० । बल, करम० । दीजै० । ओं ह्रीं दीपं ।
दशविध की सुरभित धूप, खेइ पावक में ।
जल जल होते हैं राख, विधि आठो उसमें ॥
बल रिधि० । पूजू० । बल, करम० । दीजै० । ओं ह्रीं धूपं ।
सरस सुपक्व फल लेय, मीठे मनहारी ।
ऋषि पदतर भेंट चढाय, शिवफल मिलतारो ।

बलरिध० । पूजूं० । बल, करम० । दीजै० । ओं ह्रीं—फलं ।

जल आदिक आठो द्रव्य, भर करके थारो ।

कर हर्ष हर्ष के नृत्य, पूजो ऋधिधारी ॥

बल रिधि० । पूजूं० । बल, करम० । दीजै० । ओं ह्रीं—अर्घं ।

प्रत्येक अर्घ । इन्द्रवज्रा छंद ।

श्रुतार्थ जो क्षण एक में ही, विचार सक्ता मन है जिनोंका ।
ऋद्धि प्रकाशो मुनिनाथ के हैं, पूजों पदाब्जद्वय अर्घ लेके ॥१॥

ॐ ह्रीं मनोबलर्द्धि धारक मुनिभ्यो अर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥१॥

सम्पूर्ण शब्दश्रुत पाठ करते, तो भी न वाणी थकती कभी है ।
न श्रान्त होते न पसेव आता, पूजों वचो ऋद्धि धरेश साधु ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं वचोबलर्द्धि धारक मुनिभ्यो अर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

कायाबल क्षीण न हो कभी भी, धारें अनेकों उपवास तो भी ।
अंगुष्ठ से पर्वत भी दबादें, काया बलर्द्धीश मुनीन्द्र पूजो ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं कायाबलर्द्धि धारक मुनिभ्यो अर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥३॥

समुच्चय अर्घं।

कायबली मुनिनाथ जो, वचोबली हैं श्रेष्ठ ।
मनोबली वा साधु जो, पूजो वे हैं ज्येष्ठ ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं मनोवचो काय बलर्द्धि धारक सर्व मुनिभ्यो अर्घं नि० ।

जयमाल। छंद तोटक।

जग मा विभव लखा कदली-तरु के सम, अस्थिर ज्यों विजली ।
सब स्वार्थं भरे जगको लखिके, निज स्वार्थं लगे परको तजिके ॥ १ ॥
तप बारह भेद कहे जिनने, समिती व्रत आदिक वा जितने ।
निरदोष धरे गुरु के चरणा, प्रगटी तब ऋद्धि मनो वचना ॥ २॥
तनु भी बलवान हुआ अति है, तुलना जिसकी न लखावत है ।
श्रुत में पद अक्षर हैं जितने, उनको वचसे कहदें झटसे ॥ ३ ॥
पर कंठ न [illegible] थके रसना न [illegible] लगे दिन वा महिना ।

सुमुहूरत एक अलं उसका, बल ऋद्धि वचो कहते इसको ॥ ४ ॥
श्रुतके पदका सब अर्थ महा, क्षण एकहिमें सुविचार किया।
पर खेद हुआ मनको नहि है, अति मोद हुआ उपमा नहि हैं ॥ ५ ॥
उपवास करैं इक वर्ष समैं, तब भी तन की नहि शक्ति कमैं।
जग तीन विषै जितने बलि हैं, सब ही बलमें उनसे कम हैं ॥ ६ ॥
उनके तनको न चिगाय सकैं, न परीषह धैर्य डिगाय सकैं।
इस भांति हुई जिनके रिधि है, नित 'श्री' चरणों उनके नत है ॥ ७ ॥
ॐ ह्रीं श्रीं कायमनोवचो बलर्द्धि धारक सर्व ऋषिभ्यो अर्घं निर्वपामि स्वाहा।

तप ऋद्धि धारक मुनीश पूजा।

स्थापना।

नश्वर देह अपावन से जब मिल सक्ता है शिवका राज।
तब इससे बलि मोह छोडकर, क्यों न करैं अपना हितकाज ॥
मनमें धारि यही दृढतासे, तप में लगे उग्रता धार।

ऋद्धी नेक भई हैं तपकीं, पूजत मिलता है सुखसार ॥१॥

ॐ ह्रीं दीप्त तप आदि सप्तविध तप ऋद्धि धारक मुनिवराः ! अत्र अवतरत अवतरत संवौ-षट्, अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः, अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट् ।

शीतल मीठा सुरभित वारि, पद में चढाऊं भरिके झारि ।
महा ऋषि हो, जय जय साधु महामुनि हो ।
तपो ऋद्धि धारक मुनिराज, पूजत देते शिवका राज ॥
महा मुनि हो, जय जय साधु महा ऋषि हो ॥१॥

ॐ ह्रीं सप्तविध तपऋद्धिधारक मुनिवरेभ्यो जलं निर्वपामि स्वाहा ।

चंदनके संग केसर पीस, पदमें चढाऊं नतकर शीस । महा०। जय०।
तपो ऋद्धिधारक० । पूजत देते०। महा०। जय०। ॐ ह्रीं—चंदनं ॥२॥
अक्षत अक्षत भरके थाल, पदतर पुंज करूं नत भाल । महा०। ज०।
तपो०। पूजत०। महा०। जय०। ॐ ह्रीं——अक्षतं ॥३॥
कोमल पुष्प बहु भांतिके ले, पदमें चढाय मदन हरले । महा०। जय०।

तपो०। पूजत०। महा०। जैय०। ॐ ह्रीं—पुष्पं ॥४॥

फैनी गूझा लाडू खीर, भेंटे मिटती क्षुधकी पीर। महा०। जय०।

तपो०। पूजत०। महा०। जय०। ॐ ह्रीं—नैवेद्यं ॥५॥

घृत कपूर मणिके ले दीप, भेंटे मिलता ज्ञान प्रदीप। महामुनि०। जय०।

तपो०। पूजत०। महा०। जय०। ॐ ह्रीं—दीपं ॥६॥

अगर तगर चंदनकी धूप, खेते होता शिवका भूप। महा०। जय०।

तपो०। पूजत०। महा०। जय०। ॐ ह्रीं—धूपं ॥७॥

सरस मिष्ट प्रासुक फल जाति, भेंटत आकुलता नशिजाति। महा०।

तपो०। पूजत०। महा०। जय०। ॐ ह्रीं—फलं ॥८॥

अनर्घ्यअर्घका भरकर थाल, पूजत कटता करमका जाल। महा०। ज०

तपो०। पूजत०। महा०। जय०। ॐ ह्रीं—अर्घं नि०।

प्रत्येक अर्घ। वसंततिलका छंद।

धारैं उपास बहुते पर ना थके हैं, न श्रांत हों न तनमें कृशता दिखाती।

दीसी दिनंदिन बढैं शुभ गंध आवै, दीसर्द्धि धारक मुनीश जजों तपस्वी ॥

ॐ ह्रीं दीसर्द्धिधर मुनीश्वरेभ्योऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥१॥

आहार लें पर न मूत्र निहार होता, वीर्यस्वरूप परिणाम सदैव होता ।
तप्तर्द्धि धारक मुनीश महातपस्वी, पूजो पदाब्ज इनके वसु अर्घ लेके ॥२॥

ॐ ह्रीं तप्त तपर्द्धि धारक सर्व मुनिभ्योऽर्घं निर्वपामि० ॥२॥

वृद्धी दिनंदिन करैं उपवास मांहीं, पर्याय पूर्णतक धीर धरैं सदा ही ।
ऋद्धी महोग्रतप धारि महातपस्वी, पूजो पदाब्ज इनके वसु द्रव्य लेके ॥३॥

ॐ ह्रीं महोग्रतपर्द्धि धारक साधुभ्योऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥३॥

निष्क्रीडितांत कठिन व्रत सिंह पालैं, उत्साहहीन करते न निजात्मको हैं ।
घोरं महादि तप ऋद्धि धरैं तपस्वी, पूजो पदाब्ज इनके वसु अर्घ लेके ।

ॐ ह्रीं महा घोरतपर्द्धि धारक साधुभ्योऽर्घं नि० ॥४॥

कष्टप्रदायि बहु रोग शरीरमें हैं, सिंहादि जंतु भयकारक भी सताते ।
तो भी न कष्ट समझें निज आत्म ध्यावैं, पूजो पराक्रमज घोर महातपस्वी ॥५॥

ॐ ह्रीं पराक्रम घोर तप ऋद्धि धारक साधुभ्योऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥५॥

भीतिप्रदायि बहु जंतु निवास भूमी, यक्षादि भूत रहते, रहते वहां हैं ।
धारैं निजव्रत, न साहसहीन होते, घोरं तपोधर ऋषीश्वर पाद पूजो ॥६॥

ॐ ह्रीं घोरंतप तपर्द्धि धारक साधुभ्योऽर्घं निर्वपामि० ॥६॥

चर्या करैं सतत आत्म सुरूपमें हैं, होते न लुब्ध सुरनारि लुभांय तो भी ।
धारैं अघोर गुण शोभित ब्रह्मचर्य, पूजो पदाब्ज इनके वसु द्रव्य लेके ॥७॥

ॐ ह्रीं घोर गुणब्रह्मचर्यर्द्धि धारक तपस्विभ्योऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥७॥

समुच्चय अर्घ, । दोहा ।

सात भेद तप ऋद्धिके, मुनि भी सात प्रकार ।
इनको पूजो भावसे, सब दुख होंगे छार ॥८॥

ओं ह्रीं सप्त प्रकार ऋद्धि धारक मुनिभ्योऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥

जयमाला ।

दोहा——तपके बारह भेद हैं, अन्तरंग बहिरंग ।
इनको धारैं जो मुनी, होते गुण सर्वंग ॥१॥

मोतिया दाम छंद

अनादि लगा विधि-जीव संयोग, दुखी रहता इससे सब लोग।
करै जब यत्न विनाशन योग, धरै तब नेकविधा तपयोग ॥२॥
सहै बहुभांति परीषह-राशि, कषाय कषै तजके विषयाश।
रहै सतत निजमें धरि ध्यान, करै अथवा श्रुतका परिज्ञान ॥३॥
धरै उपवास अनेक प्रकार, करै अवमोदर अल्प अहार।
वृती परिसंख्य करैं तप धीर, तजै लवणादि छहो रस भीर ॥४॥
विविक्त शयासन धारि सुचित्त, शरीर किलेश सहैं तपवित्त ॥
तपाग्नि जलाय दहैं विधि—काठ, विकाश करैं तब आतम—ठाठ ॥५॥
शरीर—प्रभाव वढै उस संग, समृद्धि बढै बढता सुख संग।
करै तप घोर महातप घोर, शरीर थकै न थकै नहि जोर ॥६॥
अहार करैं, पर हो न निहार, उपास करैं पर हो न विकार।

सुगंधित गंध धरै मुखचंद्र, बढै नित हीं तनकी द्युति-वृंद ॥७॥
सकै करने नहि विघ्न असात, ज्वरादिक रोग महा उत्पात।
भयानक जंतु रहैं जिस थान, रहैं भय त्यागि महासुख खान ॥८॥
न हो उनके कब ही मन-ग्लानि, धरैं नित शुक्ल तथा शुभध्यान।
महातप धारक धीर मुनीश, हरैं निजकर्म बनैं जगदीश ॥९॥
रहै उनके गुणमें जब लीन, बनै तब 'श्री' यह कर्मविहीन।
धरो इससे उनका शुभध्यान, बनो सुखराशि महा गुणखान ॥१०॥
दोहा—तपरिधि धारक ईश तुम, धर कर तप आदर्श।
शिवका पंथ दिखावते, हर कर जग आमर्श ॥११॥
ओं ह्रीं श्री तप-ऋद्धि धारक मुनीश्वरेभ्योऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥

अथ श्री रसर्द्धिधारक मुनिपूजा ।

स्थापना ।

मिष्ट न खांय पियें नहि दूध रु, तेल तजा घृत नोन दही है ।
त्याग दिये इम हैं सब ही रस, नीरस अन्न अहार लही है ।
त्याग प्रभाव हुए रस ऋद्धिप, भोज्य भए रसयुक्त सही हैं ॥
आय विराजहु हे मुनिनायक, पूजनको मनमोद लही है ॥१॥

ओं ह्रीं रसर्द्धिधारक मुनिवराः ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट्, अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः, अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट् ।

अथाष्टक ।

शीतल मिष्ट सुवारि भराकर, कंचन झारी लाई ।
धार देइ रस ऋद्धि जगी जिन, पाद सरोज चढाई ।
भला मुनि पूजो रे भाई, भला मुनि पूजो रे भाई ॥१॥

ॐ ह्रीं रसर्द्धिधारक मुनिवरेभ्यो जलं नि० स्वाहा ॥१॥

गंधसार ले केसरके संग, पीस कपूर मिलाई।
रस ऋद्धिपके चरण चढाकर, शमका सुख होजाई।
भला मुनि पूजो रे भाई॥ ओं ह्रीं—चंदनं॥२॥
तंदुल लेकर भांति भांतिके, थालमें लेय भराई।
रस ऋद्धिपके चरण चढाकर, अक्षत पदको पाई॥
भला मुनि पूजो रे भाई॥ ओं ह्रीं—अक्षतं॥३॥
नाना विधके फूल सुगंधित, करसे लेइ चुनाई।
रस ऋद्धिपके चरण चढाकर, कामका शूल नशाई॥
भला मुनि पूजो रे भाई॥ ओं ह्रीं—पुष्पं॥४॥
क्षुधाहरणके कारण नेवज, सरस सुमिष्ट बनाई।
रसकी ऋद्धि जगी जिनमुनिके, पाद सरोज चढाई।
भला मुनि पूजो रे भाई॥ ओं ह्रीं—नैवेद्यं॥५॥
जगमग जगमग ज्योति जगाई, रत्न दीप ले आई।

रस ऋद्धिपके चरण चढाकर, कुबोध मिथ्यात्व नशाई ॥
भला मुनि पूजो रे भाई । ओं ह्रीं—दीपं ॥६॥
सुगंधित दशविध द्रव्य कुटाकर, अग्नी संग जलाई ।
रस ऋद्धिपके चरण चढाकर, कर्मकाठ हो छाई ॥
भला मुनि पूजो रे भाई । ओं ह्रीं—धूपं ॥७॥
नारंगी बादाम आदि फल, लेकर थाल भराई ।
रस ऋद्धिपके चरण चढाकर, लेलो मुक्ती भाई ॥
भला मुनि पूजो रे भाई ॥ ओं ह्रीं—फलं ॥८॥
आठ द्रव्यका अर्घ बनाकर, भक्ति सहित शिरनाई ।
रस ऋद्धिपके चरण चढाकर, भवमें फेरि न आई ॥
भला मुनि पूजो रे भाई ॥ ओंह्रीं—अर्घं ॥९॥

प्रत्येक अर्घ ।

पीये जिसे शक्ति बढै तनूमें, त्यागा जिनोंने रस क्षीरको है ।

पाई इसीसे रस क्षीर ऋद्धी, पूजो उनै अर्घ चढाय भक्त्या ॥१॥

ओं ह्रीं श्री क्षीर स्रावि ऋद्धिधारक मुनिभ्योऽर्घं नि० ॥१॥

त्यागा जिनोंने घृत है तथापि, होती रसोई घृत हीन भी है ।
ऋद्धी प्रभावे घृतपूर्ण होता, आहार ऐसा उनको समझो ॥२॥

ॐ ह्रीं श्री घृतस्रावि ऋद्धिधारकमुनिभ्योऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥२॥

आहार संपूर्ण रसोइ का हो, स्वादिष्ट जैसा मधु से बना है ।
ऋद्धी मधुस्रावि धरैं यतीशा, पूजो उनै अर्घ चढाय भक्त्या ॥३॥

ॐ ह्रीं श्री मधुस्रावि ऋद्धि धारक मुनिभ्यो अर्घं निर्वपामि स्वाहा ।

आहार स्वादू अमृतार्द्रत्यागा, ऋद्धी हुई है उसके प्रभाव ।
खाद्यान्न पूरा अमृतार्द्र होता, साधू जजों अर्घ अनर्घ देके ॥४॥

ॐ ह्रीं अमृत स्रावि ऋद्धि धारक मुनिभ्यो अर्घ निर्वपामि स्वाहा ।

बाणी निकालें यदि शापदायी, हो दुष्ट जल्दी अपकारग्रस्त ।
आशी विषं ऋद्धि धरैं मुनीशा, पूजों उनै अर्घ चढाय भक्त्या ॥५॥

ॐ ह्रीं आशीविष ऋद्धि धारक मुनिभ्योऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥५॥

दृष्टी जिनों की यदि क्रोधपूर्ण, होके पड़ै जीव मरै तुरंत।
शक्ती हुई जिन साधुयें वे, होवैं हमारे सुख के प्रदाता ॥६॥

ॐ ह्रीं श्री दृष्टिविष ऋद्धि धारक मुनिभ्योऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥६॥

समुच्चय अर्घ

क्षीरस्रवादी षट ऋद्धि पाईं, संसार होता जिनसे सुखारी।
कल्याणकर्ता मुनिनाथ ऐसे, पूजो उन्होंके पदपद्मयुग्म ॥७॥

ॐ ह्रीं श्रीक्षीर स्रावित्रसरिद्धि धारक मुनिभ्यो अर्घं निर्वपामि स्वाहा।

जयमाल।

दोहा—रसना वशकरना कठिन, इंद्रिय सबके मध्य।
उसको भी जो जीतते, तरते जगसे सद्य ॥१॥

छंद तोटक।

जगमें रुलते रुलते कब ही, जगती सद बुद्धि महा महिती।

उसके वशतैं यह जीवतती, लहती सद चारित मोद अती ॥२॥
निजमें सुख पा परको तजती, व्रत धारि महा, समिती चरती ।
मनको वशमें कर मोद धरै, वच रोक सदा तन रोध करै ॥३॥
सब इन्द्रिय जीतनको उमगै, विषयाश तजै निज रूप पगै ।
नहि चाहत कोमल सेज धरा, रहते फलकादि कठोर परा ॥४॥
रसना वशमें करने अति ही, रस त्याग करैं घृत आदि सभी ।
प्रिय अप्रिय गंध समान गिनै, नहि राग विरोध सुचित्त बनै ॥५॥
लखि रूप कुरूप रहै सुमना, समभाव धरै, नहि हो विमना ।
सुन शब्द सुराग कुराग भरे, करते नहि राग विरागभरे ॥६॥
षट दैनिक कर्म सदा करते, समता स्तुति बंदन आदि जिते ।
तपते इस भांति महातप हैं, उपजैं रस आदि महा रिधि हैं ॥७॥
करते नहि मान कभी इनका, निज काम न लैं इनसे जगका ।

यह पुद्गलका अतिशायि हुआ, नहि आतममें कुछ लाभ हुआ ॥८॥
इस भांति धरैं निजमें मति हैं, करते सततं तपमें रति हैं।
जयते विधि-सैन्य वहो यति हैं, धरि मोद करो उनको नतिहैं ॥९॥
दोहा——जगको जगसे तारते, रहते निजमें लीन।
"श्री" पूजत उनके चरण, होने कर्म—विहीन ॥१०॥
ॐह्रीं श्री रसर्द्धि धारक मुनिवरेभ्योऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥

अथ श्री विक्रियर्द्धिधारक मुनि पूजा।

स्थापना। बसंत तिलका छंद।

औदारिकी यदपि देह धरैं तथापि, देवों समान शुभ विक्रिय ऋद्धि शोभे।
आवैं मुनीन्द्र तपनाथ ! सनाथ कर्नें, पूजूं पदाब्ज अति भक्ति सुलीनहोके।
ओं ह्रीं श्री एकादश प्रकार विक्रियर्द्धिधारक मुनिवराः ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट्, अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः, अत्र मम संनिहिता भवत भवत, वषट् ॥१॥

अथाष्टक। सोरठा।

शीतल नीर सुवास, कंचन झारि भराइये।

विक्रिय ऋद्धि मुनिराज, पूजत रोग नशाइये ॥१॥

ओं ह्रीं श्रीविक्रियर्द्धिधारकमुनिवरेभ्यो जलं निर्वपामि स्वाहा ॥१॥

केसर संग घिसाय, मलियागिरि चंदन लियो ।
पूजत हों मुनिराज, मेरा ताप मिटाइयो ॥ ओं ह्रीं—चंदनं ॥२॥
अक्षत ले भरि थाल, पुंज करूं तुम पगतले ।
दीजे अक्षत राज, रुलूं नही मैं भवविषैं ॥ ओं ह्रीं—अक्षतं ॥३॥
कामवाण ये पुष्प, पैने हैं अतिशूलसे ।
लायो तुम ढिंग नाथ, मैटो इसकी पीरको ॥ ओं ह्रीं—पुष्पं ॥४॥
भूख सतावै मोहि, जोर असाता नित करै ।
याको नाशहु नाथ ! नेवज विविध चढावता ॥ ओं ह्रीं—नैवेद्यं ॥५॥
मोह अंध परताप, सूझत नाही आत्म है ।
दीप चढाऊं नाथ ! दीजै केवल ज्ञानको ॥ ओं ह्रीं—दीपं ॥६॥
धूप सुगंधित लाइ, खेई अग्नि मंझार मैं ।

दीजै कर्म जलाय, मैं विनती तुमसे करूं ॥ ओं ह्रीं—धूपं ॥७॥
पक्क सरस फल लाय, तुम पद भेंटे भक्तिसे ।
दीजै शिवफल नाथ ! याचत मैं अति नम्र हो । ओं ह्रीं—फलं ॥८॥
अर्घ अनर्घ बनाय, लायो मैं तुम चरणमें ।
दे अनर्घ पद राज, शिवका स्वामी कीजिये ॥ ओं ह्रीं—अर्घं ॥९॥

प्रत्येक अर्घ । इंद्रवज्रा छंद ।

काया बनावैं अणु रूप तो भी, दीखै सदाही शुभ रूपधारी ।
शक्ती हुई है तपके प्रभाव, पूजो सदा विक्रिय रिद्धि धारी ॥१॥
ओं ह्रीं श्री अणिमा ऋद्धि धारक मुनिवरेभ्योऽर्घं नि० ॥१॥

काया बनावैं अति दीर्घ तोभी, बाधा न होती जगमें किसी को ।
शक्ती हुई है तपके प्रभाव, पूजो सदा विक्रिय रिद्धि धारी ॥२॥
ॐ ह्रीं श्री महिमा विक्रियर्द्धि धारक मुनिभ्योर्घं नि० ॥ २ ॥

काया बनावैं हलकी रुई सी, भारी न होते किस ही प्रकार ।

शक्ती हुई है तपके प्रभाव, पूजो सदा विक्रिय ऋद्धि धारी ॥३॥

ॐ ह्रीं लघिमा विक्रियर्द्धि धारक मुनिभ्योऽर्घं नि० ॥ ३ ॥

काया बनावैं अतिभार जामें, नहीं उठै शक्र समर्थ से भी।
शक्ती हुई है तपके प्रभाव, पूजो सदा विक्रिय ऋद्धि धारी ॥४॥

ॐ ह्रीं गरिमा विक्रियर्द्धि धारक मुनिभ्योऽर्घं नि० ॥ ४ ॥

इच्छानुसारी निजरूप करते, वृद्धत्व वा यौवन बाल्यवस्था।
शक्ती हुई है तपके प्रभाव, पूजो सदा विक्रिय ऋद्धि धारी ॥५॥

ॐ ह्रीं सकामरूपित्व विक्रियर्द्धिधारक मुनिभ्योऽर्घं नि० ॥ ५ ॥

धारैं महा सुंदर रूप ऐसा, होवें वशीभूत त्रिलोकवासी।
शक्ती हुई है तपके प्रभाव, पूजो सदा विक्रिय ऋद्धि धारी ॥६॥

ॐ ह्रीं वशित्व विक्रियर्द्धि धारक मुनिभ्योऽर्घं नि० ॥ ६ ॥

काया बनावैं अतितेजधारी, ईशत्व मानैं जगके निवासी।
शक्ती हुई है तपके प्रभाव, पूजो सदा विक्रिय ऋद्धि धारी ॥७॥

ॐ ह्रीं ईशत्व विक्रियर्द्धिधारकमुनिभ्योऽर्घं नि० ॥ ७ ॥

काया बनावैं शुभ शक्ति शाली, पृथ्वी घुसैं, ज्यो जलमें घुसै हैं।
शक्ती हुई है तपके प्रभाव, पूजो सदा विक्रिय ऋद्धि धारी ॥८॥

ॐ ह्रीं प्राकाम्य विक्रियर्धि धारक मुनिभ्योर्घं नि० ॥ ८ ॥

इच्छा करैं काय अदृश्य होवे, हो जाय वैसी, नहि दीखती है।
शक्ती हुई है तपके प्रभाव, पूजो सदा विक्रिय ऋद्धि धारी ॥९॥

ॐ ह्रीं अंतर्धि विक्रियर्द्धि धारक मुनिभ्योर्घं नि० ॥ ९ ॥

तिष्ठैं यथास्थान सुमेरु चोटी, स्पर्शैं; तथा सूर्य शशांक बिंब।
शक्ती हुई है तपके प्रभाव, पूजो सदा विक्रिय ऋद्धि धारी ॥१०॥

ॐ ह्रीं आप्ति विक्रियर्द्धि धारक मुनिभ्योर्घं नि० ॥ १० ॥

पावैं किसीसे प्रतिघात नाही, नाहो प्रतीघात करैं परों का।
काया हुई है अतिशायिशाली, पूजो मुनी विक्रिय ऋद्धि धारी ॥११॥

ॐ ह्रीं श्री अप्रतिघात विक्रियर्द्धि धारक मुनिभ्योर्घं नि० ॥ ११ ॥

समुच्चय अर्घ।

एकादश जो भेद हैं, विक्रियर्द्धिके भाइ।
धारक उनके ऋषिवरा, पूजो अर्घ चढाइ ॥१२॥

ॐ ह्रीं अणिमा—महिमा—लघिमा—गरिमा-रूपित्व—वशित्व-ईशत्व-प्राकाम्य—अन्तर्द्धि आप्ति अप्रतिघात इति एकादश विक्रियर्द्धि धारक मुनिभ्यो अर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥१२॥

जयमाला।

स्वामी विक्रिय ऋद्धिके, भये तपस्याजोर।
लें वे उनसे काम नहि, निस्पृह मनको मोर ॥१॥

छंद तोटक।

परिवर्तन शील सदा जग है, भ्रमते नहीं और सुभ्रावत है।
उपदेश मिले जब सद्गुरुका, उमगे तब चित्त सुभव्यन्निका ॥२॥
निज आतम रूप लखैं सुखिया, भगि जाय मतो तब जो दुखिया।
विपरीत तजे सद बोध गहै, निजमें निजकी तब प्रीति बहै ॥३॥

परमें परका तब भाव धरै, परको तजिके वनवास करै।
दिग अंबर धारि स्वयं वर हो, तप दो विधि धार स्वयं गत हो ॥४॥
क्रमसे फिर शुद्धि सभी विधि हो, तनकी चित्की अपनी मग हो ।
चित्का विनशै तब राग महा, तन-पुद्गल भी शुध होय महा ॥५॥
अवधी मन पर्यय बोध जगै, चित पूरण बोधमयी उमगै ।
तनके परमाणु महत्त्व धरैं, अणिमा गरिमा बहु भेद धरैं ॥६॥
जगको वशमें करले क्षणमें, बन ईश पुजै सब लोकनिमें ।
वसुधा जल एक समान बनै, चलने फिरने उठने बिठनै ॥७॥
प्रतिघात न हो उसका कब ही, बन जाय विलक्षण रूप सही ।
नहि देख सके उसको जन है, विन इच्छ कभी नर पामर है ॥८॥
सुर-इंद्र समा तन की महिमा, बनिजाय उसी विधिकी गरिमा ।
इसभांति शरीर समृद्धि लहै, तपकी महिमा कह "श्री" न सकै ॥९॥
दोहा—तनके अतिशय धारते, विक्रियर्द्धि है नाम ।

पूजत "श्री" उनके चरण, करके सदा प्रणाम ॥१०॥

ॐ ह्रीं श्री अणिमादि विक्रियर्द्धि धारक मुनिवरेभ्योऽर्घं नि० ॥

क्षेत्रर्द्धि (चारणर्द्धि)धारक मुनिपूजा ।

स्थापना ।

अन्तर बाह्य परिग्रह डार, महातप धारि भये ऋधि धारी ।
क्षेत्र समस्त धरा व अकाश, विहार करैं समभाव सदा ही ॥
थावर वा त्रस जीव कदापि, लहैं नहि बाध रहैं अभया ही ।
चारण ऋद्धि धरैं मुनि-ईश, विराजइ चित्त में पूजनताई ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री जंघाबल आदि नवविधि चारणर्द्धि धारक मुनिवराः ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट्, अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः, अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट् ॥१॥

अष्टक ।

स्वच्छ मिष्ट नीर लेय, झारिमें भराइये, मुनीश चारणर्द्धिके पादमें चढाइये ।
शांत हो भवाग्नितาप, आत्मशांति प्राप्त हो, कभी न कर्म दुःख दें नंतसौख्य प्राप्त हो

ओं ह्रीं जंघाचरण आदि नवविधिचारणर्द्धिधारक मुनिभ्यो जलं नि० ।

गंधसार माथ लेइ, लायची घिसाइये ।

चारणर्द्धि धारि पाद–पद्ममें चढाइये ॥

होयगी उपाधि शांत, कर्मको विनाशके ।

प्राप्त हो निजात्म–सौख्य, शुद्धता उपायके ॥२॥ॐ ह्रीं—चंदनं ॥

अक्षि आदि लुब्ध होय, अक्षतें विलोकिकें ।

पुंज दे चढाइ ऋद्धि, साधुके सुपादमें ॥

प्राप्त हो पदाक्षतं, कभी न होय सक्षतं ।

अक्षकी उपाधि मेटि, अक्ष होय अक्षतं ॥३॥ॐ ह्रीं—अक्षतान् ।

पुष्पराशि कामवाण छीन वीन लाइये ।

चारणर्द्धिके समीप भक्तिसे चढाइये ॥

काम-भीति भाग जाय, हो असात ना कभी ।

कामहीन होयके, अनन्त सौख्य पाइये ॥४॥ॐ ह्रीं——पुष्पं

सद्य-जात भांति भांत मिष्ट चारु लीजिए ।
चारणर्द्धिधारिके सुपादमें जजीजिए ।
भूख जाय प्यास जाय, वेदनी असातकी
व्याधि सर्व भाग जांय, शांति होइ आत्मकी ॥५॥ॐ ह्रीं —नैवेद्यं ।

मोह अंधकार घेर घेर दुःख देत है ।
हो न दे सुज्ञान दर्श, आत्ममें यथार्थ है ॥
चारणर्द्धिधारके, चढाय दीप पादमें
कीजिए विनाश मोह हूजिए प्रकाशमें ॥६॥ॐ ह्रीं——दीपं ॥

धूप गंध भांति भांति कूटके बनाइए ।
चारणर्द्धि धारि पाद अग्र अग्नि खेइए ॥
धूम्र होयके उडे कुकर्मकाठ भस्म हो ।
ज्ञान ज्योति हो उदय, निजात्मका स्वभाव जो ॥७॥ॐ ह्रीं —धूपं

सर्व इंद्रि तृप्त हों, प्रफुल्ल चित्त मत्त हो।
देखि सर्व भांति पक्व राशिको फलानिकी ॥
चारणर्द्धि धारिपाद अग्रमें निवेदिए
पाइए सुमोक्ष शीघ्र कर्म नष्ट होयके ॥ ८ ॥ॐ ह्रीं ——फलं ॥
अर्घ लेइ पात्रमें सुभक्तिसे भराइके ।
चारणर्द्धिधारि-पाद नम्र हो चढाइके ॥
बीत जाय सर्व दुःख, आत्मसौख्यलीन हो ।
आयके विभावमें कभी न फेरि लीन हो ॥९॥ॐ ह्रीं—अर्घं ॥

प्रत्येक-अर्घ । इन्द्रवज्रा छंद ।

जंघा सहारे तपके प्रभाव, पृथ्वी छुएं ना चलते तथापि ।
बाधा न हो थावर वा त्रसोंको, दीजै उन्हें अर्घ नवाइ शीश ॥१॥
ॐ ह्रीं जंघा चारणर्द्धि धारक मुनिभ्यो ऽर्घं नि० ॥१॥
श्रेणीक्रमें चालत हैं तथापि, बाधा न हो पर्वत आदिसे भी ।

शक्ती प्रकाशी तपने जिनोंके, पूजो उन्हें अर्घ चढाय भक्त्या ॥२॥

ओं ह्रीं श्रेणिचारण ऋद्धि धारक मुनिभ्योऽर्घं नि० ॥२॥

चालैं फलोंपै नहि होइ बाधा, बाधा न पावै फल जाति भी है ।

ऋतुगण ऐसे तपके प्रभाव, पूजो उन्हें अर्घ चढाय भक्त्या ॥३॥

ओं ह्रीं फलचारणर्द्धिधारक मुनिभ्योऽर्घं नि० ॥३॥

जैसे चलैं भूपर पाद देके, चालैं तथा वे जलराशि पै भी ।

बाधा न पावैं तपके प्रभाव, पूजो उन्हें अर्घ चढाय भक्त्या ॥४॥

ओं ह्रीं श्री जलचारणर्द्धिधारक मुनिभ्योऽर्घं नि० ॥४॥

तन्तू न टूटे जिनके चलेसे, ऐसी हुई शक्ति शरीरमें है ।

श्री तन्तुचारी मुनिनाथ वे हैं, पूजो उन्हें अर्घ चढाय भक्त्या ॥५॥

ओं ह्रीं श्री तन्तुचारणर्द्धि धारक मुनिभ्यो र्घं नि० ॥५॥

बाधा न पावै जिनके चलेसे, पुष्पौघ, शक्ति प्रगटी जिनोंमें ।

पुष्पौघचारी मुनिनाथ वे हैं, पूजो उन्हें अर्घ चढाइ भक्त्या ॥६॥

ओं ह्री पुष्पचारणर्द्धि धारक मुनिभ्योऽर्घं नि० ॥६॥

बाधा नही वीज समूह पाता, चालैं जिनोंके पद राखनेसे ।
शक्ती हुई है तपके प्रभाव, पूजो उन्हें अर्घ चढाय भक्त्या ॥७॥

ओं ह्रीं श्री वीज चारणर्द्धि धारक मुनिभ्योऽर्घं नि० ॥७॥

अंकूर बाधा नहीं भोगते हैं, रक्खैं यदा वे पद पंक्तिको हैं ।
आश्चर्यकारी तपशक्ति धारैं, पूजो उन्हें अर्घ चढाय भक्त्या ॥८॥

ओं ह्रीं श्री अंकुर चारणर्द्धि धारक मुनिभ्योऽर्घं नि० ॥८॥

आकाशमें स्वैर विहार कर्त्ते, बाधा न पाते किसही प्रकार।
ऋद्धी नभोगामि धरैं यतीशा, पूजो उन्हें अर्घ चढाय भक्त्या ॥९॥

ओं ह्रीं आकाशचारर्द्धिधारकमुनिभ्योऽर्घं नि० ॥९॥

समुच्चय—अर्घ ।

जंघावली आदि समस्त चेत्र,–ऋद्धी प्रकाशी नव हैं जिनोंके।
उत्कृष्ट ऋद्धीधर वे मुनीशा, नाशें हमारे भवके कलेशा ॥१०॥

ओं ह्रीं श्री नवप्रकारचारणर्द्धिधारकमुनिभ्यः पूर्णार्घं नि० ॥१०॥

जयमाला । भुजंग प्रयात छंद

तपस्या करैं जो महाकष्ट झेलें, न रागी बनैं द्वेषको भी न पालैं ।
धरैं बाह्य अभ्यन्तरंगी विशुद्धी, करैं प्राप्त वे क्षेत्रचारी समृद्धी ॥१॥
नही भेद आकाश भूमी जहां है, चालैं उभै पै न बाधा कहां है ।
नही कष्ट पाते त्रस स्थावरा भी, न पुष्पा न अंकूर तन्तू कभी भी ॥२॥
नदी आदि पानी भरे हैं प्रदेशा, करैं विघ्न नाही चलैं वे स्वदेशा ।
जलै अग्नि तो भी चलैं वे उसी पै, न बाधा स्वयंको न दें अग्निको हैं ॥३॥
अनुश्रेणि चालैं महाविघ्न दें जो, सभी पर्वतों भित्ति आदी उलांघै ।
रखैं हाथ जंघा न छूएं महीको, अनालम्ब चालें यथा हैं महीपै ॥४॥
सभी भांतिके कोमलांगी फलोंपै, रखैं पाद पै ना दलें हैं किसीको ।
चलैं चाल ऐसी न हो जीव बाधा, नमों चारणर्द्धी सुसाधू कृपाला ॥५॥
नभोगामि स्वामी गुणोंके निधाना, विरागी तपस्वी महाज्ञानवाना ।

दयालू सदा जीव कल्याणकर्त्ता, हरो कर्म जो हैं सदा दुःख दाता ॥६॥
हुआ काल नादी, सहे कष्ट नंता, नहीं जात बोले वचोंसे सुसन्ता।
सुबुद्धी करो नाथ मेरी सुज्ञानी, तपस्वी बनूं धारिके जैन वाणी ॥७॥

दोहा—द्वैविध तपके योगतैं, प्राप्त करी हैं ऋद्धि।
परकल्याणको साधते, रखकर स्वमें समृद्धि ॥८॥
ऐसे ऋषि संसारसे, होते निज हैं पार।
"श्री" बंदत उनके चरण, करैं मुझे भी पार ॥९॥

ॐ ह्रीं नवविध क्षेत्र चारणर्द्धिधारक मुनिवरेभ्योऽर्घं निर्वपामि स्वाहा।

अथ श्री अक्षीण ऋद्धिधारक मुनि पूजा

स्थापना । इन्द्र वज्रा छंद ।

अक्षीण ऋद्धी प्रगटी जिनों के, वाह्यांतरंगी तपके प्रभाव।
तिष्ठो मुनीन्द्रा ! पद पूजने को, उत्साह मेरा मनमें हुआ है ॥ १॥

ॐ ह्रीं श्रीं अक्षीणर्द्धि धारक मुनिवराः ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् अत्र तिष्ठत तिष्ठत

ठः ठः, अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्।

अथाष्टक ।

मणि के सम निरमल वारि, कंचन झारि भरी।
तुम चरण पखालूं देव! दीजै शांति खरी ॥
अक्षीण ऋद्धि के स्वामि! तुम पद पूजत हों।
नश जन्म जरा मृति जाय, ये ही जांचत हों ॥१॥

ॐ ह्रीं अक्षीणर्द्धि धारक मुनिवरेभ्यो जलं नि०॥१॥

मलियागिरि चंदन साथ, केसर को घिसिये।
गुरु पाद जजों मनलाय, भवका तप हरिये ॥
अक्षीण० । तुम पद० । नश जन्म०। ॐ ह्रीं —चंदनं ॥२॥

शुभ शालि सुगंधित लाय, दीजै पुंज घने।
हों अक्षय ज्ञान प्रकाश, तब ही काम बने ॥
अक्षीण० । तुम पद० । नशं जन्म०। ॐ ह्रीं—अक्षतं ॥३॥

कज बेला जुही चमेलि, बहुविध फूल लिये।
दुठ काम नाशने हेत, गुरुके चरणे धरे॥
अक्षीण०। तुम पद०। नशि ज०॥ ओं ह्रीं—पुष्पं॥४॥

पकवान सरस बहुभांति, सुन्दर सद्य बने।
क्षुध बाधा हरने नाथ, भेंटे चरण तले॥
अक्षीण०। तुम पद०। नशि जन्म०॥ ओं ह्रीं—नैवेद्यं॥५॥

दीपक घृत मणिके लाय, पदमें भेंट करूं।
नश जाय मोह अज्ञान, आतम मैल हरूं॥
अक्षीण०। तुम पद०। नशि जन्म०। ओं ह्रीं—दीपं॥६॥

दश अंगी धूप सुलाय, धूपायन डारी।
दुठ कर्म जलैं उस मांहि, शिवसुख मिलता री॥
अक्षीण०। तुम पद०। नशि ज०। ओं ह्रीं—धूपं॥७॥

सुरस मिष्ट फल पक्व, रसना मन लोभैं।
दिय पदतर भेंट चढाय, आतम गुण शोभैं॥
अक्षीण०। तुम पद०। नशि ज०। ओं ह्रीं—फलं॥८॥
शुभ पूजनके सब द्रव्य, लायो भरि थारी।
मिल जाय अर्घ्य पद देव! यह विनती म्हारी॥
अक्षीण०। तुम पद०। नशि ज०। ओं ह्रीं···अर्घं॥९॥

प्रत्येक अर्घ। भुजंगप्रयात छंद।

विराजैं मुनी अल्प होवै सुभूमी, उसी स्थान में शक्ति होजाय ऐसी।
निराबाध बैठैं करोडों मनुष्य, सदक्षीण संवास ऋद्धीश पूजों॥१॥
ॐ ह्रीं अक्षीण संवासर्द्धि धारक मुनिवरेभ्योऽर्घं निर्वपामि स्वाहा॥१॥
जहां साधु आहार लें, हो अटूट, सुभंडार ऐसा कभी जो चुकै ना।
मनुष्यों करोडों हि खाजांय तो भी, सदक्षीण माहानसर्द्धीश पूजों॥२॥

ॐ ह्रीं अक्षीण महानसर्द्धि धारक मुनिवरेभ्योऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥२॥

समुच्चय-अर्घ। दोहा।

महानस अरु संवास हैं, दोविध अक्षीण ऋद्धि।
उनके धारक ऋषि जजो, जिससे होइ समृद्धि ॥३॥

ॐ ह्रीं अक्षीण संवास महानसर्द्धि धारक मुनिवरेभ्योऽर्घं नि०॥३॥

जयमाल।

जय सद्गुरुके पद–पद्म जजो, उनके गुणको जन नित्य भजो।
बिनकारण बंधु हितंकर हैं, उपदेश करैं नित शंकर हैं ॥१॥
नहि राग धरैं स्तुतिकारक से, नहि द्वेष करैं निज हिंसकसे।
समता धरि आतममें रमते, विधि नाश करैं ममता हरते ॥२॥
विकथा न कभी वचसे करते, सुखदायक धर्म-कथा कहते।
अठवीस महागुण धारत हैं, समिती व्रत पंच सुपालत हैं ॥३॥
मन इन्द्रिय वश्य करैं नित हैं, षट कर्म अवश्यक पालत हैं।

कच-लोच करें अपने करसे, इकभुक्ति खडे करते करसे ॥४॥
शयनासनमें शिल काठ धरा, व्यवहार करैं धरि मोद खरा।
नहि घर्षण दांतनिका करते, नहि स्नान करैं वसन त्यजते ॥५॥
सहते उपसर्ग सभी विघ्न हैं, बहिरंतर दो तपते तप हैं।
इस भांति करैं शुध आतमको, कर दूर लगे विधि-कज्जलको ॥६॥
निरवांछ तपैं तप उग्र महा, उपजैं इससे शुभ ऋद्धि महा।
तनुमें चितमें परिशुद्धि बढै, क्रमसे क्रमसे जग अंत चढै ॥७॥
तनु आतमका सहयोग छुटै, फिर ना इसका सहयोग जुटै।
अपने अपने परिणाम धरैं, रह शुद्ध सदा निज रूप धरैं ॥८॥
कर सेव गुरूत्तमकी सबही, अभिलाष करो बनने सम ही।
गति मानुष जन्म लिया यह है, तप धारण ही इसका फल है ॥९॥
गति और दिखैं नहि पावन हैं, सबमें दुखदायक साधन हैं।

इससे अब देर करो मति हे! निज शक्ति समान करो तप हे ॥१०॥

दोहा—पुद्गल शक्ति अनन्त है, आतम शक्ति अनंत।
मिले अनादीकालसे, करते निजमें द्वंद ॥११॥
कर पौरुष जिनने जया, कार्मण पौद्गल रूप।
'श्री' नमता उनके चरण, होने शिवका भूप ॥१२॥

ॐ ह्रीं श्री अक्षीणर्द्धिधारक मुनिवरेभ्योऽर्घं निर्वपामि स्वाहा।

अथ श्रुत—देश—परम—सर्वावधि धारक मुनि पूजा ॥

स्थापना।

करी तपस्या सत्य ज्ञान उद्योत हुआ है।
प्रगटा अवधिज्ञान, भेद श्रुत आदि लहा है ॥
ऐसे श्री मुनिनाथ, जगतका हित करते हैं।
अत्र विराजो आय, भक्ति से हम जजते हैं ॥१॥

ओं ह्रीं श्री श्रुतावधि—देशावधि—परमावधि—सर्वावधिज्ञान विभूषित मुनिवरा : अत्र अवतरत

अवतरत संवौषट्, अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः, अत्र मम संनिहिता भवत भवत, वषट्।

अथाष्टक।

स्वच्छ शुद्ध शीतल जल लाय, पूजत जन्मजरामृति जाय।
तपोनिधि हो, जय जय योगि, तपो निधि हो।
तप बल पाया अवधिज्ञान, देश-सर्व-परम-श्रुत मान।
तपो निधि हो, जय जय योगि! तपोनिधि हो।
ॐ ह्रीं श्री श्रुत-देश-परम सर्वावधि. ज्ञान विभूषित मुनिभ्यो जलं निर्वपामि स्वाहा ॥१॥
घनसार-घसौं करपूर मिलाय, तुम पद चरचैं जिय हुलसाय।
तपोनिधि हो जय जय योगि तपोनिधि हो।
तपबल ०। देशसर्व ०। तपो ०। जय ०। ओं ह्रीं—चंदनं ॥ २ ॥
मुक्तासम तंदुल अतिशुद्ध, पुंज चढ़ाय होउँ प्रतिबुद्ध।
तपो ०। जय ०। तपबल ०। देश ०। तपो ०। ओं ह्रीं—अक्षतं ॥ ३ ॥
कामविनाशन कारण जान, पुष्प चढ़ाऊं तुम पद आन।

तपो ०। जय ०। तपबल ०। देश ०। तपो ०। ओं ह्रीं ⋯ पुष्पं ॥ ४ ॥
नेवज ताजे तुरत बनाय, अर्पित करते क्षुधा नशाय।
तपो ०। जय ०। तपबल ०। देश ०। तपो ०। ओं ह्रीं—नैवेद्यं ॥ ५ ॥
दीपक जगमग ज्योति जगाय, पूजत ही अज्ञान पलाय।
तपो०। जय०। तपबल०। देश०। तपो०। ओंह्रीं—दीपं ॥ ६ ॥
धूपायन मधि धूप सुडार, कर्मशत्रु होवैं मम च्छार।
तपो०। जय०। तप बल०। देश०। तपो०। ओं ह्रीं —धूपं ॥ ७ ॥
पावन पक्क सुफल बहु लाय, मोक्ष प्राप्ति के हेतु चढाय।
तपो ०। जय ०। तपबल ०। देश ०। जय ०। ॐ ह्रीं—फलं ॥ ८ ॥
आठ द्रव्य को संग मिलाय, अर्घ चढाऊं मन हुलसाय।
तपो ०। जय ०। तपबल ०। देश ०। जय ०। ॐ ह्रीं—अर्घं ॥९॥

प्रत्येक अर्घ। दोहा।

श्रुतावधिके प्रभाव तैं, जाने श्रुत का मम।
पूजों ऐसे साधुको, जिससे भागैं भर्म ॥ १ ॥
ॐ ह्रीं श्री श्रुतावधिधारक मुनिवरेभ्यो ऽर्घं नि० स्वाहा ॥१॥
देशावधि जिनको हुआ, बहिरंतर तप योग।
पूजों ऐसे साधु को, मन बच तन संयोग ॥ २ ॥
ॐ ह्रीं श्री देशावधिधारकमुनिवरेभ्योऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥२॥
अवधि योगतैं जानते, पुद्गल द्रव्य समस्त।
पूजो उनको भावसे, दुष्कृत होंगे अस्त ॥ ३ ॥
ॐ ह्रीं श्री परमावधि धारक मुनिवरेभ्योऽर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥३॥
सर्वावधि जिनके हुआ, जानैं अणुसे अल्प।
पूजो उनको अर्घ से, मिटे उपाधि अनल्प ॥ ४ ॥
ॐ ह्रीं श्री सर्वावधिधारक मुनिभ्यो अर्घं निर्वपामि स्वाहा ॥४॥
जयमाला। दोहा।
ऋषिमंडलमैं राजते, योगिराज तपनाथ।

गुण गाउं मैं भक्तिधर, कीजै मुझै सनाथ ॥१॥

मोतिया दाम छंद। १६ मात्रा।

असार शरीर सुभोग अनित्य, धरा मनमें यह भाव सुसत्य।
दिया घर छांडि किया बनवास, लहे व्रत चारित ज्ञान प्रकाश ॥२॥
तजे सुपरिग्रह अंतर वाह्य, करैं तप तीव्र सु आतम गाह्य।
भई तब ऋद्धि अनेक प्रकार, लहा अवधि श्रुत देश सुसार ॥३॥
परा अवधी सरवावधि ज्ञान, सुजानत पुद्गल द्रव्य महान।
रहैं अविकार सदा समभाव, करैं नहि राग द्वेष रु सुभाव ॥४॥
लखैं इनका यह शांत स्वरूप, तजै पशु भी अति क्रूर स्वरूप।
धरैं शिव हेतु सुध्यान पवित्र, बनै वह काटन कर्म लवित्र ॥५॥
श्रुतावधिके बल शास्त्र प्रसार, करैं भवि जीवन को हितकार।
समूर्ति पदार्थ रहैं जिस खेत, विकास करै परमाणु समेत ॥६॥
सर्वावधि ज्ञान करै सब काल, लखै सब मूर्त्त पदार्थ सुहाल।

परावधि का सब क्षेत्र सुभाग, करै यह ज्ञान अनंतम भाग ॥७॥
अणु तक जानत पूर्ण सुस्वच्छ, सदा शिव पावत होकर अच्छ ।
लहैं तब आनंद शाश्वत काल, रहैं थिर एक समान त्रिकाल ॥८॥

दोहा—योगिराज प्रभावतैं, जगमें सुखकी वृद्धि ।
जो इनकी पूजा करै, पावै सबही ऋद्धि ॥९॥

ॐ ह्रीं श्रुतावधि, देशावधि, परमावधि, सर्वावधि, ज्ञान विभूषित मुनिवरेभ्यो ऽर्घं निर्वपामि-स्वाहा ।

अथ चतुर्णिकाय देवेन्द्र पूजा ।

स्थापना । दोहा ।

चार निकायके देव हैं, उनके सबही इन्द्र ।
रहें जिनेन्द्र की भक्ति में, लीन सदा निस्तन्द्र ॥ १ ॥
वात्सल वश साधर्मिके, सहायक होते आय ।
इससे जैनी जन कर, आदर उनका भाय ॥ २ ॥

जिनधर्मी सब इन्द्र हैं, शक्तिवान गुणवान।
आवैं यज्ञ विधान में, नाशैं विघ्न वितान॥ ३॥

ॐ ह्रीं कल्पेन्द्रादयः सर्वे इन्द्राः सपरिवाराः अस्मिन् श्रीऋषिमण्डलविधाने आगच्छत २ संवौषट्, तिष्ठत २ ठः ठः, मम सन्निहिता भवत भवत वषट्। स्व-स्व-नियोगं पूर्णतया कुरुत २ पुष्पं निर्वपामि स्वाहा।

अथाष्टक।

उज्वल शीतल नीर, लेकरि भरि झारी।
मैं पैर धुलाऊं इन्द्र, बाह्य शुद्धिकारी॥
तुम सबही हो जिनभक्त, पूजो यहं आकर।
श्री ऋषिमंडल पूज विधान, यह है अति सुखकर॥

ॐ ह्रीं चतुर्णिकाय देवेन्द्रेभ्यो जलं यच्छामि स्वाहा॥

करते सुगंधित देह, अतिथीकी गँध से।
अरपों केसर साथ, तुमको इसहीसे॥

जिनधर्मी तुमको देख, मेरा जिय हुलसै।
अक्षत चौक पुराय, यह आतिथ्य लसै ॥
तुम सब ०। श्री ऋषि ०। ॐ ह्रीं— अक्षतम् ।
कल्पतरूके फूल, दुर्लभ हमको हैं। करूं भेट ये फूल, नाना विधिके हैं ॥
तुम सब ०। श्री ऋषि ०। ॐ ह्रीं— पुष्पम् ।
तुम अमृतभोजी देव, क्षुधका दुख नाहीं। तौ भी यह नैवेद्य भेटैं तुम ताईं ।
तुम सब ०। श्री ऋषि ०। ॐ ह्रीं— नैवेद्यम् ।
दीपक जोति जलाय, करते आरति हैं।
आतिथ्यकरण को रीति, दीप जगावत हैं।
तुम सब ०। श्री ऋषि ०। ॐ ह्रीं— दीपम् ।
करैं सुगंधित देश अतिथी आनेसे, खेई दशांगी धूप, अगनीमें इससे ॥
तुम सब ०। श्री ऋषि ०। ॐ ह्रीं— धूपम् ॥

मध्य लोक को द्योतते, ज्योतिषदेव विमान ।
आये श्री जिनयज्ञमें, लेवें भाग समान ॥३॥

ॐ ह्रीं ज्योतिष्क देवेंद्रा जिनयज्ञभागं गृह्यतां २ स्वाहा ।

ऊर्ध्व लोक के वासि हैं, कल्पोपपन्ना देव ।
आये साथमें इन्द्रके, यज्ञ भाग को लेव ॥४॥

ॐ ह्रीं कल्पेंद्राः ! यज्ञभागं गृह्यतां २ स्वाहा ।

जयमाल । दोहा ।

व्यंतर भावन जोतिषी कल्पोपन्ना देव । अपने अपने इंद्र के रहें अधीन सदेव ।
इनके हैं आवास जो उनमें चैत्य जिनेश । इनकी ये पूजा करैं कर शुभ भाव विशेष
सुरगतिमें जिन पूजना धर्मध्यानका हेतु । महा अणु वा वृत्तका कोई वहां नहि हेतु
जो जन जिनभक्ती करैं उनको देख प्रसन्न । होते वे सब देव हैं करते सुख आसन्न ।
साधर्मीको देख कर वत्सलभाव विशेष । होता है किसके नहीं हरने दुःख अशेष ।

कहा जिनशासन में सब भेव, चतुर्विधि देव करैं जिनसेव।
विअंतर देव रहैं मधि लोक, पताल बसैं अति आनंद ओक ॥६॥
सु आठ विभेद बतावत ग्रंथ, ये सोलह इन्द्र कहे निरग्रंथ।
सु तायस–त्रिंशत भेद महान, लसै नहि लोक सुपाल सुजान ॥७॥
समानिक आदि रहे परिवार, करै जिनपूज महा हितकार।
सु जोतिष देव कहे इम पांच, करै इन शासन चंद्रम रांच ॥८॥
पताल रहैं भवनाधिप देव, लसैं इनमें दश ही सब भेव।
अधीश्वर बीस करैं इन राज, सदा सब भक्ति करैं जिनराज ॥९॥
सुधर्म सभाधिप आदिक इन्द्र, दुआदस भेद कहे जिनचंद्र।
अभोन रहैं सुर संख्य अतीत, जिनेश्वर वाणि करैं परतीत ॥१०॥
धरैं उर भक्ति महा हितकार, लहैं जिन शासन का उपकार।
लखैं जब जैन जैनों पर विघ्न, सहाय करैं उनका कर निघ्न ॥११॥

दोहा—सम्यग्दृष्टी रीति है, साधर्मी जन प्रीति।
जिनपूजन आदिक समय, चाहे सभी सुनीति ॥ १२ ॥
चारोंगतिके जैनका, जैन करे सम्मान।
जैसी जिसकी योग्यता, करै विघ्नकी हान ॥ १३ ॥

ॐ ह्रीं कल्पेन्द्रादि चतुर्णिकाय देवेन्द्रेभ्योऽर्घं ददामि स्वाहा।

अथ पंचमवलयस्थित श्री आदि देवता पूजा।

स्थापना। शालिनी छंद।

श्री ह्री आदी देवता आय तिष्ठैं, जैनी पूजा प्रारभी मोदसे है।
कीजे कीजे आपना कार्य आके, फैलै फैलै जैन धर्म प्रभाव ॥

ॐ ह्रीं श्री ह्री आदि चतुर्विंशति देवताः! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट्, अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः, अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्।

अथाष्टक।

आये विघ्नों को हटा मूलसे ही, श्री विस्तारैं मंडपी भूमिमध्ये।

श्री ह्री आदी देवियोंको इसीसे, देते वारो झारि सौवर्णिकी से ॥१॥

श्रों ह्रीं श्री ह्री आदि चतुर्विंशति देवीभ्यो जलं यच्छामीति स्वाहा ॥१॥

जैनी भक्तीमें सदा लीन हैं, ये, आके कर्ती यज्ञसाहाय्य नित्य।

देते गंधं केसरादी समेतं, श्री ह्री आदी देवियोंको इसीसे ॥२॥ ॐ ह्रीं–गंधं

आये जैनी सज्जनोंको खुसीसे, सत्कारै हैं, चौक आदी पुराके।

देते शालो अच्चतैं प्रीत होके, श्री ह्री आदी देवियोंको इसींसे ॥३॥ ॐह्रीं-अच्चतं

बेला चंपा पारिजातादि पुष्प, गूथी माला चित्त दे हृष्ट होके।

श्री ह्री आदी देवियोंको समपूं, जो हैं आईं, जैन पूजा विधाने ॥४॥ ॐ ह्रींपुष्पं

गूझा फैनो पूरिका मोदकादी, नाना भांती मिष्ट नैवेद्य लेके।

सत्कारूं मैं देवि चौविसियोंको, जो हैं आईं जैन पूजा विधाने ॥५॥ ॐ नैवेद्यं

जाले घींके वा मणीके प्रदीपा, कीनी शोभा चित्तमें हृष्ट होके।

श्री ह्री आदी देवियोंको समपूं जो हैं आईं, जैनपूजा विधाने ॥६॥ ॐह्रीं दीपं

ताजी कूटी द्रव्य नाना सुगंधो, खेई अग्नी धूप लेके दशांगी।

कीना सर्व क्षेत्र सौगंध्य पूर्ण, श्री ही आदी देवता स्वागताय ॥७॥ ॐ ह्रीं धूपं

ताजे मीठे पक्व चित्तप्रमोदी, एला केला आम आदी फलों को।

लेके भेंटा देवियोंको समग्र, जो हैं आई जैनपूजा विधाने ॥८॥ ॐ ह्रीं फलं।

देते अर्घ्य शिष्ट आतिथ्यमें हैं, वारी आदी आठको साथ लेके।

दीना त्यों ही अर्घ यो देवियोंको, जो हैं आई जैनपूजा विधाने ॥९॥ ॐ ह्रीं अर्घं

प्रत्येक अर्घ। शालिनी छंद।

आओ श्री श्री देवि लेके समृद्धी, कीजे शोभा सर्वथा हो अनूपा।

भक्तीमें हो लीन जैनेंद्र की में, शान्ती पाती हो इसीसे समर्चूं ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री देवि अत्र आगच्छ आगच्छ इदं अर्घं पाद्यं गंधं पुष्पं दीपं धूपं चरुं बलिं स्वास्तिकम-क्षतं यज्ञभागं च भावाभिवेदितान् यजामहे प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा।

२। श्रीह्री देवी आय उत्साह सेती, ह्री को देना सर्व आगंतुकोंको।

जैनो पूजा सर्व कल्याणकारी, हर्षैं मोदैं सर्वही धर्मधारी ॐ ह्रीं ह्रीदेव्यै अर्घं

३। पूजो अर्चो हे धृती देवि भक्ते ! सर्वज्ञाता वीतरागी जिनेन्द्र।
शांती पाती मानसी हो इसीसे, देना आके धैर्य साधर्मियों को ॐ ह्रीं धृतये अर्घं
४। लक्ष्मी देवी आप भक्ता सदा से, सर्वज्ञाता सर्वदृष्टा जिनोंकी।
लक्ष्मी देना जैनपूजाविधाने, लेना लेना अर्घ सप्रीत होके ॐ ह्रीं लक्ष्मीदेव्यै अर्घं
५। गौरी देवी पूजती अर्हतोंको, जो हैं स्वामी सर्व ही देवतोंके।
लेना अर्घं यज्ञभाग स्वकीय, कीजै रक्षा जैन साधर्मियों की ॐ ह्रीं गौर्यै अर्घं
६। सत्कान्तीसे शोभते जो जिनेन्द्रा, पूजैं इन्द्रा भक्ति में नम्र होके।
पूजैं भक्ती लीन हो चंडिका भी, ऐसी जैनी देविको अर्घ देता ॐ ह्रीं चंड्यै अर्घं
७। कर्मारी नष्ट कीने जिनोंने, पूजैं ऐसे देवको जो सदा ही।
आई है जो जैनपूजा विधाने अपूं अर्घं देवि सारस्वतीको ॐ ह्रींसरस्वत्यै अर्घं
८। नाशे आठों कर्म शत्रू जिनोंने, पूजैं ऐसे देव जैनेन्द्र को ही।
आई है जो जैन पूजाविधाने, देता अर्घं प्रीतिसेती जयाको ॐ ह्रींजयायै अर्घं

९ । ब्यापे हैं जो ज्ञानसे विश्व मध्ये, तार भव्योंको सदा ज्ञान देके
पूजे ऐसे देव जैनेन्द्रको जो, अपूं अर्घं अम्बिकादेविको मैं ॐह्रीं अम्बिकायै अर्घं
१० । नाशे घाती कर्म चारो जिनोंने, पाये चारो नंत वीर्यादि भाव ।
पूजे ऐसे देव जैनेन्द्रको जो अपूं अर्घं वीजियादेविको में ॐह्रीं विजयायै अर्घं
११ । छन्ना देवी भक्त जैनेन्द्रकी है, पूजे नाही अन्य मिथ्यामतोंको ।
आई है जोजैनपूजाविधाने, अपूं अर्घं प्रीतसे नम्र होके ।ॐह्रीं छिन्नायै अर्घं
१२ । सर्वज्ञाता सर्वदृष्टा सदा जो, धारैं नंतों सौख्यकारी-गुणोंको ।
पूजे ऐसे देव जैनेन्द्रको जो, अपूं अर्घं आजितादेविको मैं ॐह्रीं अजितायै अर्घं
१३ । नित्या देवी नित्यजैनेन्द्र सेवी नाही सेवै अन्य मिथ्यापथोंको ।
आई है जो भक्ति जैनेन्द्रकोसे,अपूं अर्घं मैं उसे प्रीत होके ॐह्रींनित्यायैअर्घं
१४ । रच्चैं हैं जो जीव राशो सदैव, देखौं लोकालोक के सर्वं अर्थं ।
पूजे ऐसे देव जैनेन्द्रको जो, अपूं अर्घं मैं मदद्राविकाको ॐह्रीं मदद्रवायै अर्घं

१५। कामांगां है देवि जैनेन्द्रभक्ता, टालै विघ्नों को सदा आवतै को।
आई है जो जैनपूजा विधाने, अर्घ अर्पूं प्रीतमें मग्न होके॥ॐ ह्रीं कामांगायै अर्घं
१६। सिद्धी पाई कर्म आठौं नशाके, स्वामी हूए सर्व नंतों गुणों के।
पूजै ऐसे देव जैनेन्द्रको ही अर्पूं अर्घं कामवाणा सुरीको ॐ ह्रीं कामवाणायै अर्घं
१७। नित्यानंदी देव जैनेन्द्रको जो, पूजै मानै चित्तमें भक्ति ठानै।
आई है जो जैनपूजा विधाने, श्रीसानंदा देविको अर्घ अर्पूं ॐ ह्रीं सानंदायै अर्घं
१८। आठों शोभैं प्रातिहार्या जिनों के, वाह्या लक्ष्मी और भी नंत शोभै।
पूजै ऐसेदेव जैनेन्द्रको जो,अर्पूं अर्घं नंदमालीनिकाको ॐ ह्रीं नंदमालिन्यै अर्घं
१६। श्री जैनेन्द्रो भक्ति लीना सदा हो, माया देवी स्वागतं आपको है।
लीजे पूजा भागको हृष्ट होके, सर्वोत्कृष्टा जैनपूजा कही है ॐ ह्रीं मायायै अर्घं
२०। नांहीं मृत्यू जन्म आदि प्रदोषा, सर्वज्ञाता सर्वदृष्टा सुखी है।
पूजै ऐसेदेव को जो सदाही, देता पूजाभाग मायाविनीको ॐ ह्रीं मायाविन्यैअर्घं

२१ । रौद्रीमुद्रा नष्ट की है जिनोंने, ऐसे देवोंको सदा पूजती जो ।
रौद्रीदेवी यज्ञ जैनेन्द्रकी में, आई लेना भागको हृष्ट होके ॐ ह्रीं रौद्रीदेव्यै अर्घं
२२ । ब्रह्मा विष्णू आदि संज्ञा अनन्तों, धारैं ऐसे आप्तको जो भजै है ।
आई है जो जैनपूजाविधाने अर्पूं अर्घं प्रीतसे श्रीकलाको ओं ह्रीं कलायै अर्घं
२३ । कालीदेवी भक्त जैनेन्द्रकी है, पूजै अर्चै कर्मजीता जिनोंने ।
देता अर्घं प्रीत होके उसीको, आई है जो जैनपूजविधाने ॐ ह्रीं कालीदेव्यै अर्घं
२४ । होता नाहीं है कलीका प्रभाव, पूजे अर्चैं देव जैनेन्द्रको जो ।
आई भक्तोभावसे नम्रहोके अर्पूं अर्घं, देविकालिप्रियाको ॐ ह्रींकालिप्रियायै अर्घं

समुच्चय अर्घं । दोहा ।

पंचम वलय राजतीं श्री ह्रीआदिक देवि ।
रक्षा मानो करत हैं, ऋषि मंडलकी एव ॥ २५ ॥

ॐ ह्रीं श्री ह्री धृति लक्ष्मी गौरी चंडी सरस्वती जया अम्बिका विजया क्लिना अजिता नित्या मद-द्रवा कामांगा कामबाणा सानंदा नंदमालिनी माया मायाविनी रौद्री कला काली कलिप्रिया इति

चतुर्विंशति जिनेन्द्रभक्त देवीभ्यो अर्घं यज्ञांशं ददामि,सर्वा एव प्रतिगृह्यंतां प्रतिगृह्यंतां स्वाहा।

जयमाला। इन्द्र वज्रा छंद।

श्री आदि देवी जिनराज की ही, सेवाकरैं हर्षित चित्त होके।
सत्कार पावैं इससे सदा हैं, सर्वत्र होती जब जैनपूजा ॥१॥
मिथ्यात्वमें प्रेम धरैं कुदेवा, सम्यक् क्रिया को नहि होन देते।
श्री आदि देवी तब आके भक्त्या, रोकैं स्वसामर्थ्य दिखाय उनको ॥२॥
जिनेन्द्र भक्तों पर दुःख होता, बाधा करै वा यदि कोई दुष्ट।
आके समै पै करतीं सहाय, देती मिटा वे उस विघ्न को हैं ॥३॥
वात्सल्य सम्यक्त्व सदैव साथी, नाहीं तजैं वे निज साथको हैं।
सम्यक्त्व शोभै इनके इसीसे, वात्सल्य आके उमडै हृदै में ॥४॥
पूजा विधानादि शुभ क्रिया जो, साधर्मियोंके विन नाहि होती
आमंत्रते जैन समाजको हैं, आमंत्र कीजै तब आति ये भी ॥५॥

चाहैं न सत्कार निज प्रतिष्ठा, निस्वार्थ सेवारत हैं तथापि ।
सत्कार कीना निज शक्ति देख, जलादि सामान्य पदार्थ देके ॥६॥

ॐ ह्रीं श्री ह्री आदि चतुर्विंशति देवीभ्यो जिनपूजाभागं ददामि प्रतिगृह्यंतां प्रतिगृह्यंतां स्वाहा ।

सूचना—इसके बाद जलसे धोई लोंगोंसे अथवा चमेली आदि के फूलोंसे श्री ऋषि मंडल स्तोत्रमें कहा हुआ मंत्र—ॐ ह्रां ह्रिं ह्रुं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रौ ह्रः अ सि आ उ सा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो ह्री नमः' को १०८ बार जपे । अर्थात् एक फूल या लोंग चढ़ाता जाय और मंत्र बोलता जाय ।

समुच्चय जयमाल ।

श्री ऋषिमंडल मंत्र प्रधानं, राजित जिसमें सब महिमानं ।
नायक इसका "ह्रीं" अक्षर है, जिसमें राजित सब जिनवर हैं ॥१॥
शोभित करते सिद्ध महंता, अ आ इ ई आदि श्रुतवंता ।
आठों बीजाक्षर ह भ रादी, रहते निज परिवार के साथी ॥२॥
हैं इसमें परमेष्ठी पांचो, राजत है रत्नत्रय सांचो ।
सबही ऋषिवर शोभित इसमें, तपबल पाई ऋद्धी जिनने ॥३॥

चारों अवधीधर मुनि शोभैं, जिनके गुण जगका मन मोहैं।
चार निकायके सबही देवा, भक्ति भरे करते इस सेवा ॥४॥
श्री ह्री आदी देवी सबही, सेव करैं इसके चरणा ही।
अंतिम वलय विराजित ऐसे, रच्छक घेरें नगरको जैसे ॥५॥
भजते जन इसको विधिसे हैं, रहते वे सब ही सुखसे हैं।
इसकी महिमा जगमें जगती, सब ही दुःख दारिद को हरती ॥६॥
इसको मनमें रखते मनसे, जपते, सेवा करते तनसे।
होते कर्म—हीन शिवराजा, भोगें "श्री" अक्षय सुखसाजा ॥७॥
दोहा—श्री ऋषि मंडल श्रेष्ठ है, जगमें महा प्रसिद्ध।
विघ्न हरै मंगल करै, मन चीती हो सिद्ध ॥८॥

ॐ ह्रीं श्रीऋषि मंडलान्तर्गत सर्व अर्हत्सिद्ध ऋषि मुनिवरेभ्यो ऽर्घं, देव देवीभ्यो यज्ञभागं ददामि स्वाहा ॥ पूर्णाऽर्घं ॥

इसके बाद यजमान आदि सब लोग भक्तिसे हाथ जोडकर खडे होजांय और याजक (जिनकी अध्यक्षता—देखरेखमे मंडल विधान किया जारहा है) झारी हाथमें लेकर पतली जलकी धार एक पात्रमें छोडते हुए पुण्याहवाचन (संस्कृत विधान पृष्ठ ४४ से) पढें उसके बाद शांति-पाठ (संस्कृत अथवा हिन्दी का) पढें और विसर्जन करे।

इसके बाद संस्कृत ऋषि मंडल के पृष्ठ ४२में छपे हुए "निःशेषामर" आदि पांच आशीर्वादात्मक श्लोकों को पढते हुए पूजाके पुष्प यजमान और उसकी स्त्रीके ऊपर फेकते जांय।

अनंतर समय हो तो श्री जिनेन्द्र देव और श्री ऋषि मंडल यंत्रका पंचामृताभिषेक विधिपूर्वक उसी समय करे और समय न हो तो उसी दिन अपराह्णमें अथवा दूसरे दिन करे।

इस प्रकार पूजन विधान समाप्त होजाने पर शुभ मुहूर्तमें जाप्य मंत्र जितने जपे हों उनके दशमां भाग आहुति देनेके लिये हवनकुंडमें होम करे।

होम कुंड आदिका चित्र इस पुस्तकमे दिया गया है, उसके अनुसार कुंड मापसे बनाये। कुंड बनानेमें कच्ची ईंट लगावे। मंत्र साधन विधि पृष्ट ४६ में जैसा विधि विधान लिखा है उसी प्रकार करे।

इसके बाद आये हुए चतुर्विध श्रीसंघका यथायोग्य शक्ति अनुसार आहार आदि चतुर्विध दानसे तथा समदत्ति (भेट बांट कर) से सत्कार—सन्मान करे।

इस तरह जो इस श्री ऋषिमंडल यंत्रके पूजन विधान को स्वयं करता है, दूसरोंसे कराता है तथा अनुमोदन करता है वह परम सुखको प्राप्त होता है ।

कवि परिचय ।

वसंत तिलका छंद ।

विख्यात भारत सुदेश विराजता है, प्रादेश एक शुभ नामक 'आगरा' है
ग्रामाति अल्प उसमें शुभ नाम 'टेहू' पद्मावतीपुरग जैन समाज शोभी ॥१॥

तत्रस्थ लब्धयश जौंहरि लाल नामा, जैनेन्द्र भक्ति परिपूरित चित्तधामा ।
जन्मे सुपुत्र उनके गुण चारु, चार, स्नेही विवेकयुत धर्म चरित्र धारी ॥२॥
सर्वाग्र थे सुबुध धार्मिक 'लाल प्यारे' दूजे गदारि उपकारक 'लाल छोटे' ।
'वंशीधर' त्रितय वैद्य महोपकारी, 'ज्वालाप्रसाद' लघु नम्र सुवृत्त धारी ॥३॥
वंशीधरात्मज हुए फिर चार विद्वान्, मक्खन लाल, जयचंद्र, अजीतवीर्य ।
'श्रीलाल' भी द्वितय संस्कृत ज्ञान दक्ष, निर्माणकर्तृ ऋषिमंडल पाठका जो ॥४॥
जैनेन्द्र पाणिनि व्याकरणज्ञ शास्त्री, सिद्धान्त शास्त्र-पटुताधर काव्यतीर्थ ।
बंगीय आंग्ल बहु देशिविदेशि भाषा, ज्ञाताऽनुवादक सुलेखनिबन्धकर्ता ॥५॥

दोहा--जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्थाके हितरक्त, करता सेवा रात दिन जिनवाणी का भक्त ॥६॥
सम्मेदशिखरके पगतले शोभित 'ईसरी' ग्राम । वर्षा योगमें राजते संघ सहित गुणग्राम ॥७॥
वीर-सिंधु आचार्यके वचसे हो प्रतिबुद्ध । दो हजार दश विक्रमी श्रावण चौदश शुद्ध ॥८॥
गृहविरत हो व्रत लिये सप्तम प्रतिमायुक्त । धर्म ध्यान पालन निमित हो विकल्प से मुक्त ॥९॥

रचित ग्रंथवर्णन

रची संस्कृत प्रवेशिनी विद्यार्थी हितकार । जिसको पढकर ज्ञानहो संस्कृत का सुखकार ॥१०॥
गुणभद्राचार्य कृत संस्कृत पद्य अनिंद्य । भाषा जिनदत्त चरित्र की कीनी है निरवद्य ॥११॥
अमितगती आचार्य कृत सुभाषित रत्न संदोह । संस्कृतसे हिंदी किया सद् अनुवाद अमोह ॥१२॥
वादिराज सूरी रचित संस्कृत पार्श्व चरित्र । हिंदी भाषामय किया जो प्रचलित सर्वत्र ॥१३॥
संस्कृत विमल पुराणकी भाषा सरल बनाय । मुद्रित कर जगमें प्रसिद्ध कीनी सब सुखदाय ॥१४॥
श्रीऋषिमण्डल यंत्रकी महिमा अतिही देख । विस्तृत भाषा पद्यमय पूजा रची विशेष ॥१५॥
दो हजार अर चारसौ चौरासी गये साल । महावीर निर्वाणसे कीना ग्रंथ रसाल ॥१६॥
फाल्गुन वदि दुतिया दिवस बृहस्पती है वार । नन्दौ वृद्धो पाठ यह भव्य जीव हितकार ॥१७॥
ज्ञान छन्दका है नहीं नहीं शास्त्रका बोध । विनती यह 'श्रीलाल'की सुधी पढें कर शोध ॥१८॥
स्वाध्यायी नित रह सकूं विकथाओंसे मुक्त । रचा पाठ इस कारणे जिनभक्ती-संयुक्त ॥१९॥